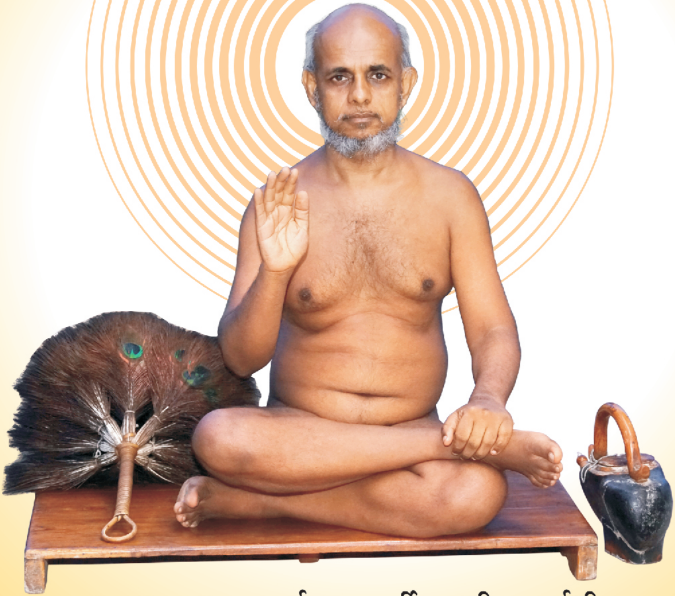

परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि-परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19-03-1971 * मुनिदीक्षा-11-05-1989 * आचार्यपद- 20-06-2004

पट्टाधीशपद- 24-12-2010 (20-06-2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणाः-

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी-जुलाई 2004) (अक्षयज्योति-अक्तूबर 2004)

हिन्दी जैन साहित्य का बृहद् इतिहास

भाग 4

लेखक

डॉक्टर शितिकण्ठ मिश्र

प्रकाशक

पार्श्वनाथ विद्याश्रम ग्रन्थमाला

वाराणसी (उत्तरप्रदेश)

(परम्परानायक)

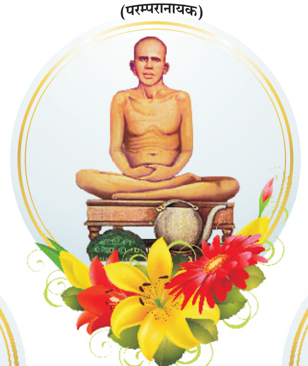

परम पूज्य चारित्र–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त–शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

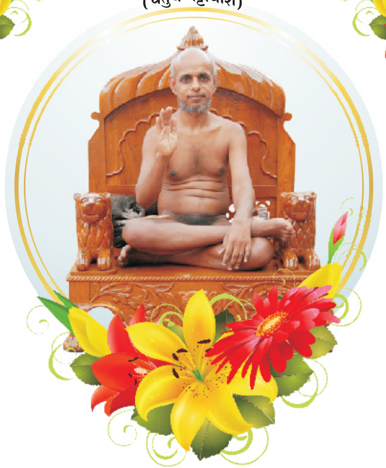

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तुत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि–परिवार

पार्श्वनाथ विद्यापीठ ग्रन्थमाला : ११५

प्रधान सम्पादक
डॉ० सागरमल जैन

हिन्दी जैन साहित्य का बृहद् इतिहास

खण्ड-४ (मरुगुर्जर) : १९वीं शती

डॉ० शितिकंठ मिश्र

पार्श्वनाथ विद्यापीठ
वाराणसी

पार्श्वनाथ विद्यापीठ ग्रन्थमाला	: ११५
पुस्तक	: *हिन्दी जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, खण्ड-४*
प्रकाशक	: **पार्श्वनाथ विद्यापीठ,** आई०टी०आई० रोड, करौंदी, वाराणसी-२२१००५
दूरभाष संख्या	: ३१६५२१, ३१८०४६
प्रथम संस्करण	: १९९९
मूल्य	: २५०.००
अक्षर सज्जा	: सन कम्प्यूटर साफ्टेक, नरिया, वाराणसी-५
मुद्रक	: वर्द्धमान मुद्रणालय, भेलूपुर, वाराणसी।

I.S.B.N.	: 81-86715-39-8
P.V. Series No.	: 115
Tittle	: ***Hindi Jaina Sāhitya Kā Bṛhada Itihāsa, Vol.-4***
Publisher	: **Pārśvanātha Vidyāpiṭha** I.T.I. Road, Karaundi, Varanasi-221005
Telephone No.	: 316521, 318046
Fax	: 0542- 318046
First Edition	: 1999
Price	: 250.00
Composed at	: Sun Computer Softech Naria, Varanasi, Ph. 318698
Printed at	: Vardhaman Mudranalay Bhelupur, Varanasi.

अर्थ सहयोग

श्री मुम्बई जैन युवक संघ, मुम्बई के जैन नागरिकों की प्रबुद्ध संस्था है, जो अपनी समाज-सेवा सम्बन्धी गतिविधियों तथा अपने विद्यासत्रों एवं पर्युषण व्याख्यानमाला के आयोजनों के कारण लोकविश्रुत है। 'प्रबुद्ध-जीवन' नामक पाक्षिक पत्र, श्री म०मो० शाहा सार्वजनिक वाचनालय और दीपचन्द त्रिभुवनदास पुस्तक प्रकाशन ट्रस्ट के माध्यम से यह संस्था जैन विद्या के क्षेत्र में अनुपम योगदान कर रही है। इसके साथ ही अस्थि सारवार केन्द्र नेत्रयज्ञ आदि प्रवृत्तियों द्वारा मानव समाज की सेवा में भी लगी हुई है। इस संस्था के द्वारा पार्श्वनाथ विद्यापीठ को अपने प्रकाशन कार्यक्रमों में सदैव सहयोग प्राप्त होता रहा है, अब तक इसके आर्थिक सहयोग से पार्श्वनाथ विद्यापीठ के द्वारा आठ ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है। **'हिन्दी जैन साहित्य का बृहद् इतिहास'** के प्रथम, द्वितीय, तृतीय खण्ड के समान ही इस चतुर्थ खण्ड के प्रकाशन में भी उन्होंने हमें पच्चीस हजार रुपये का आर्थिक सहयोग प्रदान किया है। इस हेतु हम श्री रमणलाल चि० शाह के और श्री मुम्बई जैन युवक संघ के अन्य ट्रस्टियों के विशेष आभारी हैं और यह आशा करते हैं कि भविष्य में भी उनके सहयोग द्वारा हम जैन विद्या की सेवा करते रहेंगे।

भूपेन्द्रनाथ जैन
मानद सचिव
पार्श्वनाथ विद्यापीठ
वाराणसी

प्रकाशकीय

'हिन्दी जैन साहित्य का बृहद् इतिहास' नामक पुस्तक के चतुर्थ खण्ड को पाठकों के समक्ष समर्पित करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। पार्श्वनाथ विद्यापीठ के निदेशक डॉ० सागरमल जी जैन ने हिन्दी जैन साहित्य के बृहद् इतिहास के निर्माण की योजना बनायी थी, जिसे मूर्त रूप प्रदान करने में डॉ० शितिकण्ठ मिश्र जी ने मुख्य भूमिका निभायी है, अतः हम डॉ० सागरमल जी जैन एवं डॉ० मिश्र जी के हृदय से आभारी हैं। हिन्दी जैन साहित्य इतिहास निर्माण की इस योजना के प्रथम चरण में, जो सन् १९८९ में प्रकाशित है, आदिकाल से १६वीं शताब्दी तक के इतिहास को समाहित किया गया है। इसी प्रकार द्वितीय एवं तृतीय चरण, जो क्रमशः सन् १९९४ एवं १९९७ में प्रकाशित हुआ है, के अन्तर्गत १७वीं एवं १८वीं शताब्दी में रचित साहित्य के इतिहास को प्रस्तुत किया गया है। निर्माण योजना का यह चतुर्थ चरण है, जिसमें १९वीं शताब्दी के हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक रूप समाहित है। इसका वास्तविक मूल्यांकन तो पाठकगण स्वयं करेंगे, इस सन्दर्भ में हमारा कुछ भी कहना उचित नहीं जान पड़ता।

पुस्तक प्रकाशन में प्रूफ रीडिंग का पूर्ण दायित्व पार्श्वनाथ विद्यापीठ के शोध सहायक डॉ० असीमकुमार मिश्र एवं प्रेस सम्बन्धी दायित्व संस्थान के ही प्रवक्ता डॉ० विजय कुमार जैन ने वहन किया है, अतः वे धन्यवाद के पात्र हैं।

उत्तम अक्षर संयोजन के लिए सन कम्प्यूटर साफ्टेक, नरिया, वाराणसी और सुन्दर मुद्रण के लिए हम वर्द्धमान मुद्रणालय के भी आभारी हैं।

भूपेन्द्रनाथ जैन
मानद सचिव
पार्श्वनाथ विद्यापीठ
वाराणसी

लेखकीय

मरु-गुर्जर हिन्दी जैन साहित्य का बृहत् इतिहास का चतुर्थ खण्ड (१९वीं० विक्रमीय) पाठकों के हाथ मे सौंप कर मैं उस बड़ी जिम्मेदारी से मुक्त हो रहा हूँ जो पार्श्वनाथ विद्यापीठ के निदेशक प्रो० सागरमल जैन ने मेरे जैसे अक्षम व्यक्ति के कन्धों पर डाली थी। मुझे प्रसन्नता है कि मैं उनके विश्वास की रक्षा कर सका। अब यह सहृदय पाठकों पर है कि वे इसका मूल्यांकन करें और जो कमियाँ हों उनको सुधारने का सुझाव व अवसर दें। इस ग्रंथ द्वारा यदि बृहत्तर हिन्दू समाज और जैन धर्म, संस्कृति, साहित्य और उनके धर्मावलंबियों की जीवन चर्या को समीप से परस्पर जानने में कुछ सहायता मिलती हो तथा हिन्दी भाषा, साहित्य तथा गुजराती, राजस्थानी भाषा और साहित्य को समीप लाने में कुछ योगदान हुआ हो तो उसे राष्ट्रीय भावनात्मक एकता की दृष्टि से एक उपलब्धि समझा जाना चाहिये।

इस ग्रंथ के छापने का उपक्रम करके पार्श्वनाथ विद्यापीठ के प्रबन्ध मण्डल ने जिस सूझ-बूझ का परिचय दिया है वह सराहनीय है, मैं एतदर्थ प्रबन्ध मण्डल के प्रति आभार भी व्यक्त करता हूँ। इस ग्रंथ के प्रणयन में मेरा योगदान एक मधु-मक्षिका की तरह रहा हैं, मैंने मोहनलाल द० देसाई, अगरचंद नाहटा, कस्तूरचंद कासलीवाल, नाथूराम जैन, कामता प्रसाद जैन आदि अनेक विद्वानों की रचनाओं से सामग्री का संचयन कर उसे व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक ढ़ंग से प्रस्तुत करने का यथाशक्ति प्रयास किया है। मैं उन सभी विद्वानों के प्रति श्रद्धावनत् हूँ और अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। वृद्घावस्था और बीमारी के चलते मैं एक बार इस खण्ड को पूरा करने की तरफ से निराश हो गया था, किन्तु मेरे आत्मज डॉ असीम कुमार ने मुझे आश्वस्त किया और न केवल सहयोग दिया बल्कि सहलेखक का दायित्व निभाया। संस्थान के सभी विद्वानों और कर्मचारियों ने अपने ढंग से मेरी मदद की, इसलिए मैं पुस्तकालय, प्रकाशन और अन्य संबंधित विभागों के अधिकारियों; कर्मचारियों को साधुवाद देता हूँ।

२०वीं शती (विक्रमीय) से हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी भाषाओं के गद्य-पद्य की नाना विधाओं में प्रचुर जैन साहित्य लिखा जा रहा है जिसके साथ एक खण्ड में एक लेखक पूरा न्याय नही कर सकता। इसलिए इस संबंध में आगे के प्रकाशन की योजना पार्श्वनाथ विद्यापीठ प्रबन्ध मण्डल एवं निदेशक पर निर्भर है, किन्तु इस बृहद् इतिहास को अद्यतन् बनाने मे यदि मैं किसी प्रकार यत्किंचित सहयोग कर सकूंगा तो प्रसन्नता ही होगी।

डा० शितिकंठ मिश्र
पू० प्राचार्य,
दयानन्द महाविद्यालय, वाराणसी

कार्तिक पूर्णिमा
३, महामनापुरी
बी०एच०यू० वाराणसी-५

विषय-सूची

प्रथम अध्याय- १९वीं शती (वि०) के हिन्दी जैन साहित्य की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

(क) राजनीतिक पृष्ठभूमि-१-३,मुगल साम्राज्य के पतन का कारण ३-४, (ख) मराठा शक्ति का उत्थान और पतन ४-५, तत्कालीन अन्य देशी रियासतें ५-६, उत्तर भारत की प्रमुख देशी रियासतें ७-अवध का नवाब ७, बंगाल के नवाब ७-८, राजपूताना के रजवाड़े ८, भरतपुर के जाट ८-९, रूहेले और पठान ८, सिक्ख राज्य ९-१०, यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियाँ-१०, पुर्तगाली कम्पनी १०, डंच कम्पनी १०, ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ११, कम्पनी का राज्य प्रसार और प्लासी का युद्ध ११-१२, बक्सर का युद्ध १२-१४, ईस्ट इण्डिया कम्पनी की व्यापार नीति १४, प्रशासनिक नीति १४-१५, भूराजस्व सम्बन्धी व्यवस्था १५-१६, सामाजिक और सांस्कृतिक नीति १६, नवजागरण और राजा राममोहन राय १६-१८, सन् १८५७ का विद्रोह १८-१९, सामाजिक और आर्थिक स्थिति १९-२१, संस्कृति और साहित्य की सामान्य स्थिति २१-२३, धार्मिक परिस्थिति २३, जैन धर्म २३-२६, संदर्भ२७,

द्वितीय अध्याय- १९वीं०(वि०) शती के जैन हिन्दी साहित्य का विवरण, अगरचंद २८, अनोपचंद २८, अनोपचंद शिष्य २८, अमरचंद लोहाड़ा २८, अमरविजय (१) २८, अमरविजय (२) २८-२९, अमरसिंधुर २९-३०, अमृत मुनि ३०, अमृतविजय ३०-३१, अमृतसागर ३१-३२, अमीविजय ३२, अमोलक ऋषि ३२, अविचल ३२-३३, आणंद ३, आणंदवल्लभ ३३, आणंदविजय ३४, आलमचंद ३४-३६, आसकरण ३६-३७, इन्द्रजी ३७, उत्तमचंद कोठारी ३७, उत्तम मुनि ३८, उत्तमविजय (१) ३८-३९, उत्तमविजय (२) ४०, उत्तमविजय (३) ४०-४३, उदय ऋषि ४३, उदयकमल ४३-४४, उदयचंद ४४, उदयचंद भंडारी ४४-४५, उदयरत्न ४५, उदयसागर ४५-४६, उदयसोम सूरि ४६-४८, ऋषभदास निगोता ४८-४९, ऋषभविजय ४९-५१, ऋषभसागर ५१-५२, कनकधर्म ५२, कनीराम ऋषि ५२-५३, कमलनयन ५३-५४, कमलविजय ५४, कर्पूर विजय ५४-५५, कल्याण ५५, कल्याणसागर सूरि शिष्य ५५-५६, कवियशा ५६-५७, कस्तूरचंद ५७, कान ५७-५८, कांतिविजय ५८-५९, कृष्णदास ५९, कृष्णविजय ५९-६०, कृष्णविजयशिष्य ६०,कुंवरविजय ६०-६१, कुशलविजय ६१, केशरी सिंह ६१, केशोदास ६१-६२, क्षमा कल्याण ६२-६४, क्षमाप्रमोद ६४, क्षमा माणिक्य ६४, क्षेमवर्धन ६५-६६, क्षेमविजय ६६, खुशालचंद ६६-६७, खुशालचंद ६७, खुशालविजय ६७, खेमविजय ६७-६८, गणेशरुचि ६८, गिरिधरलाल ६८, गुलाबो ६८, गूणचंद्र ६९,

गुमानचंद ६९, गुलाबराय ६९, गुलाबविजय ६९-७०, गोपीकृष्ण ७०-७१, गोविंद दास ७१, चतुरविजय ७१-७३, चन्द्र ७३, चंपाराम ७३-७४, चंद्रसागर ७४-७५, चारिभनंदन ७५, चारिभनंदी ७६, चारिभसुंदर ७६, चेतनकवि ७६-७७, चेतनविजय ७७-७८, चौथमल ७८, जगजीवन ७८-७९, जगन्नाथ ७९, जड़ाव जी ७९-८०, जयकर्ण ८०, जयचंद छाबड़ा ८०-८२, जयमल्ल ८२-८३, जयरंग ८३-८४, जयसागर ८४-८५, जिनकीर्ति सूरि ८५-८६, जिनचंद सूरि ८६, जिनदास गोधा ८६,जिनदास गंगवाल ८६, जिनलाभ सूरि ८६-८७, जिनसौभाग्य सूरि ८८, जिनहर्ष सूरि ८८-८९, जिनेन्द्रभूषण ८९-९०, जिनोदय सूरि ९०-९१, जीतमल (१) ९१, जीतमल (२) ९१-९२, जीवजी ९२, जैमल (ऋषि) ९२-९४, जोगीदास ९४-९५, जैनचंद ९४, जोगीदास ९४-९५, जोधराज का सलीवाल ९५-९६, जोरावर मल ९६, ज्ञानउद्योत ९६-९७, ज्ञानचंद (१) ९८, ज्ञानचंद (२) ९८, ज्ञानसार ९८-१०४, ज्ञानसागर १०४, ज्ञानसागर शिष्य १०४-१०५, ज्ञानानंद १०५, झूमकलाल १०५-१०६, टेकचंद १०६-१०७, टोडरमल १०७-१०९, डालूराम १०९, डूंगावैद १०९-११०, तत्त्वकुमार ११०, तत्त्वहंस ११०, तिलोकचंद ११०, तेजविजय ११०-११, तेजविजय शिष्य १११, त्रिलोक कीर्ति १११, थानसिंह १११-११२, थोभराा ११२, दयामेरू ११२, दर्शनसागर ११२-११३, द्यानत ११४, दिनकर सागर ११४, दीप ११४-११५, दीपचंद कासलीवाल ११५, दीपविजय (।) ११५-११८, दीपविजय (॥) ११८-१२०, दुर्गादास १२०, देवचंद १२०, मुनिदेवचंद १२०, देवरत्न १२१-१२२, देवविजय १२२, देवहर्ष १२३-१२४, देवीचंद १२४-१२५, देवीदान नाइता १२५, देवीदास १२५-१२६, देवीदास (॥) १२६, देवीदास खंडेलवाल १२६, दौलतराम कासलीवाल १२६-१२७, धर्मचंद (।) १२७, धर्मचंद (॥) १२८, धर्मदास १२८-१२९, कर्मपाल १२९, धीरविजय १३०, नंदराम १३०, नंदलाल छाबड़ा १३०, नथमल बिलाला १३०-१३१, नयनंदन १३१, नयनसुख दास १३१-१३२, नवलशाह १३२-१३३, निर्मल १३३-१३४, निहालचंद १३४-१३५, निहालचंद अग्रवाल १३५, नेमचंद १३५, ब्रह्मनेमचंद १३५, नेमिचंद पाटणी १३६, नेमविजय १३६-१३८, पन्नालाल १३८,पद्मभगत १३८, पद्मविजय १३८-१४२, परमल्ल १४३, पार्श्वदास १४३, पासो पटेल १४४, प्रकाश सिंह १४४-१४५, प्रतापसिंह १४५, प्रागदास १४५, प्रेममुनि १४५-१४६, फकीरचंद १४६-१४७, फतेचंद१४७, फतेन्द्रसागर१४७-१४८, बखतराम साह १४८, बख्तावरमल्ल १४९, बख्शीराम १४९, बालकृष्ण १४९, बुधजन (विरछीचंद) १४९-१५१, बुद्धिलावण्य १५१, बूलचंद १५१, भक्ति-विजय १५१-१५२, भगुदास १५२, भाराविजय १५२-१५३, भागीरथी १५३, भारामल्ल १५३-१५४, भीखजी १५४,

भीखणजी १५४-१५५, भीमराज १५५, भूधर १५५-१५६, भूधरमिश्र १५६, मकन १५६-१५८, मणिचन्द्र १५८, मणिरत्न मणि १५८-१५९, मतिलाभ १५९, मतिलाभ या मयाचंद (।) १६०, मयाचंद (॥) १६०, मयाचंद (।॥) १६०, मतिसागर १६०-१६१, मनरंगलाल १६१-१६२, मनराखन लाल १६२, मन्नालाल सांगा १६२, मनसुखसागर १६२, मयाराम १६२-१६३, मलूकचंद १६३, महानंद १६३-१६६, माखन कवि १६७ माणक १६७-१६८, माणिक्यसागर १६८, मणिकविजय १६८-१६९, मानविजय (।) १६९, मानविजय (॥) १६९-१७०, माल १७०-१७२, मालसिंह १७२, मेघ १७२, मेघराज १७२-१७३, मेघविजय १७३, मोतीचंद (यति) १७३, मोहन १७४, यशःकीर्ति १७४-१७५, रंगविजय १७५-१७६, रघुपति १७६-१७७, रतनचंद (।) १७७, रतनचंद (॥) १७८, रत्नधीर १७८, रत्नविजय (।) १७८-१७९, रत्नविजय (॥) १७९, रत्नविजय (।॥) १७९-१८०, रत्नविमल १८०-१८१, राजरत्न १८१-१८२, राजकरण १८२-१८३, राजशील १८३-१८४, राजेन्द्रविजय १८४, राजेन्द्रसागर १८४, रामचन्द्र (।) १८५, रामचन्द्र (॥) १८५-१८६, रामपाल १८६-७, रामविजय (।) १८७, रामविजय (॥) १८७, रायचंद १८७-१९०, रूप १९०, रूपचंद १९१, ब्रह्म रूपचंद १९१, रूपचंद १९२-१९४, रूपविजय (मणि) १९४-१९६, लक्ष्मीदास १९६, लखमीविजय १९६-१९७, लब्धिविजय१९७-१९८, लालचंद (।) १९८-१९९, लालचंद (॥) १९९, लालचंद (।॥) २००, पांडे लालचंद २००-२०२, लालजीत २०२, लालविजय २०२, लालविनोद २०२, लावण्यसौभाग्य २०२-२०३, वल्लभविजय २०३, वसतो या वस्तो २०३-२०४, वान २०४-२०५, विजयकीर्ति २०५-२०६, विजयनाथ माथुर २०६, विजयलक्ष्मी सूरि २०६-२०७, विद्यानंदि २०८, विद्याहेम २०८, विनकरसागर २०८, विनचंद (।) २०८-२०९, विनयचंद (॥) २०९-२१०, विनयभक्ति २१०, विलास राय २१०, विवेकविजय २१०-२११, विशुद्रविमल २११-२१२, विष्णु २१२, वृद्धिविजय २१२-२१३, वृंदाबन २१३-२१५, वीर २१५-२१६, वीरविजय २१६-२२१, शिवचंद (।) २२१-२२२, शिवचंद (॥) २२२, शिवजीलाल २२२-२२३, शिवलाल २२३, शोभचंद २२३, श्रीलाल २२३, संपतराय २२३-२२४, सत्यरत्न २२४, सदानंद २२४, सबराज २२४, सबलदास २२५, सबलसिंह २२५, सरसुति या सुरसति २२६, सरूपाबाई २२६, सावंत (सावंतराम ऋषि) २२६--- -२२७, साहिबराम पाटनी २२७, सुजारा२२७-२२८ सुजानसागर २२८-२२९, सुदामो (विप्र) २२९, सुमतिप्रम सूरि (सुंदर) २३०, सुमतिसागर सूरि शिष्य २३०-२३१, सूरेन्द्रकीर्ति २३१-२३२, सूरत २३२-२३३, सेवाराम (शाह) २३३-२३४, सेवाराम पाटनी २३४-२३५, सेवाराम राजपूत २३५,

सौजन्यसुंदर २३५-२३६, सौभाग्यसागर २३६, हरकूबाई २३६, हरखचंद (श्रावक) २३६-२३७, हरचरणदास २३७, हरचंद २३७, हरजसराय २३८, हरिचंद २३८-२३९, हरदास २३९, हर्षविजय २४०, हितधीर २४०, हीरसेवक (हरसेवक) २४०-२४१, हीरा २४१, हुलसा जी २४१, हेमराज २४१, हेमविलास २४१-२४२। सन्दर्भ सूची २४३-२६२;

तृतीय अध्याय- अज्ञात पद्य और गद्य और गद्य-लेखकों तथा जैनेतर रचनाकारों की रचनाओं का संक्षिप्त विवरण: (क) अज्ञात पद्य-लेखकों की रचनाओं का विवरण २६३-२६७, (ख) जैनेतर कवियों की रचनाओं का विवरण-हरदास २६८-२६९, विष्णु २६९, सुदामो २६९-२७१, लाल २७१, थोभरा २७१, अजयराज २७१-२७२, भोजे २७२-२७३,

(ग) गद्य रचनाओं का विवरण २७३-२७९, उपसंहार २८०-२८२, साहित्य के प्रति जैन साहित्यकारों का दृष्टिकोण २८२-२८३, जैन साहित्य का मूल्य (जनसाहित्य) २८३, धार्मिक सहिष्णुता २८४-२८५, कथानक रूढ़ि २८५, कथाशिल्प २८५, छंद योजना २८५, काव्यरूप २८६।
संदर्भ सूची २८७-२८८॥

प्रथम-अध्याय

हिन्दी (मरुगुर्जर) जैन साहित्य का बृहद् इतिहास (खण्ड-चार १९वीं विक्रमीय)

१९वीं शती (विक्रमीय) के हिन्दी जैन साहित्य की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि-

(क) राजनीतिक पृष्ठभूमि

ऐतिहासिक महत्त्व की दृष्टि से इस शतक को खीष्टीय सन् १७५६ ई० से १८५७ तक मानकर चलना युक्तिसंगत लगता है क्योंकि इस कालावधि में एक तरफ मुगल-साम्राज्य की समाप्ति के साथ मराठा राज्य का पतन और देशी रियासतों की पराजय हुई तो दूसरी तरफ प्लासी युद्ध में अंग्रेजों की विजय के साथ बंगाल में कम्पनी (ईस्ट इण्डिया) का राज प्रसार प्रारंभ हुआ। एक के बाद दूसरी देशी राज-शक्ति पराजित होती गई और रबर के तम्बू की तरह कंपनी का राज बंगाल से बढ़कर दिल्ली तक देखते-देखते पहुँच गया। कम्पनी का यह शोषणकारी, आतंककारी शासन पूरे एक शतक फलता-फूलता रहा। १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के साथ उसका समापन हो गया। महारानी विकटोरिया भारत की राज-राजेश्वरी बनीं और भारत देश विशाल ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश हो गया।

इस शताब्दी के प्रमुख राजनीतिक सत्ता के घटकों में पतनशील मुगल साम्राज्य, मराठा राजवाड़ों, देशी नरेशों और नवाबों के अलावा यूरोपीय कम्पनिया, विशेषतया आंग्ल ईस्ट इण्डिया कंपनी थी। भारतीय जनमानस, समाज तथा संस्कृति और साहित्य पर इस काल के राजनीतिक व्यतिक्रम और उथलपुथल का प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी था। इसलिए इन सबसे संबंधित घटनाचक्रों पर सरसरी दृष्टि से विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। इस शताब्दी में कम्पनी के गवर्नरों और गवर्नर जनरलों ने अपनी कूटनीतिक शक्ति तथा सैनिक शक्ति के बल पर एक के बाद दूसरी देशी राजसत्ता को धराशायी किया, प्रजा का शोषण किया और किसानों, कारीगरों तथा कामगारों का जम कर उत्पीड़न किया। हमारी परंपरा और संस्कृति की अवमानना की और आंग्ल शिक्षा, संस्कृति तथा भाषा और साहित्य का वर्चस्व स्थापित किया। इस प्रकार राजनीतिक विजय के साथ उन्होंने सांस्कृतिक विजय प्राप्त करने का सफल प्रयत्न किया। परिणामस्वरूप आज यह प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रहा है कि उनकी राजसत्ता समाप्त हो जाने के बाद भी उनकी सांस्कृतिक श्रेष्ठता का भूत जनमानस के ऊपर सवार है।

मुगलसाम्राज्य-उस समय दिल्ली में मुगल सम्राट मुहम्मद शाह का शासन था। दिल्ली की अकूत संपदा पर लोभ करके लूटने के इरादे से नादिरशाह ने बर्बर आक्रमण किया। विशाल सेना के बावजूद मुहम्मदशाह की पराजय हुई। नादिरशाह ने भरपेट दिल्ली को लूटा और कत्ल आम किया। नागरिकों को ही नही लूटा बल्कि प्रांतों के सूबेदारों से भी धन वसूला गया। मुगल साम्राज्य का राजचिन्ह छीन लिया गया। सारांश यह कि मुगल साम्राज्य की रही-सही मान मर्यादा को इस आक्रमण ने नेस्तनाबूद कर दिया। नादिरशाह ने अपने लड़के नसरूल्लाह का विवाह औरंगजेब के पौत्र अजीजुद्दीन की पुत्री से किया और अपार संपदा लेकर वापस लौट गया। इसके आक्रमण का इस देश की राजनीति और इतिहास पर दूरगामी प्रभाव पड़ा।

मुहम्मदशाह की मृत्यु के पश्चात् सन् १७४८ ई० में उसका पुत्र अहमदशाह गद्दी पर बैठा। यह 'रंगीले' से भी अधिक रंगीनमिजाज था। इसका हरम एक मील में फैला हुआ था, जहाँ वह दिन-रात रंगरेलियों में मशगूल रहता था। उसके नाम पर उसकी माँ कुद्‌सिया बेगम शासन करती थी। दरबारी-षड़यत्र चल रहे थे। उसके वजीर गाजीउद्दीन ने सामंतो को मिला कर उसे पदच्युत कर दिया और उसे अंधा करके सलीमगढ़ में कैद कर दिया। १७५४ ई० में जहाँदारशाह के पुत्र आलमगीर 'सानी' को गद्दी पर बैठाया गया।

आलमगीर (द्वितीय) के समय दिल्ली पर पुन: अहमदशाह अब्दाली का भयंकर आक्रमण हुआ। १७५६ ई० अब्दाली ने भारत पर चौथा आक्रमण किया। बादशाह पराजित हुआ। अब्दाली ने भी दिल्ली को बेरहमी से लूटा। अब्दाली के आक्रमण और देशी सामंतो के स्वच्छन्द हो जाने के कारण मुगल साम्राज्य सिकुड़ कर दिल्ली के आस-पास तक सीमित हो गया। आलमशाह की स्थिति साहू की मुत्यु के पश्चात् मराठों के छत्रपति जैसी थी। इसने अपना सारा राजकाज अपने वजीर इमादुलमुल्क को सौंप दिया था। यह बेईमान लालची और उच्छृंखल था। अब्दाली ने जाते समय नजीबुद्दौला को अपना पूर्णाधिकारी तथा मुगलसम्राट का बख्शी बनाया, इस प्रकार सम्राट् का वास्तविक अधिकार-सुख नजीब भोगने लगा। इससे वजीर इमादुलमुल्क नाराज हुआ और उसने १७५९ में सम्राट् को षड़यंत्रपूर्वक मरवा डाला। सम्राट् का पुत्र अलीगौहर उस समय पटना में था। सन् १७५९ में उसने शाहआलम की उपाधि के साथ सम्राट् की गद्दी सभॉली लेकिन १७७१ तक वह दिल्ली नही आया। इधर दिल्ली पर मराठों ने प्रभुत्व जमा लिया और सम्राट् को दिल्ली बुलाया। सन् १७६५ तक वह वजीर के भय के कारण अवध के नवाब शुजाउद्दौला के यहॉ शरणार्थी था। इलाहाबाद की संधि के अनुसार वह अंग्रेजों के संरक्षण में चला गया। अंग्रजों ने उसे २६ लाख रूपया वार्षिक पेन्शन दिया और बदले में बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी का अधिकार प्राप्त कर लिया।

सन् १८०६ में उसकी मुत्यु हुई और उसका पुत्र अकबर द्वितीय गद्दीनशीन हुआ। यह १८३७ तक अंग्रेजों के संरक्षण में रहा, इसका उत्तराधिकारी अंतिम मुगलसम्राट् बहादुरशाह था। इसने १८५७ के विद्रोह में अंग्रेजों का विरोध किया। फलस्वरूप विद्रोह दबाने के बाद अंग्रेजों ने इसे कैद करके रंगून भेज दिया जहाँ १८६२ ई० में इसकी मुत्यु हो गई। अपने पिता अकबर द्वितीय की तरह यह भी अच्छा शायर था। इसकी अंतिम गजल "दो गज जमीन न भी मिली..." बड़ी मार्मिक है और स्वदेश के प्रति उसके तड़प को व्यंजित करती है।

मुगल साम्राज्य के पतन का कारण–

अनेक ऐय्यास और अदूरदर्शी सम्राटों ने तथा सैयद बंधुओं ने अपनी काली करतूतों से भारतीय जनमानस में मुगलों के प्रति विरोधी भावना उत्पन्न की। साम्राज्य की नींव खोखली हो गई थी। मुगलसेना फारसी, अफगानी, उज़बेग और भारतीयों की अजनबी भीड़ थी जिनमें देशभक्ति, एकता और अनुशासन का पूर्ण अभाव था। मनसबदारों के सैनिक सम्राट् की अपेक्षा अपने सामंतों के प्रति वफादार होते थे। उत्तराधिकार के षड़यंत्रों और युद्धों ने मुगल साम्राज्य के पतन में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। आतंरिक कमजोरी का लाभ उठाकर जगह-जगह सामंत स्वतंत्र हो गये। साम्राज्य सामंतों में बटॅने लगा। इन्होंने अपने स्वतंत्र राज्य कायम कर लिए। नादिरशाह और अहमदशाह के आक्रमणों ने मुगलसम्राट् की कमर तोड़ दी और वह धराशायी हो गया।

भक्ति आंदोलन ने पूरे देश के हिन्दुओं में नवीन चेतना उत्पन्न की; प्रजा मुगलों की निरंकुशता के खिलाफ हो गई। महाराष्ट्र में मराठे, पंजाब में सिक्खों का प्रभाव बढ़ गया। मुगल साम्राज्य को आखिरी धक्का ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने लगाया और साम्राज्य बालू की दीवार की तरह मामूली धक्के से भहरा गया। भारतीय किसानों की स्थिति दिन-प्रतिदिन बिगड़ती गई। उनमें भयंकर असंतोष व्याप्त हो गया था। भूराजस्व का बोझ बढ़ता जा रहा था। सामंतो के तबादले होते थे। वे अपने जागीर की प्रजा से अधिकाधिक धन वसूलते थे। नाना प्रकार के अत्याचार करते थे। इजारा प्रथा के कारण अधिक बोली लगाने वाले को भूराजस्व का ठेका दे दिया जाता था। वे किसानों से मनमाना राजस्व वसूलते थे। प्रजा में बगावत की भावना बढ़ गई। सतनामी, जाट और सिक्खों की बगावत के पीछे यह सब प्रमुख कारण थे।

जनता में राष्ट्रीय भावना का लोप हो गया था। लोग व्यक्तियों, कबीलों, जातियों और धार्मिक संप्रदायों के प्रति अधिक वफादार थे। ताकत के बल पर वाह्य एकता स्थापित करने में ऐय्यास शासक प्राय: असमर्थ थे। सामंत अपनी महत्त्वाकांक्षा के चलते सम्राट्

के प्रति निष्ठावान नहीं थे। वे अपने स्वार्थों से प्रेरित होते थे। इसलिए साम्राज्य के पतन् और देश के पराधीन होने पर रोने वाला कोई नहीं था। प्लासी में अंग्रेजों की विजय भारत के इतिहास में महत्त्वपूर्ण मोड़ लाने वाली घटना थी। १७६४ ई० में बक्सर के युद्ध में कंपनी की विजय ने मुगलसम्राट् और अवध के नवाब को मटियामेंट कर दिया। मुगलों के स्थान पर कम्पनी के शासन की दृढ़ नीव स्थापित हुई।

(ख) मराठा शक्ति का उत्थान और पतन–

छत्रपति शिवाजी की मुत्यु के पश्चात् वहाँ भी पारिवारिक विग्रह प्रारंभ हो गया। पेशवा शक्तिशाली सम्राट हो गया। मुहम्मदशाह के समय पेशवा ने दिल्ली पर आक्रमण किया। इन लोगों ने निजाम हैदराबाद और नवाब भोपाल को पराजित किया। साहू ने पारिवारिक षड़यंत्र से मुक्ति हेतु बालाजी को पेशवा बनाया जो धीरे-धीरे वास्तविक शासक हो गया। इसने बीस वर्ष तक शासन किया और गुजरात, मालवा और बुंदेलखण्ड पर मराठों का प्रभुत्व स्वीकार करने पर मुगलसम्राट् को विवश कर दिया। सन् १७४९ में शाहू की मुत्यु के समय बालाजी बाजीराव पेशवा था। इसके समय में पानीपत का तृतीय युद्ध हुआ। इससे मराठा शक्ति को धक्का लगा। इनके कमजोर पड़ने से कंपनी को अपनी टाँग फैलाने का सुनहरा अवसर मिला। इस युद्ध में प्रमुख मराठा सरदार मारे गये और रघुनाथ राव ने मराठा-स्ववंत्रता को कंपनी के हाथों गिरवी रख दिया। १७६१ में बाजीरावकी मुत्यु के पश्चात् उसका पुत्र माधवराव पेशवा बना और रघुनाथराव परिवार का वरिष्ट सदस्य होने के कारण प्रति-शासक नियुक्त हुआ था। इसने स्वार्थान्ध होकर निजाम से संधि कर ली, मैसूर के नवाब हैदरअली और अंग्रेजों से संपर्क साधा परन्तु १७६८ के युद्ध के पश्चात् उसे कैद करके पूना भेज दिया गया। सन् १७७२ में पेशवा माधवराव की मुत्यु हो गई। बाद के तीन आंग्ल-मराठा युद्धों से मराठा शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई। मराठा साम्राज्य पेशवा, भोसले, सिन्धिया, होल्कर और गायकवाड़ राज्यों में विभक्त होकर अंग्रेजों का आश्रित हो गया। इस प्रकार भारत में स्वदेशी साम्राज्य-स्थापना का स्वप्न हमेशा के लिए समाप्त हो गया।

युगल साम्राज्य और मराठा साम्राज्य दोनों एक ही प्रकार की अन्तर्भूत कमजोरियों के शिकार हुए। मुगल सरदारों की तरह मराठा सरदार भी क्रमश: स्वतंत्र शासक बन गये और परस्पर युद्ध करने लगे। दोनों की राजस्व प्रणाली और प्रशासनिक व्यवस्था भी प्राय: एक जैसी थी। सामंत विलासी थे और किसानों का अधिकाधिक शोषण करते थे। उदीयमान ब्रिटिश सत्ता का मुकाबला वे अपने राज्य को आधुनिक राज्य में रूपान्तरित करके ही कर सकते थे, परन्तु वे ऐसा करने में असमर्थ रहे। जैसे अंतिम मुगल सम्राटों की वास्तविक शक्ति उनके बजीरों में संकेन्द्रित थी, वैसे ही मराठों में पेशवा

प्रधान हो गया था जो बाद में साम्राज्य के पतन का कारण हो गया। इन साम्राज्यों की कालान्तर में प्रशासनिक व्यवस्था और कार्यकुशलता में लगातार गिरावट आती गई। कानून और व्यवस्था नाम की चीज खत्म हो गई। उच्छृखंल सामंतो ने खुलेआम केन्द्रीय सत्ता की अवहेलना की। केन्द्रीय सरकार आये दिन के युद्धों से दिवालिया होती गई। उधर प्रान्तों से भूराजस्व प्राप्त करना असंभव होता जा रहा था। साम्राज्य की फौजी शक्ति कमजोर पड़ गई। सैनिकों को मासिक वेतन नहीं मिलता था। वे लूटपाट करके प्रजा का उत्पीड़न करते थे। भूखी असहाय जनता का रक्षक कोई नही था। सभी भक्षक थे चाहे वे बाहरी आक्रमणकारी हों या भीतरी राजे, नवाब और सामंत हों। जनता में असुरक्षा, असंतोष, अराजकता की भावना बढ़ती गई। 'कोउ नृप होय हमै का हानी' वाली उक्ति— जन-जन की स्थायी मनोवृत्ति बन गई। इसलिए कोई सम्राट राजा या सामंत जीते अथवा हारे, जनता को कोई अफसोस नहीं होता था। विदेशी आक्रमणकारी यदा कदा लूटते थे, प्राय: नगरों और बड़े-बड़े कस्बों में लूटपाट करते थे पर देशी रजवाड़े, नवाब, सामंत और उनके सिपाही तो गॉव-गॉव के एक-एक व्यक्ति का शोषण-उत्पीड़न करते थे। जनता बधुंवा गुलाम हो गई थी। जन-मन में दासता की मनोवृति पूर्णतया भर गई थी। फिर वे स्वतंत्र देश और राजा की कल्पना कैसे करते? जब प्रबल जन शक्ति उदासीन हो, राज्य के विरोध में हो तो कोई सत्ता अधिक समय तक कैसे टिक सकती है। इसलिए दोनों साम्राज्यों का विघटन हो गया और कम्पनी की शासन-सत्ता स्थापित हो गई। मराठों के विरोध में अनेक देशी रजवाड़े हो गये थे इसीलिए पानीपत के तृतीय युद्ध में वे अहमदशाह अब्दाली से बुरी तरह पराजित हो गये। इस मौके का लाभ कम्पनी सरकार को मिला। मराठा सामंतों में महाद जी सिन्धिया महत्त्वपूर्ण व्यक्ति अवश्य था, उसने १७८४ में दिल्ली सम्राट् शाह आलम को वश में किया और पेशवा को पराभूत किया किन्तु अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता, वह एक चिनगारी की तरह चमक कर समय के अन्धकार में विलीन हो गया।

तत्कालीन अन्य देशी रियासतें–

पतनशील मुगल साम्राज्य और दुर्बल केन्द्रीय राजसत्ता का लाभ उठाकर अनेक अर्द्धस्वतंत्र-स्वतंत्र देशी रियासतें स्थापित हुईं। इनमें बंगाल, अवध और हैदराबाद की नवाबी प्रमुख थी। दक्षिणभारत में हैदरअली और उसके बेटे टीपू ने मैसूर रियासत की स्थापना भी। दिल्ली के आस-पास राजस्थान के राजपूत रजवाड़े, बंगस पठान, रूहेले और सिक्खों ने भी दिल्लीश्वर को उपेक्षादृष्टि से देखने लगे। गरज यह कि केन्द्रीय राजसत्ता विघटित होकर अनेक स्थानीय लघुशक्ति केन्द्रों में बिखर गई। वे आपस में स्वार्थवश टकराते रहे और तत्कालीन इतिहास पर गलत-प्रभाव डालत रहे। इनमें से कुछ की चर्चा

इतिहास की दृष्टि से उपयोगी है, साथ ही उन्होंने समाज और संस्कृति को भी प्रभावित किया है।

निजाम— इस रियासत की स्थापना निजाम-उल-मुल्क आसफजाह ने सन् १७२४ में की थी। यह सन् १७२२ से २४ के बीच मुगलसम्राट का वजीर था और सैयद बन्धुओं के वर्चस्व को कमजोर करने में प्रमुख भूमिका का निर्वाह किया था। मुहम्मदशाह का इससे प्रशासनिक प्रश्नों पर मतभेद हुआ तो यह दक्न चला गया। इसने खुलेआम स्वतंत्रता की घोषणा नहीं की किन्तु व्यवहारत: यह स्वतंत्र शासक हो गया था। सन् १७४८ में इसकी मुत्यु के पश्चात् इसके अधीनस्थ सामंत सिर उठाने लगे। कर्नाटक का सूबेदार वहाँ का नवाब बन बैठा। निजाम कभी दिल्ली दरबार का कभी मराठों का तो कभी ईस्ट इण्डिया कंपनी का पल्ला पकड़ कर नवाबी बचाए रहा।

मैसूर— यहाँ के शक्तिशाली मंत्री नगाराज का तख्ता पलट कर सन् १७६१ में हैदरअली ने अपना अधिकार जमा लिया। धार्मिक सहिष्णुता, कुशल प्रशासन और वीरता के बल पर शीघ्र ही प्रजा का विश्वास भाजन हो गया। इसने एक हिन्दू को अपना दीवान बनाया। सन् १७६९ में इसने अंग्रेजी फौजों को पराजित किया। सन् १७८२ के द्वितीय आंग्ल-मैसूर युद्ध में वह मारा गया। उसका पुत्र टीपू सुल्तान भी अपने पिता के गुणों से सम्पन्न था और हिन्दू-मुसलमानों के बीच सद्भाव स्थापित करके देश की रक्षा अंग्रेजो से करने के लिए संघर्ष करता रहा। अंतत: सन् १७९९ में यह अंग्रेजों से लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। अंग्रेज टीपू को अपना खतरनाक शत्रु समझते थे।

दक्षिण में अन्य कई छोटी बड़ी रियासतें थे जिनमें कालिकट, चिराक्कल, कोचीन, त्रावणकोर आदि प्रमुख थी। त्रावणकोर के राजा मार्तंड वर्मा ने डचों को परास्त किया, सामंतो को दबाया। हैदरअली ने १७६६ में आक्रमण किया और कालीकट, कोचीन तथा उत्तरी केरल को जीत लिया। त्रावणकोर राज्य का पतन हो गया। त्रावणकोर की राजधानी त्रिवेन्द्रम संस्कृत विद्या का प्रसिद्ध केन्द्र हो गया था। मलयाली साहित्य की भी इस राज्य में बड़ी तरक्की हुई। मार्तण्ड वर्मा तथा उसका उत्तराधिकारी रामवर्मा अच्छे विद्वान, कवि और संगीतज्ञ थे। रामवर्मा अंग्रेजी में धाराप्रवाह भाषण करता था और देश विदेश की गतिविधियों की जानकारी के लिए वह कलकत्ता, मद्रास और लंदन से प्रकाशित पत्र-पत्रिकायें नियमित रूप से मंगाता और पढ़ता था। तत्कालीन राजनीतिक परिदृश्य पर दक्षिण भारत और उत्तर भारत की देशी रियासतों का भरपूर प्रभाव पड़ा। इसलिए संक्षेप में उत्तर भारतीय देशी रियासतों की चर्चा भी लगे हाथ कर लेना युक्ति संगत होगा।

उत्तर भारत की प्रमुख देशी रियासतें

(क) अवध का नवाब-

इस नवाबी की स्थापना सआदत खाँ बुरहान-उत्न मुल्क ने की थी। मुगलसम्राट ने सन् १७२२ में इसे अवध का सूबेदार बनाया था। सआदत खाँ का वारिश सफदरजंग अवध की हालात् के बारे में एक जगह कहता है कि अवध के सरदार पलक मारते ही उपद्रव खड़ा कर देते हैं और दक्कन के मराठों से अधिक खतरनाक हैं अर्थात् आन्तरिक स्थिति डावॉडोल थी, उसे किसी तरह सआदत खाँ ने सभाँला। उसने हिन्दू-मुसलमानों में भेदभाव नहीं किया। किसानों की हालत सुधारने का उपाय किया, सैनिकों को अच्छा वेतन समय से दिया और शक्ति संचय करके सन् १७३९ में मरने के समय तक वह वस्तुत: स्वतंत्र हो गया था। उसके बाद उसके भतीजे सफदरजंग को नवाबी मिली। वह १७४८ ई० में मुगलसम्राट का वजीर भी रहा। इसने न्यायपालिका में पर्याप्त सुधार किया। नौकरियों में भेदभाव नहीं किया, फलत: रियासत में अमनचैन स्थापित हुई और आर्थिक सम्पन्नता आई। सन् १७५४ में वह मर गया।

सन् १७५५ से अवध के नवाबों का निवासस्थान लखनऊ हुआ और यह अवध का महत्वपूर्ण नगर हो गया। यह शहर कला और साहित्य को सरंक्षण प्रदान करने में दिल्ली का प्रतिद्वन्दी बन गया। इसीलिए एक विशिष्ट लखनवी संस्कृति का विकास संभव हुआ। सफदरजंग व्यक्तिगत जीवन में संयमी, मितव्ययी और नीतिवान था; लेकिन धीरे-धीरे नवाबों में विलासिता और फिजूल खर्ची की आदत बढ़ती गई। नवाब कमजोर पड़ गये और अंतत: १८५७ में कम्पनी सरकार ने अवध के अंतिम नवाब वाजिद अली शाह को ऐय्यास और विलासी बता कर नवाबी से पदच्युत कर दिया यद्यपि वह भी कला मर्मज्ञ और साहित्य का संरक्षक था। उसके दरबारी नाटककार अमानत खाँ ने इन्दरसभा की रचना की जिसमें नवाब स्वयं 'इन्द्र' का अभिनय करता था।

बंगाल के नवाब-

केन्द्रीय राजसत्ता की कमजोरी का फायदा उठाकर असाधारण योग्यता वाले व्यक्ति मुर्शिद कुली खाँ ने बंगाल में नवाबी की नींव डाली। इसे १७१७ में बंगाल का सूबेदार बनाया गया था। धीरे-धीरे यह मुगल सम्राट के नियंत्रण से स्वतंत्र हो गया लेकिन बादशाह के पास नजराना नियमित रूप से भेजता रहा। इसने बागी सरदारों को काबू में किया और शांति स्थापित किया। सन् १७२७ में यह मरा। तत्पश्चात् इसका दामाद शुजाउद्दीन १७३९ तक वहाँ का शासक रहा। इसके बाद उसका बेटा सरफराज

खाँ गद्दीनशीन हुआ किन्तु उसी साल उसका तख्ता पलट कर अलीवर्दी खाँ नवाब हो गया। यह भी मुर्शिद खाँ की तरह काबिल और कुशल था। इसने भी हिन्दू-मुसलमानों में भेद भाव नहीं किया, सबको रोजगार का समान अवसर दिया। इसके अनेक इजारेदार हिन्दू सामंत थे और इस प्रथा द्वारा बंगाल में नये प्रकार के भूमिपतियों के अभिजात वर्ग का उदय हुआ। इन नवाबों ने विदेशी व्यापारिक कम्पनी और उसके अहलकारों पर नियंत्रण रखा। अलीवर्दी खाँ ने अंग्रेजों को कलकत्ता में और फ्रान्सीसियों को चन्द्रनगर में कारखानों के किलेबन्दी की इजाजत नहीं दी, लेकिन इन्हें यह गुमान था कि कोई व्यापारिक कम्पनी उनकी सत्ता के लिए खतरा नहीं हो सकती। वे यह नहीं महसूस कर सके कि ईस्ट इण्डिया कंपनी मात्र व्यापारी कंपनी नहीं बल्कि अत्यन्त विस्तारवादी, आक्रामक और उपनिवेशवादी ब्रिटिश सत्ता की प्रतिनिधि थी। इन नवाबों ने न शक्तिशाली फौज रखी और न शेष दुनिया का वास्तविक ज्ञान प्राप्त किया। कूटनीतिक क्षेत्र में भी ये अंग्रेजों की चाल नहीं समझ पाये। इसलिए सन् १७५६-५७ में ब्रिटिश कंपनी ने जब अलीवर्दी खाँ के उत्तराधिकारी सिराजुद्दौला के खिलाफ जंग का एलान कर दिया तब फूट और आंतरिक उलझनों तथा सैनिक कमजोरी के कारण नवाब हार गया और देश में ब्रिटिश कम्पनी शासन की पुख्ता नींव पड़ी।

राजपूताना के रजवाड़े-

दिल्ली के आस-पास राजपूत राजे भी धीरे-धीरे अर्द्धस्वतंत्र और स्वतंत्र हो रहे थे। फर्रूफशियर और मुहम्मदशाह के समय आमेर और मारवाड़ के शासकों को आगरा, गुजरात और मालवा का सूबेदार बनाया गया। धीरे-धीरे यें राज्य शक्ति संवर्धन करके स्वतंत्र हो गये परन्तु दिल्ली दरबार की तरह इन राज्यों में भी पारिवारिक कलह, आन्तरिक भ्रष्टाचार और षड़यंत्र तथा पारस्परिक विश्वासघात का बोलबाला हो गया। मारवाड़ के राजा अजीत सिंह को उसके पुत्र ने ही मार डाला।

इस क्षेत्र का सर्वश्रेष्ठ राजपूत शासक आमेर का राजा सवाई जयसिंह था जो १६८१ से १७४३ तक योग्यतापूर्वक आमेर पर शासन करता रहा। यह विद्वान, खगोल शास्त्री, समाज सुधारक, कुशल प्रशासक और वीर योद्धा था। इसके समय में सभी धर्मों विशेषतया जैन धर्म को राजस्थान में विकसित होने का अच्छा अवसर मिला। कालक्रम में ये सभी रियासते ब्रिटिश सरकार की करद रियासते बन कर जीवित रही और स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इनका उन्मूलन हुआ।

भरतपुर के जाट-

यह खेतिहरों की जाति है जो दिल्ली आगरा और मथुरा के आस-पास निवास

करती रही है। मुगल अफसरों के अत्याचार से तंग आकर इन किसानों ने बगावत की, औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् इन लोगों ने दिल्ली के चारों तरफ अशांति पैदा कर दिया। लूटपाट किया और भरतपुर में जाट राज्य की स्थापना हुई। यह राज्य सूरजमल के नेतृत्त्व में अपनी उच्चतम गरिमा तक पहुँच गया। सूरजमल ने १७५९-६३ तक बड़ी योग्यतापूर्वक शासन किया। वह किसान-पोशाक में ही रहता था और ब्रज बोली बोल सकता था तथापि वह कुशल शासन और प्रबन्धन में बेजोड़ था। सन् १७६३ में उसकी मृत्यु के पश्चात् यह रियासत भी छोटे-छोटे जमींदारों में बँट कर बिखर गई।

रूहेले और पठान-

अलीगढ़ और कानपुर के बीच फर्रूखाबाद के आस-पास मुहम्मद खाँ बंगश ने अपना अधिकार जमा लिया और पठान राज्य की स्थापना की। इसी प्रकार नादिरशाही आक्रमण के पश्चात् अलीमुहम्मद खाँ ने रूहेलखण्ड में रूहेला राज्य की स्थापना की। यह राज्य हिमालय की तराई में कुमायूँ की पहाड़ियों से लेकर दक्षिण में गंगा के द्वाबा तक फैला था। इसकी राजधानी बरेली और बाद में रामपुर था। रूहेलों का अवध के नवाबों, दिल्ली के सम्राट और जाटों से टकराव होता रहा। अन्ततः कमजोर होकर ये रियासतें विघटित हो गई।

सिक्ख राज्य-

सिक्ख को एक धर्म के रूप में प्रारंभ करने वाले प्रथम गुरू नानक माने जाते है। लेकिन इन्हें एक लड़ाकू समुदाय में बदलने का काम दसवें गुरू गोविन्द सिंह (१६६४-१७०८) ने किया। वे लगातार औरंगजेब के विरूद्ध युद्ध करते रहे। उनकी मृत्यु के बाद गुरू परंपरा खत्म हो गई और ग्रंथ साहब को गुरू बनाया गया। सिक्खों का नेतृत्व बंदा सिंह या बंदा बहादुर ने सभाँला। यह भी मुगलों के खिलाफ लड़ता सन् १७१५ में मार डाला गया। नादिरशाह और अब्दाली के आक्रमणों से जर्जर मुगलसाम्राज्य की कमजोरी का लाभ सिक्खों ने भी उठाया और सैनिक शक्ति संग्रह करना शुरू किया, लूटपाट भी किया। धन एकत्र किया और १७६५-१८०० के बीच पंजाब और जम्मू तक के भू भाग पर कब्जा जमा लिया। ये लोग १२ मिसलों या संघों में संगठित थे और आवश्यकतानुसार एक दूसरे की मदद करते थे।

धीरे-धीरे इन मिसलों पर शक्तिशाली प्रधानों ने कब्जा जमा लिया और आपस में लड़ने लगे। १७९९ के बीच सुकेरचकिया मिसल के प्रधान रणजीतसिंह ने लाहौर और अमृतसर पर कब्जा कर लिया। इन्होंने सतलज के पश्चिम के सभी प्रधानों को अपने अधीन कर लिया, और पंजाब में अपना राज्य कायम किया। इन्होंने फौज का अच्छा

संगठन किया। सन् १८०९ में अंग्रेजों ने रणजीत सिंह को सतलज पार करने से मना किया और सतलत से पूरब के राज्यों को अपने संरक्षण में ले लिया। रणजीतसिंह की मुत्यु के पश्चात् आंतरिक संघर्ष शुरू हो गया और अंग्रेजों को वहाँ घुसने का सुअवसर मिल गया। उन लोगों ने वह राज्य जीत कर अंग्रेजी राज में मिला लिया।

यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियाँ-

सन् १४९८ में पुर्तगाल का निवासी वास्को डी गामा भारत आया। इससे पूर्व १४९४ में स्पेन निवासी भारत को खोजता अमेरिका पहुँचा गया था। अमेरिका और भारत पहुँचने के मार्ग की खोज यूरोपीय लोगों के लिए तो महत्त्वपूर्ण घटना थी ही मानव जाति के इतिहास की भी महत्त्वपूर्ण घटना थी। इसके फलस्वरूप औद्योगिक क्रांति में बड़ी सहायता हुई और १७वीं १८वीं शताब्दी के विश्व व्यापार में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। अफ्रीका से सोना चाँदी और गुलामों का तथा अमेरिका से बहुमूल्य खनिजों और भारत से मसाले, रूई आदि का व्यापार करके यूरोप के अनेक देश समृद्धिशाली हो गये।

पुर्त्तगाली कम्पनी-

भारत और पूर्वी देशों से व्यापार करने पहले पुर्त्तगाली आयें। इनके पास कुशल नौसेना थी। १५१० ई० में एलबुकर्क ने गोवा पर कब्जा किया और फारस की खाड़ी के देशों से लेकर इण्डोनेशिया जावा-सुमात्रा तक व्यापारिक एकाधिकार कायम किया। ब्रिटिश इतिहासकार जेम्स मिल ने लिखा है। 'पुर्त्तगालियों ने सौदागारी को मुख्य पेशा बनाया और लूटपाट करने से भी नहीं चूकते थे।' सन् १६३१ में मुगल सत्ता से इनका टकराव हुआ तब हुगली स्थित बस्ती से इन्हें बाहर निकाल दिया गया। १५८० में पुर्त्तकाल पर स्पेन का अधिकार हो गया। १५८८ में अंग्रेजों ने आर्मडा नामक स्पेनी जहाजी बेड़े को तहस नहस करके स्पेन और पुर्त्तगाल की फौजी शक्ति को खत्म कर दिया।

डच कम्पनी-

१५९५ में चार डच जहाज भारत आये और १६०२ में डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना हुई। इस कम्पनी को डच संसद ने युद्ध और संधि करने, प्रदेशों को जीतने तथा किले बनाने आदि का अधिकार भी व्यापार करने के साथ दिया था। इन्होंने सूरत, भड़ौच, अहमदाबाद, कोचीन, नागपत्तन, मछलीपत्तन, चिन्सुरा, पटना और आगरा में अपने व्यापारिक गोदाम बनाये। ये भारत से नील, कच्चा रेशम, सूती कपडा, शोडा और अफीम का निर्यात करते थे। भरतीयों से इनका सलूक अच्छा नहीं था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी को ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत से भगा कर अपना कब्जा जमाया।

ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी-

सन् १५९९ में मर्चेन्ट ऐडवेंचर्स नामक सौदागरों के एक समूह के तत्त्वाधान में पूरब के साथ व्यापार करने के लिए कम्पनी की स्थापना की गई। महारानी एलिजाबेथ ने सन् १६०० में इसे पूरबी देशों के साथ व्यापार का एकाधिकार प्रदान किया। १६०८ में सूरत में एक कारखाना खोला। कैप्टन हाकिन्स को जहाँगीर के दरबार में भेजा गया किन्तु उस समय पुर्तगाली प्रभाव के कारण उसे आगरा से वैरंग वापस लौटना पड़ा; इन लोगों ने पुर्तगालियों को परास्त किया; मुगल दरबार में अपना प्रभाव बढ़ाया और पश्चिमी तट पर कई स्थानों में कारखाना खोलने का शाही फरमान प्राप्त किया। १६१५ ई० में सर टामस रो मुगलदरबार में पहुँचा और मुगल साम्राज्य के सभी हिस्सों में व्यापार करने का फरमान हासिल कर लिया। पुर्तगाली गोवा, दमन, दिव को छोड़ शेष सभी स्थानों से हट गये।

इस कंपनी का डच कम्पनी से इण्डोनेशिया के मसाला व्यापार के लिए संघर्ष हुआ तो अंग्रेजों ने भारतीय व्यापार पर विशेष ध्यान देना प्रारंभ किया और १७९५ ई० तक डचों को भारत के सभी स्थानों से बहिष्कृत कर दिया। सन् १६०० से १७४४ तक ईस्ट इण्डिया कंपनी के व्यापारिक प्रभाव में लगातार वृद्धि होती रही। इन लोगों ने राजनीतिक शक्ति-शून्यता का लाभ उठाकर पहले दक्षिण भारत में अपने व्यापार एवं अधिकार क्षेत्र का प्रसार किया। धर्म प्रचार भी करते रहे। मछलीपत्तन तथा मद्रास के कारखाने की किले बन्दी करके इन स्थानों पर पूर्ण स्वामित्व स्थापित किया। कमाल की बात यह है कि इस कंपनी ने इस देश को जीतने के लिए जो भी लड़ाई लड़ी उसका खर्च इसी देशवासियों से वसूला, चाहे दण्ड नीति से या कूटनीति और भेदनीति से। सन् १६६८ में मद्रास के कारखाने के बाद उड़ीसा, हुगली, पटना, बालासोर और ढाका आदि कई स्थानों पर कारखाने खोले गये। कम्पनी ने भारतीय व्यापार पर कब्जा करने के उपरान्त भारत पर राजनीतिक सत्ता स्थापित करने का निश्चय किया और यही के संसाधनों से इस देश को जीतने का लक्ष्य बनाया। सन् १६८७ में कम्पनी के निदेशक मंडल ने मद्रास के गर्वनर को लिखा, "आप नागरिक और नौसैनिक शक्ति की ऐसी नीति निर्धारित करें, तथा राजस्व की इतनी बड़ी राशि का प्रबन्ध करें कि दोनों को सदा-सर्वदा के लिए भारत पर एक विशाल, सुदृढ़ और सुरक्षित आधिपत्य का आधार बनाया जा सके"[१]

कम्पनी का राज्य प्रसार और प्लासी का युद्ध

सन् १६८९ में मुगलबादशाह और अंग्रेजों के बीच हुगली लूटने के मुद्दे पर लड़ाई छिड़ी, अंग्रेज हार गये और डेढ़ लाख रुपया हर्जाना देकर पुनः व्यापार का हक

प्राप्त किया। सन् १६९८ में कौलिकत्ता, सुतानटी और गोविन्दपुर नामक तीन गाँवों की जमींदारी हासिल करके कम्पनी ने वहाँ अपने कारखाने के पास फोर्टविलियम कालेज की स्थापना की। सन् १७१७ में फर्रूखशियर ने कम्पनी को पूर्ववत् समग्र भारत में व्यापार की मंजूरी दे दी, मगर बंगाल के नवाबों ने उनकी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति में बाधा डाली; फिर भी वे कलकत्ता, बम्बई और मद्रास जैसे महत्त्वपूर्ण नगरों और बन्दरगाहों की किलेबन्दी करके अपने निश्चित लक्ष्य की तरफ बढ़ते रहे। कम्पनी राज्य के विस्तार का समय वस्तुत: सन् १७५६ से १८१८ के बीच की अवधि है। कलकत्ता की किलेबन्दी को तोड़ने का आदेश नवाब सिराजुद्दौला ने दिया और देश के कानून को मानने पर उन्हें मजबूर करने का निश्चय करके कासिम बाजार के कारखाने पर तुरंत कब्जा कर लिया। २० जून सन् १७५६ में उसने फोर्ट विलियम पर अधिकार कर लिया। अंग्रेज भागकर फुल्टा पहुँचे और नवाब के शक्तिशाली दरबारियों के साथ मिलकर प्रलोभन और उत्कोच देकर नवाब के विरूद्ध षड़यंत्र करने लगे। मीरजाफर, मानिकचंद, अमीचंद, जगतसेठ और खादिम खाँ आदि विश्वासघात में शामिल हो गये। इसी बीच मद्रास से एक शक्तिशाली सेना क्लाइव के नेतृत्व में युद्ध के लिए आ गई और २३ जून सन् १७५६ में प्लासी के मैदान में निर्णायक युद्ध हुआ। जिसमें मीरजाफर और राय दुर्लभ के विश्वासघात के कारण नवाब पराजित हो गया। मीरजाफर के बेटे मीरन ने उसे मार डाला। इस विजय ने अंग्रेजों के भारत विजय अभियान का द्वार खोल दिया। मीरजाफर ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा में मुक्त व्यापार का अधिकार तथा चौबीस परगना की जमींदारी सौंप दी। इस युद्ध से क्लाइव को बीसलाख, बाट्स को १० लाख और कर्मचारियों को कुल मिला कर ३ करोड़ रूपये मीरजाफर ने घूस दिया। ब्रिटिश इतिहासकार एडवर्ड थाम्सन और जी० टी० कैरेट ने लिखा है, "जब तक बंगाल को पूरी तरह चूस नहीं लिया गया तब तक शांति नहीं हुई।" प्रजा पर जमकर अत्याचार किया गया, मनमाना शोषण किया गया। बंगाल को बंबई और मद्रास प्रेसिडेन्सियों का खर्च भी उठाना पड़ा। जब मीरजाफर ने शैतान के आंत की भाँति बढ़ती कम्पनी की मांग पूरा करने में आनाकानी की तो कम्पनी ने सन् १७६० में उसे हटा कर उसके दामाद मीरकासिम को गद्दी पर बैठा दिया। मीरकासिम ने २९ लाख रुपयें उत्कोच में दिया और वर्दबान, मिदनापुर तथा चटगाँव जिलों की जमींदारी कम्पनी को दे दी।

बक्सर का युद्ध-

अंग्रेज मीरकासिम को कठपुतली समभते थे पर वह इसके लिए तैयार न था, फलत: १७६३ में लड़ाई हुई जिसमें मीरकासिम हार गया और भाग कर अवध के नवाब शुजाउद्दौला के पास गया। उसके माध्यम से मुगल सम्राट शाहआलम द्वितीय से साठगाँठ

किया और तीनों ने मिलकर १७६४ में कम्पनी पर धावा बोल दिया। बक्सर में पुनः एक निर्णायक युद्ध हुआ जिसमें ब्रिटिश फौज ने मुगल सम्राट और अवध तथा बंगाल के नवाबों की सम्मिलित सैन्य शक्ति को रौंद कर उत्तर भारत में सुगमता से अपना साम्राज्य बढ़ाने का सुनहरा अवसर प्राप्त किया फिर तो जैसा हिन्दी के प्रसिद्ध कहानीकार भगवती चरण वर्मा ने लिखा है-'कम्पनी राज रबर के तम्बू की तरह दिल्ली तक पहुँच गया।[२] इस लड़ाई में विजय प्राप्त करके कंपनी ने बंगाल, बिहार, और उड़ीसा की पूर्ण राजसत्ता प्राप्त की और अवध भी उसकी कृपा पर निर्भर हो गया। शाह आलम ने कम्पनी को उक्त तीनों प्रदेशों की दीवानी अथति राजस्व वसूलने का अधिकार दे दिया। बादशाह इलाहाबाद के किले में छः साल तक एक प्रकार से कम्पनी का कैदी बन कर रहा। नवाब अवध शुजाउद्दौला ने ५० लाख रु० हर्जाने में दिया। केवल १७६६ से ६८ के बीच ५७ लाख पौण्ड की रकम बंगाल से वसूली गई। १७७० में बंगाल में भयंकर अकाल पड़ा। इस दुहरी मार से बंगाल बिलबिला उठा, प्रजा भूखों मर गई; नैतिकता और संस्कृति की सारी सीमायें ढ़ह गई।

उत्तर भारत की शक्तियों को दबा कर कम्पनी ने दक्षिण भारत की तरफ ध्यान दिया जहाँ उसे मराठों, हैदरअली और निजाम हैदराबाद से मोर्चा लेना था। उस समय कम्पनी का नेतृत्व गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंगज़ के हाथों में था। उसने बड़ी कूटनीतिक चातुर्य के साथ महादजी सिन्धिया को मध्यस्थ बनाकर १७८२ ई० में सालबाई की संधि कर ली। अंग्रेज त्रिगुट के संयुक्त मोर्चे से युद्ध करने से बच कर शक्ति संचय करने लगे। हेस्टिंग्ज ने घूस देकर निजाम को फोड़ लिया, मराठो से समझौता कर ही लिया था फलतः हैदरअली को अकेला पाकर उसे पराजित कर दिया। उसके पुत्र टीपू की सैनिक शक्ति तोड़ने के लिए अंग्रेजों के नेता कार्नवालिस ने कूटनीति के जरिये मराठों, निजाम और त्रावणकोर तथा दुर्ग के शासकों को अपनी ओर मिला लिया। १७९८ ई० में लार्ड वेल्ज़ली गवर्नर जनरल बन कर भारत आया। उस समय मराठे अपने आंतरिक संघर्ष में उलझे थे; अकेला चना कैसे भाड़ फोड़ता, टीपू पराजित हो गया। टीपू की हार से कम्पनी को दक्षिण भारत में अपना राज्य प्रसार करने का सरल मार्ग मिल गया। वेलेजली ने सहायक संधि द्वारा तमाम देशी रियासतों को अधीन बनाया; टीपू को जीत ही चुके थे, अवध के नवाब, हैदराबाद के निजाम और कर्नाटक के नवाब आदि ने इस संधि पर हस्ताक्षर करके कम्पनी की अधीनता मान ली। मराठों का महासंघ शक्तिशाली पड़ रहा था इसी बीच वेलेजली के स्थान पर हेस्टिंग्ज आया। १८१७ में पेशवा ने पूनास्थित ब्रिटिश रेजिडेन्सी पर धावा किया और हार गया, पेशवा को गद्दी से उतार कर पेन्शन देकर बिठूर भेज दिया गया, उसका राज्य कम्पनी राज्य में मिला लिया गया। अब मराठे भी कम्पनी की दया पर आश्रित हो गये। मराठों के पतन के पश्चात् राजपूतों ने भी कम्पनी

की अधीनता मान ली। सन् १८१८ तक पंजाब और सिन्ध को छोड़कर संपूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप अंग्रेजी शासन के शिकंजे में कसा जा चुका था, शेष पर परोक्ष रूप से कम्पनी देशी रजवाड़ों और रेजिडन्टों के माध्यम से शासन कर रही थी।

युद्धों से मौका पाकर कम्पनी ने कुछ प्रशासनिक, विधिक सुधार किए और १८१८ से १८५६ ई० तक ब्रिटिश सत्ता का सुदृढ़ीकरण हुआ। १८४३ में सिन्ध पर और १८३९ में पंजाब पर कम्पनी ने विजय प्राप्त कर लिया। लार्ड डलहौजी (१८४८-५६) चाहता था कि भारत के अधिकाधिक बड़े भूभाग पर प्रत्यक्ष ब्रिटिश शासन कायम हो इसलिए उसने देशी रियासतों को समाप्त करने की नीतिवश, उत्तराधिकार अपहरण का रास्ता अख्तियार किया। इस नीति के चलते उसने सतारा, नागपुर, झाँसी और अवध की रियासतों को ब्रिटिश राज्य में मिला लिया। इस प्रकार सन् १८५६ तक प्राय: संपूर्ण भारत पर कम्पनी का प्रभुत्व स्थापित हो गया था। यह काल भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन का काल हैं। कम्पनी ने इसी बीच कुछ सामाजिक, प्रशासनिक और नागरिक सुविधा संबंधी सुधार लागू किए जिनका देश के नवजागरण और प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के छिड़ने में मुख्य हाथ था। आगे उनका संक्षिप्त उल्लेख किया जा रहा है।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की व्यापार नीति-

सन् १८१३ तक इसकी व्यापार नीति कम्पनी तथा उसके कर्मचारियों के लिए अधिकाधिक भारतीय संपदा के दोहन की रही, बाद में ब्रिटिश उद्योग के जरूरतों के अनुकूल उसकी व्यापारिक नीति रखी गई। इस नीति के तहत अपनी मजबूत पकड़ बनाने के लिए परिवहन और संचार माध्यमों का विकास यहाँ के धन से ही किया गया। सन् १८३१ में रेल का प्रारंभ मद्रास से किया गया। सन् १८३४ से भाप के इन्जन रेलगाड़ियों में लगने लगे। १८५३ में बंबई से थाना तक पहिली रेल पटरी यातायात के लिए चालू की गई और १८६९ ई० तक चार हजार मील लंबा रेलमार्ग बन गया जिसका क्रमश: विस्तार हुआ और परिवहन की सुविधा हो गई। रेलों के द्वारा सुगम डाक व्यवस्था की भी सहूलियत मिली। प्रथम टेलीग्राफ लाइन द्वारा कलकत्ता से आगरा तक तार भेजने की सुविधा सन् १८५३ तक हो गई। लार्ड डलहौजी के समय डाक टिकट चालू किए गये।

प्रशासनिक नीति-

सन् १७५७ से १८५७ के बीच कम्पनी की प्रशासनिक नीति में बराबर परिवर्तन किया गया लेकिन सबका उद्देश्य कम्पनी का मुनाफा बढ़ाना, भारतीय संपदा

का ब्रिटेन के लाभार्थ अधिकाधिक दोहन करना और ब्रिटिश दबदबे को बढ़ाना था। इसीलिए प्रशासनिक तंत्र को इन लक्ष्यों की पूर्ति का साधन बनाने के लिए बार-बार बदलना पड़ा। इस बीच भारतीय प्रजा का जो भयंकर शोषण कम्पनी के कर्मचारियों ने किया उसके लिए एक उदाहरण पर्याप्त होगा। अकेले क्लाइव इतनी संपत्ति लेकर इंग्लैण्ड लौटा जिससे उसे प्रति वर्ष चालीस हजार पौण्ड की आय होती थी। स्वयम् अंग्रेजों ने क्लाइव और हेस्टिंग्ज के लूट की भरपेट निंदा की। १७६७ में एक कानून बनाकर ब्रिटिश संसद ने कम्पनी को चार लाख पौण्ड प्रतिवर्ष ब्रिटिश खजाने में देने को विवश किया। कम्पनी के धनी-अधिकारियों ने अपने दलालों के लिए पैसे के बल पर हाउस आफ कामन्स में सीटें खरीदनी शुरू की। इसलिए यह निश्चय हुआ कि ब्रिटिश सरकार कम्पनी के भारतीय प्रशासन की मूलनीतियों को नियंत्रित करेगी जिससे भारत में ब्रिटिश शासन संपूर्ण ब्रिटिश उच्च वर्ग के हित में चलाया जा सके। सन् १७७३ में रेगुलेटिंग एक्ट पास हुआ और कम्पनी की गतिविधि पर निगाह रखने का काम ब्रिटिश सरकार को दिया गया। सन् १७८४ में पिट्स इण्डिया एक्ट और बाद में इसी प्रकार के कई कानून बने जिससे कंपनी निदेशक मंडल की शक्ति और विशेषाधिकार कम होते गये। सन् १८१३ में चार्टर एक्ट द्वारा कम्पनी के भारत के व्यापारिक एकाधिकार को खत्म कर दिया गया। सर्वोच्च सत्ता गवर्नर जनरल और उसकी कौन्सिल को दे दी गई जो ब्रिटिश सरकार के नियंत्रण में शासन करता था।

भूराजस्व संबंधी व्यवस्था-

काफी पुराने जमाने से भारतीय राज्य किसानों से कृषि पैदावार का एक हिस्सा भूराजस्व के रूप में सीधे या बिचौलियों द्वारा वसूल करता था। १७६५ ई० में कम्पनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी मिली तो पहले पुरानी व्यवस्था चली। १७७२ में बिचौलियों को हटाकर सीधे भूराजस्व वसूलने का निश्चय किया गया। वारेन हेस्टिंग्ज ने पुनः ऊंची बोली लगाने वाले ठेकेदारों को यह काम सौंपा पर इससे भूराजस्व संबंधी अस्थिरता बनी रही, इसे स्थिर और स्थायी करने के उद्देश्य से लार्ड कार्नवालिस ने १७९३ ई० में स्थायी बंदोबस्त बंगाल और बिहार में लागू किया और भूराजस्व वसूलने वालों को जमींदार बना दिया। इससे नये शोषक अभिजात वर्ग का उदय हुआ, किसानों की स्थिति निम्नकोटि के रैयत की हो गई, उन पर जमींदारी शोषण और जुल्म बढ़ा। बाद में चल कर स्थायी बंदोबस्त उड़ीसा, मद्रास और उत्तर प्रदेश के वाराणसी, गाजीपुर तक के भूभाग पर लागू किया गया। अन्य भूभाग में रैयतवाड़ी प्रथा चलाई गई जिसमें सीधे रैयत के साथ भूमि का बंदोबस्त किया गया। कहीं कहीं जमींदारी प्रथा का कुछ परिवर्तित रूप महालबारी बंदोबस्त लागू किया गया। अंग्रेजों ने जमीन को माल का रूप

देकर उसे खरीदने बेचने की व्यवस्था चलाई, इससे देश की भूमि व्यवस्था में बुनियादी परिवर्तन आया। भारतीय गाँवों की स्थिरता, निरंतरता चौपट हुई और ग्राम समाज का पुराना ढाँचा चरमरा गया।

सामाजिक और सांस्कृतिक नीति-

धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक मामलों में सन् १८१३ तक कम्पनी की नीति गैर हस्तक्षेप की थी। बाद में उनलोगों ने भारतीय समाज और संस्कृति तथा धर्म में दखल देने तथा उसमें अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए सक्रिय कदम उठाया। यूरोप में १८वीं शदी में विज्ञान और तकनीकी ज्ञान के प्रचार-प्रसार के साथ औद्योगिक क्रान्ति हुई और नैतिक मूल्यों तथा सोच विचार के तौर तरीकों पर नवीन दृष्टिकोण अपनाया जाने लगा। १७८९ में फ्रांन्स की क्रान्ति ने स्वतंत्रता, समता और बन्धुत्व का संदेश दिया जिससे जनतांत्रिक भावना और आधुनिक राष्ट्रीयवादी विचारणा यूरोपीय लोगों में जाग्रत हुई। बेकन, लॉक, बाल्तेयर, रुसो, कांट, ऐथमस्मिथ और बेंथम आदि महापुरूष इस विचारधारा के प्रबल पोषक थे। साहित्य में इसी भाव की व्यंजना वर्डसवर्थ, शैली, बायरन और डिकेन्स आदि रचनाकारो ने किया। यह नया चिंतन और बौद्धिक परिवर्तन फांसीसी क्रांति और औद्योगिक क्रांति की देन थी। भारतीय जनता के प्रति कम्पनी के अहलकारों का दृष्टिकोण रुढ़िवादि था इसलिए उन्होंने व्यापक पैमाने पर आधुनिकीकरण के बजाय सावधानी और मन्द गति से नया परिवर्तन लाने की नीति का अनुसरण किया लेकिन सन् १८५८ के बाद भारतीयों ने स्ववंत्रता, समता और राष्ट्रीयता के नवीनसिद्धांतों के अनुसार शासन की मांग शुरू कर दी। इससे पूर्व ही विलियम बेटिंग के समय सती प्रथा को रोकने का सफल प्रयत्न हुआ था, लड़कियों की शिशु हत्या रोकने, हिन्दुविधवाओं का पुनर्विवाह करने और शिक्षा के प्रचार की दिशा में भी काफी कार्य आगे बढ़ाया गया था। भारत मंत्री की १८५४ की शैक्षणिक विज्ञप्ति शिक्षा प्रसार की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। इससे देश में नवजागरण की लहर उठने लगी। सन् १८८५ में कांग्रेस की स्थापना हुई और उसने स्वतंत्रता संग्राम छेड़ दिया।

नवजागरण और राजा राममोहनराय

प्रायः सभी लोग इस बात से सहमत है कि पश्चात्य प्रभाव और संपर्क के फलस्वरूप भारत में नवजागरण आया। चिंतनशील भारतीयों ने अपने समाज की कमियों को जानने तथा उन्हें दूर करने के तौर-तरीके ढूढ़ने का प्रयत्न प्रारंभ कर दिया। ऐसे लोग मानवतावाद, विज्ञान और विवेक में विश्वास करते थे। इस नये बुद्धिवादी वर्ग में भूमिपति,

पूँजीपति और मजदूर तबके के लोग मिले जुले थे। राजाराममोहन राय को नवजागरण के अग्रदूतों में प्रधान व्यक्ति के रूप में गिना जाता है। उनके मन में प्राच्य दार्शनिक विचारों के साथ पाश्चात्य विचार धारा एवं संस्कृति के लिए महत्त्वपूर्ण स्थान था। वे चाहते थे कि देशवासी विवेकशील और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ सभी नरनारियों की मानवीय प्रतिष्ठा और सामाजिक समानता के सिद्धांत को स्वीकार करें। देश में आधुनिक उद्योग-धंधे प्रारंभ हों। उन्होंने १८०९ ई० में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक एकेश्वरवादियों को उपहार (गिफ्ट टू मोनोर्थाइस्ट्स) (Gift to monotheists) फारसी में लिखी जिसमें अनेक देवी देवताओं के स्थान पर एकेश्वरवाद का समर्थन किया गया था। उन्होंने धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों, रूढ़ियों का विरोध किया; मूर्ति पूजा, जातिवादी कट्टरता और पाखण्डी धार्मिक कृत्य, अंधविश्वास, पुरोहितवाद आदि का खण्डन किया। सन् १८२० में उन्होंने अपनी एक अन्य रचना 'प्रीसेप्ट्स आफ जीसस' में न्यूटेस्टामेंट के नैतिक और दार्शनिक संदेश की प्रशंसा और उसमें वर्णित चमत्कारों की उपेक्षा की। वे प्राच्य और पाश्चात्य दर्शन तथा परंपरा और प्रगति में समन्वय स्थापित करना चाहते थे। स्वाभाविक था कि यथास्थितिवादी और रूढ़िवादी उनका विरोध करें। उन्हें समाज बहिष्कृत कर दिया गया, विधर्मी घोषित किया गया फिर भी वे हताश न हुए और सन् १८२९ *में उन्होंने ब्रह्मसमाज की स्थापना करके अपने सुधारवादी आंदोलन की दिशा में क्रांतिकारी* कदम रखा। सती प्रथा पर रोक लगाने का कानून उन्हीं के प्रयत्नों का फल था। औरतों को अधिकार दिलाना, शिक्षा का प्रचार करना उनका प्रमुख कार्यक्रम था।

सन् १८३०-४० के बीच कलकत्ता में एक ऐंग्लों इण्डियन सज्जन हेनरी विवियन डेरोजियों के प्रयास से यंगबगाल आंदोलन शुरू हुआ। इन लोगों ने मुक्त चिंतन, विवेकशील प्रामाणिक परख, समानता, स्वतंत्रता और सत्यप्रियता पर जोर दिया। वह प्रखर राष्ट्रवादी कवि था। उसने राममोहन राय की विचारधारा को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। सन् १८३९ई० में देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने राममोहन राय के विचारों के प्रचारार्थ तत्वबोधनी सभा की स्थापना की। इसमें ईश्वरचंनद्र विद्यासागर, अक्षयकुमार दत्त आदि प्रमुख व्यक्ति थे। सन् १८४३ में देवेन्द्र नाथ ठाकुर ने ब्रह्मसमाज का पुनर्गठन किया। इन व्यक्तियों और संस्थाओं के साथ ही आधुनिक भारत के निर्माताओं में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का नाम विशेष रूप से स्मरणीय हैं।

पश्चिम भारत पाश्चात्य विचारों के प्रभाव क्षेत्र में बंगाल के बाद आया क्योंकि १८१८ से पूर्व पश्चिम भारत का कोई भूभाग ब्रिटिश नियंत्रण में नहीं आया था सन् १८४९ में परमहंस मंडली की स्थापना महाराष्ट्र में की गई। इसके संस्थापक भी एकेश्वरवाद में विश्वास करते थे। तथा जाति पाति के भेदभाव नहीं मानते थे, अवर्णों के हाथ का

बनाया भोजन करते थे। सन् १८४८ में कुछ शिक्षित युवकों ने साहित्यिक और वैज्ञानिक समिति की स्थापना की जिसकी दो शाखायें गुजराती और मराठी 'ज्ञान प्रसारक' मंडलियाँ थी। ये लोग नारी शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। ज्योतिबा फुले और उनकी पत्नी ने १८५१ ई० में पुणे में एक बालिका विद्यालय खोला और उसकी देखा देखी अन्य कई विद्यालय खुले। फुले महाराष्ट्र में विधवा विवाह आन्दोलन के अग्रदूत थे। विष्णु शास्त्री पंडित ने विधवा पुनर्विवाह मंडल की स्थापना की। अन्य समाज सुधारकों में गोपालहरि देशमुख, लोकहितवादी मंडल और कर्सन दास मूल जी के प्रयत्न भी उल्लेखनीय है। ज्योतिबाफुले माली परिवार में जन्में थे, वे अछूतों की दयनीय दशा के भुक्त भोगी थे अत: उन्होंने ऊँची जातियों के वर्चस्व के विरूद्ध अभियान चलाया। पारसी संप्रदाय के अगुआ दादाभाई नौरोजी ने 'पारसी ला असोसियेशन' की स्थापना की। इस संस्था ने भी नवजागरण में अपना अंशदान दिया। मुस्लिम संप्रदाय में यह काम कुछ हद तक सर सैयद अहमद खाँ ने किया। इन सब महापुरुषों और संस्थाओं के क्रियाकलापों से जन साधारण ने जागरण की प्रथम अँगड़ाई ली। लोग अपने अधिकारों के प्रति सचेत हुए और कम्पनी के शोषण तथा राष्ट्रीय अपमान से मुक्ति के लिए संगठित हुए। फलत: १८५७ में देश का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम हुआ।

सन् १८५७ का विद्रोह-

यह विद्रोह कम्पनी प्रशासन के विरूद्ध जनता की संचित शिकायतों और विदेशी राज के प्रति उसकी नापसंदगी का परिणाम था। यद्यपि इसकी शुरूआत सिपाही-विद्रोह से हुई किन्तु इसका वास्तविक कारण व्यापक जन असंतोष था। कम्पनी के काले शासन ने देश के कृषकों, शिल्पियों, दस्तकारों और पुराने भूस्वामियों का इतना उत्पीड़न-शोषण किया था कि सभी उससे छुटकारा चाहते थे। गोद न लेने की नीति के कारण देशी रजवाड़े भी असंतुष्ट थे। भारतीय उच्चवर्ग के लोग भी ऊँची सरकारी नौकरियाँ नहीं पाते थे। ईसाई मिशनरियों की गतिविधि तेज हो गई थी और धर्मप्राण जनता के मन में यह भय भर गया था कि अंग्रेजी राज उनके धर्म के लिए खतरा है। १८५६ में अवध के नवाब वाजिदअलीशाह को अयोग्य ऐय्याश घोषित करके उसे राज्यच्युत किया गया था। वादा यह किया गया कि नवाब को हटाकर प्रजा को कम्पनी शासन द्वारा अधिक सुख सुविधा दी जायेगी। पर ये दोनों बातें जब झूठी निकली तो देश के केन्द्र प्रदेश अवध में व्यापक जनरोष उमड़ा। उधर नाना साहब और लक्ष्मीबाई के साथ जो अन्याय हुआ था उसके विद्रोह की लहर अवध से झांसी तक फैल गई थी।

सिपाही विद्रोह नये कारतूसों को लेकर शुरू हुआ जिन्हे मुंह लगाना पड़ता था और जिसमें चर्बी लगी होने की बात फैल गई थी, यह भी धर्म पर आघात समझा

गया। मेरठ की छावनी से बगावत शुरू हो गई। प्रथम अफगान युद्ध (१८३८-४२) पंजाब युद्ध (१८१३-४८) और क्रिमिया युद्ध (१८५४-५६) में अंग्रेजों की हार होने से ब्रिटिश फौज की अपराजेयता का भ्रम टूट गया था। मंगल पाण्डे की फाँसी के बाद सिपाही विद्रोह पूरे वेग से भड़क उठा। जन समर्थन के कारण विद्रोह की ज्वाला शीघ्र ही दावाग्नि की तरह दूर-दूर तक फैल गई; इसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों संप्रदायों के सिपाही और साधारण लोग कन्धे से कन्धा मिला कर अभूतपूर्व एकता के साथ खुलकर अंग्रेजों के विरूद्ध संघर्ष में शामिल हुए। दिल्ली के अंतिम सम्राट् बहादुरशाह 'जफर' को विद्रोहियों ने अपना नायक बनाया। अन्य सहायकों में लक्ष्मीबाई, नाना साहब, कुँवर सिंह, बख़्त खाँ आदि अनेक शूरवीर थे। विद्रोह के प्रमुख केन्द्र दिल्ली, बरेली, झाँसी, कानपुर, आरा थे। उस समय सिन्धिया और सिक्खों ने विद्रोहियों का साथ नहीं दिया। शुरू में सेठ साहूकार और अंग्रेजियत परस्त कुछ नवशिक्षित युवकों ने भी विद्रोह में हिस्सा नहीं लिया लेकिन बाद में बुद्धिवादी युवक अपनी भूल पर पछताये और राष्ट्रीय आंदोलन का जमकर समर्थन किया। अंग्रेजी शासन थोड़े समय के लिए डाँवाडोल हो गया था और लगा था कि देश कम्पनी शासन का जुआ इसी बार कन्धे से उतार फेकेगा, पर दुर्भाग्य से वह स्वप्न सच नहीं बन सका क्योंकि बागियों के पास कम्पनी के प्रति घृणा के अलावा कोई सार्वजनिक या राष्ट्रीय स्तर का सकारात्मक मुद्दा नहीं था, इसलिए विद्रोह क्रमशः ठंड़ा पड़ता गया। जगह-जगह आंदोलनकारी पराजित होते गये। दिल्ली में हारने के बाद विद्रोह बिखर गया। एक-एक करके विद्रोही नेता समाप्त कर दिए गये। बहादुरशाह को कैद करके रंगून भेज दिया गया और विद्रोह दमन का पूरा खर्च मयसूद-व्याज के देशवासियों से वसूला गया। संघर्ष एकदम व्यर्थ नहीं गया, कोई संघर्ष कभी व्यर्थ नहीं जाता। कवि की यह उक्ति (Say not the struggle not availeth) 'मत कहो कि संघर्ष व्यर्थ गया' एक शाश्वत सत्य की व्यंजना करती है। यह प्रथम राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष भारतीय इतिहास की एक गरिमामय युगांतकारी धटना सिद्ध हुई। कंपनी राज समाप्त हो गया। यह इस संघर्ष का ही सुपरिणाम था। महारानी विक्टोरिया भारत की राज-राजेश्वरी हुई और इतिहास का एक नया अध्याय प्रारंभ हुआ।

सामाजिक और आर्थिक स्थिति-

इस सदी में ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा भारतीय जनता का भयंकर आर्थिक-शोषण और दोहन किया गया। लगान में लगातार बढ़ोत्तरी; कम्पनी के अहलकारों, उसके ठेकेदारों और जमींदारों के अत्याचार, आये दिन प्रतिद्वन्दी सेनाओं के आक्रमण और लूटपाट से जन जीवन दुर्वह हो गया था। अव्यवस्था का लाभ उठाकर जगह-जगह बटमारों ठगों, चोरों, डकैतों ने भी लूट-खसोट मचा रखा था। आर्थिक विषमता का देश में विकराल

ताण्डव हो रहा था। एक तरफ घोर दरिद्रता से पीड़ित दो जून की सूखी रोटी के लिए मोहताज जनता थी तो दूसरी और अपार संपदा का ऐय्यासी में अपब्यय करने वाले सामंत और अहलकार थे। कृषि की व्यवस्था तकनीकी पिछड़ेपन और संसाधनों की कमी के कारण बुरी थी। इसलिए भारतीय कृषक वर्ग तवाह था।

भारत से सूती कपड़े, रेशमी कपड़े, लोहे का सामान, नील, शोरा, अफीम, चावल, गेहूँ, चीनी, मशाले और औषधियों का निर्यात विदेशों को होता था, किन्तु ग्रामवासियों की गरीबी और ग्रामों के स्वावलंबी होने के कारण आयात कम होता था इसलिए व्यापार लाभदायक था। इसलिए व्यापारी भी अपेक्षाकृत संपन्न थे। किन्तु अव्यवस्था, अराजकता और लगातार सैनिक अभियानों के कारण आंतरिक व्यापार असुरक्षित था, व्यापारिक मार्गों पर प्राय: कारवाँ लूट लिए जाते थे। छोटे-छोटे भूस्वामी जगह-जगह चुंगी वसूलते थे। इन बाधाओं के बावजूद भी व्यापार धंधे की स्थिति कृषि की तरह चौपट नही हो गई थी। व्यापार की स्थिति ठीक थी। महाराष्ट्र, आन्ध्र और बंगाल में जहाज निर्माण उद्योग विकसित हो गया था। यूरोपिय कम्पनियां अपने इस्तेमाल के लिए भारत में बने जहाज खरीदती थी। १९वीं शती के पूर्वार्द्ध में भारत विश्वव्यापार तथा वाणिज्य का प्रमुख केन्द्र समझा जाता था। रूस के पीटर महान ने कहा था 'याद रखो कि भारत का वाणिज्य विश्व का वाणिज्य है और जो उस पर पूरा अधिकार कर सकेगा वही यूरोप का अधिनायक होगा, इसलिए कई देशों की कम्पनियाँ भारतीय व्यापार के लिए आगे आई पर ब्रिटिश व्यापारियों ने इस मंत्र को अच्छी तरह समझा और वे शीघ्र ही यूरोप की सर्वश्रेष्ठ शक्ति बन आये। यहाँ के वाणिज्य पर अधिपत्य जमा कर ही अंग्रेज यूरोप की महाशक्ति और समुद्र की लहर-लहर पर शासन करने वाले विश्व के प्रमुख साम्राज्यवादी बन सके।

सामाजिक जीवन धर्म, क्षेत्र, कबीला, भाषा जाति-संप्रदाय आदि नाना आधारों पर बटा हुआ था। उच्च और निम्न वर्ग की जीवन शैली एक दूसरे से नितांत भिन्न थी। हिन्दू चार वर्णों, अनेक जातियों उपजातियों में विभाजित थे। इस व्यवस्था ने सामाजिक क्रम में लोगों का स्थान स्थायी रूप से निश्चित कर दिया था। जातीय पंचायतें परिषदें और प्रधान तथा मुखिया सामाजिक क्रम का थोड़ा भी उल्लघंन नहीं होने देते थे। वे जाति-नियमों को सख्ती से लागू करते थे, नियमों के उल्लघंन पर कठोर दण्ड देते थे, प्रायश्चित कराते थे और जाति बहिष्कृत भी कर देते थे। छूआछूत का कड़ाई से पालन करना पड़ता था। मुसलमान भी बुराई से एकदम अछूते नहीं थे। शिया-सुन्नी के झगड़े यदा-कदा होते थे। सामान्यता शरीफ और सम्पन्न मुसलमान निम्न वर्ग के मुसलमान को नीची निगाह से देखते थे, फिर भी उनमें हिन्दुओं से अधिक एका था।

हिन्दू परिवार पितृ सत्तात्मक था, वरिष्ठ पुरुष सदस्य परिवार का मुखिया होता था। संपत्ति में दाय भाग केवल पुरुषों को मिलता था। औरतों को पर्दे में और पूर्ण नियंत्रण में रखा जाता था किन्तु माता, पत्नी और पुत्री के रूप में उन्हें परिवार में पर्याप्त संरक्षण सुलभ था। निम्नवर्गीय स्त्रियाँ खेत खलिहानों में काम करती थी और उनके साथ मनचले संपन्न पुरुष यदा कदा बलात्कार भी करते थे। पुरुष एकाधिक पत्नियाँ, रखैल, उपपत्नियाँ रखते थे, पर स्त्रियों को यह हक़ नहीं था, पुनर्विवाह निंदित समझा जाता था। शादी-विवाह में उच्च वर्ग खूब फिजूल खर्ची करता था; उत्तर भारत में विधवाओं को कभी-कभी जबरन सती होने पर बाध्य किया जाता था। दक्षिण भारत में यह प्रथा नही थी। निम्न वर्ग में विधवा विवाह और पुनर्विवाह चलता था। जनता में अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, अशिक्षा का अंधकार व्याप्त था।

इस शती में शिक्षा उपेक्षित थी। शिक्षा पद्धति परंपरित और रूढ़ थी। पश्चिमी दुनियाँ में घटित होने वाले परिवर्तनों से भारतीय शिक्षा का संपर्क नहीं था। विज्ञान, भूगोल तकनीकी शिक्षा का पूर्ण अभाव था। शिक्षा का माध्यम संस्कृत, फारसी और देशी भाषाऐं थी। संस्कृत विद्यालयों में व्याकरण, न्याय दर्शन, काव्य, कर्मकाण्ड आदि विषयों की परंपरित शिक्षा दी जाती थी। फारसी भाषा को राजकीय संरक्षण प्राप्त होने से इसकी पढ़ाई अधिक होती थी। आमतौर पर प्राचीन परंमरा प्राप्त शिक्षा पद्धति ही विद्यालयों और मदरसों में चलती थी। यह शिक्षा भी उच्चवर्ग तक ही सीमित थी। स्त्रियों को शिक्षा के अधिकार से वंचित कर दिया गया था। शूद्रों का प्रवेश विद्यालयों में असंभव सा था। इसलिए साक्षरता का औसत काफी कम था। इसलिए मौलिक चिंतन और प्रगतिशील सोच-विचार का चलन नहीं था, गतानुगतिकता सभी क्षेत्रों में बढ़ती पर थी। यह सब होते हुए भी भारतीय समाज कुशिक्षित, असंस्कृत और अभद्र नहीं था। समाज में शिक्षकों का बड़ा सम्मान था।

संस्कृति और साहित्य की सामान्य स्थिति-

संस्कृति परंपराप्रिय थी। सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन तथा उसके व्ययभार का वहन प्राय: शाहीदरबार, सामंत और सरदार करते थे। इस शती में उनकी माली हालत पतली हो गई थी इसलिए सांस्कृतिक क्रियाकलाप के नाम पर नाच-गान ही होते थे। मुगल वास्तुकला और चित्रकला का ह्रास हो रहा था। दिल्ली के अनेक कलाकारों ने हैदराबाद, अवध, बंगाल और पटना के नवाबो-सामंतो के यहाँ जाकर संरक्षण प्राप्त किया था और इसके कारण चित्रकला की नई-नई स्थानीय शैलियों का प्रारम्भ हुआ। संगीत की स्थिति सदाबहार थी। मुहम्मदशाह और अवध के नवाबों के संरक्षण में संगीत की कई नवीन शैलियाँ जैसे टप्पा, खेमटा, ठुमरी आदि का चलन हुआ।

साहित्य में काव्य की स्थिति सोचनीय थी। कविता का दम अलंकार, रीति और रूढ़ियों के मलबे के नीचे दब कर घुट रहा था। उसमें कामुकता और हताशा के सिवा अन्य किसी विषय की व्यंजना नहीं के बराबर हो गई थी। फारसी-उर्दू में भी आशिकी रचनाओं की संख्या ही अधिक थी। उर्दू के कुछ शायरों ने नाम कमाया जैसे मीर, सौदा, नजीर, ग़ालिब आदि। इस काल में दक्षिण की मलयाली भाषा में पुनर्जीवन दिखाई पड़ा। केरल में कथाकली नृत्य नाटक का कुछ विकास हुआ। वास्तु कला और भित्तिचित्रों का उत्तम उदाहरण 'पद्मनाभन प्रासाद' इस काल का अच्छा नमूना है। तमिल में सित्तर काव्य का प्रवर्त्तक तायुमानवर (१७०६-४४) इसी समय हुआ। इसने मंदिर व्यवस्था और जाति प्रथा की कुरीतियों का विरोध किया। असम में अहोम राजाओं के संरक्षण में कुछ साहित्य रचना हुई। गुजरात में दयाराम के गीत और पंजाबी में वारिश शाह की हीर राझा इस काल की उल्लेखनीय रचनायें हैं। सिन्धी साहित्य का उत्कर्ष हुआ। शाह अब्दुल लतीफ, सचल और सामी आदि कई प्रसिद्ध सिन्धी साहित्यकार इसी शताब्दी में हुए।

गणित और नक्षत्र विद्या में प्राचीन उपलब्धियों की तुलना में यह शताब्दी इस क्षेत्र में कुछ नहीं दे सकी। सामंतो और साधारण जनों में अंधविश्वास और रूढ़िवादिता घर कर गई थी इसलिए ज्ञान-विज्ञान के नये झरोखे नहीं खुले। पश्चिम में जिस वैज्ञानिक बुद्धिवादी संस्कृति और साहित्य तथा ज्ञान-विज्ञान का प्रचार-प्रसार बढ़ रहा था और इसके कारण उनकी जो राजनीतिक और आर्थिक उन्नति हो रही थी उसकी ओर से भारतीय इस कालावधि में प्रायः अनभिज्ञ रहे। यह बौद्धिक और सांस्कृतिक पिछड़ापन हमारी गुलामी का एक प्रमुख कारण था। सत्ता और संपदा के लिए संघर्ष, आर्थिक दीवालियापन, सामाजिक पिछड़ापन और सांस्कृतिक जड़ता ने भारतीय जनता के चरित्र पर बुरा प्रभाव डाला। सामंत और सरदार तथा राजे और नवाबों का चरित्र तो साधारण जनता से भी गया गुजरा था। वे भ्रष्ट, पतित, कृतघ्न, ऐय्यास और चरित्रहीन थे। साधारण जनता उस आपद्काल में भी चरित्रवान् थी। उसके चरित्रबल की प्रशंसा जान मैल्काम, क्रानफार्ड आदि कई यूरोपीय अधिकारियों ने की है। वे परोपकारी, निश्छल, अतिथि का स्वागत करने वाले और नैतिक दृष्टि से चरित्रवान् थे, इस शती में इस समाज की महत्त्वपूर्ण विशेषता हिन्दु-मुसलमानों की आपसी समझदारी और बिरादरी की भावना थी। दोनों संप्रदाय मेलजोल से रहते थे, एक दूसरे के दुःख दर्द में हिस्सा बटाँते थे। सामंतो नवाबों की लड़ाई भी स्वार्थ पर आधारित थी न कि धर्म के नाम पर। राजनीति धर्म निरपेक्ष थी। आपसी भाईचारे का संबंध गाँवों और नगरों में बरकरार था। एक साझी संस्कृति का उत्थान हुआ था। भाषा भेद भी नहीं था। उर्दू भाषा के विकास में मुसलमानों के साथ हिन्दू लेखकों ने भी बड़ा योगदान किया। हिन्दुओं में भक्ति आन्दोलन और मुसलमानों में सूफीमत प्रचार के प्रभाव से यह भाईचारा और साझी संस्कृति का विकास संभव हुआ

था। दोनों कौमों में पारस्परिक सद्भाव सुदृढ़ हुआ। मुसलमान सरदार-सामंत भी होली दीवाली मनाते थे और हिन्दू मुहर्रम, ईद आदि में हिस्सा लेते थे। सारांश यह कि धर्म भारतीय समाज के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में अलगाव का नहीं बल्कि ऐक्य का मुद्दा था। अलगाव के मुद्दे दूसरे थे जैसे वर्ग भेद, जाति भेद और स्थान भेद आदि। हिन्दू मुसलमानों को आपस में लड़ाने उन्हें धर्म, भाषा, संस्कृति के आधार पर बॉटने का काम बीसवीं शती में अंग्रेजों ने अपनी सुविचारित 'नीति बॉटो और राजकरों' के आधार पर किया।

साहित्यिक और धार्मिक परिस्थिति-

१९वीं (वि०) हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल का उत्तरार्द्ध काल है। इस काल में 'यथा राजा तथा प्रजा' की स्थिति थी। राजा, नवाब, सामंत, जागीरदार, जमींदार, भूस्वामी सभी विलासिता और ऐय्यासी में डूबे हुए और उनके आश्रित दरबारी कवि, साहित्यकार भी उनके मनपसंद की रचनायें करते थे। इसलिए इस काल के हिन्दी साहित्य में शृंगार की प्रधानता थी। नायक-नायिका भेद, नखशिख वर्णन प्रमुख काव्य विषय था और रूढ़ि तथा रीति ग्रस्त अभिव्यंजना शैली प्रचलित थी। यही दशा कमोवेश तत्कालीन प्रायः सभी भारतीय प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य की भी थी। साहित्य में समाज प्रतिबिंबित हो रहा था। लेकिन श्रेष्ठ साहित्य केवल समाज का प्रतिबिम्ब ही नहीं होता बल्कि समाज का मार्गदर्शन भी होता है। हिन्दी का जैन साहित्य दूसरे प्रकार का है। उसमें शृंगार नायक नायिका भेद और नखशिख वर्णन के बजाय जैनधर्म, दर्शन, चिंतन, व्रत-उपवास आदि के वर्णनों की प्रधानता है। क्योंकि यह साहित्य प्रायः जैन साधुओं और नैष्ठिक श्रावकों द्वारा लिखा गया है। इसलिए इस साहित्य में प्रारम्भ से अब तक धार्मिक आख्यान, चरित्, कथा, तीर्थंकरों के पंच कल्याण और उनके उपदेश आदि के साथ जैन धर्म-दर्शन सम्बन्धी आगमों और पुराणों, चरितकाव्यों के आधार पर हिन्दी भाषा में रचनायें होती रही हैं। इसलिए कुछ विद्वानों ने इस साहित्य पर सांप्रदायिक साहित्य होने का तोहमत लगा कर इसे साहित्येतिहास के क्षेत्र से बाहर कर दिया था परंतु इतने विशाल साहित्य भंण्डार में ऐसी अनेकानेक कृतियाँ उपलब्ध हुई जो किसी भी साहित्य के टक्कर की हैं जिनमें भरपूर, साहित्यिक विशेषतायें हैं इसलिए इसे साहित्य में शामिल करने की जोरदार शिफारिस अनेक विद्वानों और समीक्षकों ने की। ऐसी विशेष परिस्थिति में इस साहित्य के अध्ययन के लिए जैन धर्म की तत्कालीन स्थिति का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करना उपयोगी है।

जैनधर्म-

जैन धर्म महावीर के बाद किसी समय वस्त्र पहनने और न पहनने के आधार

पर दिगम्बर और श्वेताम्बर नामक दो सम्प्रदायों में बँट गया। इन दोनों में एक मूलभूत समानता यह थी कि दोनों मूर्तिपूजक संप्रदाय थे। १६वीं शताब्दी में श्वेताम्बर संप्रदाय में एक क्रान्ति हुई और महावीर के निर्वाण के दो हजार वर्ष बाद वीर सं० २००१ से लोकाशाह ने गुण पूजक संप्रदाय का प्रचार प्रारंभ किया। ये मूर्तिपूजा के स्थान पर गुणपूजा को महत्त्व देते थे। वे असद् वृत्तियों के उच्छेदक थे। इनका वर्णन यथास्थान १६वीं शती के इतिहास के साथ किया गया है। आपका हीरे-जवाहरात का अहमदाबाद में ख्याति प्राप्त कारोबार था और वहाँ का शासक मुहम्मदशाह इन्हें बहुत मानता था। ये उसके दस वर्ष तक मंत्री रहे। संपन्नता में रह कर उनकी तत्त्व शोधक वृत्ति कभी मंद नहीं हुई। वह मंदिरों, मठों, प्रतिमा गृहों को आगम की कसौटी पर कस कर देखते तो उन्हें कहीं भी मोक्षोपाय में प्रतिमा की प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त होती थी। उन्होंनें घोषित किया कि मोक्ष की सिद्धि के लिए मंदिरोंपासना की कोई आवश्यकता नहीं। निग्रंथ धर्म के पालन के लिए मठाधीशों और सुखकामी साधुओं की दासता और उनपर अन्धविश्वास करने की जरूरत नहीं है। यहीं से जैन धर्म की एक नवीन क्रांतिकारी शाखा फूटी जो मंदिरोपासना और मूर्तिपूजकों से भिन्न हो गई। जैन धर्म में यह एक क्रॉंति थी। वे जड़ की पूजा के स्थान पर चैतन्य की पूजा पर बल देते थे। अंत मे उनकी भी वही गति हुई जो हर क्रांतिकारी की होती आई है। यही लोका गच्छ स्थानकवासी संप्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ। 'हार्ट आफ जैनिज्म'[१] की विदेशी लेखिका ने लिखा है कि लोका गच्छ मार्टिन लूथर के प्यूरिटन संप्रदाय की तरह सुधारवादी था। लोकाशाह की इस विरासत को स्थानकवासी संप्रदाय के साधुओं और श्रावकों के संघ ने कठिन संघर्ष करके आगे बढ़ाया। १६वीं १७वीं शती में लोकाशाह की क्रांति की मशाल जीवराज, लवजी, धर्मसिंह, धर्मदास और हरजी ऋषि ने प्रज्वलित रखी। ये लोग क्रियोद्धारक साधु थे। इनकी परम्परा आगे बढ़ी। इनमें धर्मदास के शिष्यों की संख्या अधिक थी। उन्होंने शिष्यों को २२ विभागों में बाँट कर सबके दायित्त्व निर्धारित किए। इसलिए इसे २२ टोलिया भी कहते हैं।

जैन समाज में 'उप' उपसर्ग का पर्याप्त प्रयोग मिलता है जैसे उपासक, उपाश्रय, उपवास आदि। उपाश्रयों के ममत्व से साधु शिथिलाचारी हो रहे थे। इनके स्थान पर स्थानक आये जो साधुओं के निमित्त नहीं बल्कि श्रावक धर्म चर्चा के निमित्त स्थान बनवाते थे। इसलिए इस संप्रदाय को स्थानकवासी कहा जाने लगा। आत्म साधना और लोकप्रचार इनकी मुख्य विशेषतायें थी। इस संप्रदाय के साधुओं ने लोक भाषा में साहित्य-रचना की और रास, ढाल, चौपाई आदि नाना काव्य विधाओं में मौलिक तथा अनूदित साहित्य का विशाल भंडार खड़ा किया इस शताब्दी में स्थानकवासी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का प्रबुद्ध जैन समाज पर गहरा प्रभाव दिखाई पड़ता है। इसका प्रभाव अन्य संप्रदायों पर

भी पड़ा।

इस शती में गुजरात के कठियावाड़ में स्वामी सहजानंद ने १८३७ में स्वामी नारायण संप्रदाय चलाया। ये लोग भी मूर्तिपूजा की अपेक्षा मानसीपूजा को श्रेष्ठ मानते है। इससे कुछ ही समय पहले १८१८ में भीखम जी ने तेरापंथ चलाया जो राजस्थानी थे। इन्होंने १२ अन्य साधुओं के साथ बगड़ी मारवाड़ में १८१८ में तेरह (तेरा पंथ) चलाया। ये हिंसा त्याग को धर्म मानते थे किन्तु असंयमी की प्राणरक्षा अनुचित मानते थे। आपने साहित्य की रचना की है। इनका जन्म सं० १७८७ में राजस्थान के कंटालिया ग्राम में हुआ। आपने मरुगुर्जर (हिन्दी) में भी साहित्य रचना की। इस पंथ के यशस्वी आचार्य तुलसी के नाम से सभी परिचित हैं। इनके अणुव्रत के अनुयायियों की संख्या दिनों दिन बढ़ती रही है। सारांश यह है जैन धर्म के दो प्रमुख प्रदेशो मरु और गुर्जर में क्रांति की लहर गतिशील थी। दलबन्दियों से ऊपर उठकर जैन समाज के संगठन के लिए इस शताब्दी में दिगम्बर श्वेताम्बर और स्थानकवासी-तीनों प्रमुख अंगों ने प्रयत्न किया। १८९४ में दिगम्बर कान्फ्रेन्स, १९०२ में मूर्ति पूजक श्वेताम्बर (जैन कान्फ्रेन्स की स्थापना हुई। स्थानकवासी समाज को संगठित करने के लिए अखिल भारतवर्षीय जैन कानफ्रेन्स की स्थापना की गई जिसका प्रथम अधिवेशन फरवरी १९०६ में मोरवी में हुआ।

स्थानकवासी धार्मिक साहित्य के रचनाकारों में अग्रगण्य नाम अमोलक ऋषि का है जिन्होंने ३२ आगमों को हिन्दी भाषा में अनूदित किया। जैन तत्त्व प्रकाश उनकी श्रेष्ठ कृति है। ग्रन्थ लेखकों में आत्माराम म०, घासीलाल जी म०, हस्तीमल जी म० आदि ऋषि आगम साहित्य को जनसुलभ बनाने के कार्य में जुटे हैं। आगमेतर साहित्य की रचना में जवाहिर लाल जी म० चौथमल जी म० आदि के नाम उल्लेखनीय है जो संप्रति रचनाशील हैं। इस कार्य में कई संस्थायें प्रशंसनीय कार्य कर रही है और साहित्य के प्रकाशन द्वारा महत्त्वपूर्ण योगदान कर रही हैं, उनमें जैन सिद्धान्त सभा, बम्बई, गुजराती साहित्य, जैन गुरुकुल व्यावर, स्थानकवासी जैन साहित्य परिषद अहमदाबाद तथा पार्श्वनाथ विद्याश्रम वाराणसी के नाम उल्लेख्य हैं।

जैन साधुओं, श्रावकों और जैन समाज का शासन-सत्ता से सदैव अच्छा संबंध रहा है। १८वीं शती के अंतिम दशक और १९वीं शती के प्रारंभिक चरण में लव जी ऋषि को खंभात के नवाब का क्रोध भाजन बनना पड़ा था; और उसने लवजी को कैद में डाल दिया। नवाब का कान लवजी के नाना वीर जी वोरा ने ही भरा था और लवजी को धर्म-विरोधी और शासन विरोधी कहा था परन्तु उनकी धर्मचर्या और साधुता से जेल के कर्मचारी और जेलर प्रभावित हुए। उनलोगों ने बेगम से इनके सदाचार की प्रशंसा

की। बेगम ने नवाब से कहकर लव जी को ससम्मान मुक्त करवा दिया। यतिवर्ग के द्वेष और षडयंत्र के कारण लव जी ऋषि को काफी कष्ट सहना पड़ा था। इन लोगों ने दिल्ली सम्राट् के कान भरे पर बाद में काजी ने वास्तविक घटना का पता लगा कर इनके विरोधियों को ताड़ना देकर छोड़ दिया और भविष्य में इनका उत्पीड़न न करने की कड़ी आज्ञा देकर वापस लौट गया।

इस शती में भी राजस्थान और गुजरात जैन धर्म के प्रमुख केन्द्र है। सं० १७८९ में जब मराठों ने अहमदाबाद को लूटने के लिए नगर पर आक्रमण किया तो उस समय सेठ शांतिदास के सुयोग्य वंशधरों ने मराठा फौज को संतुष्ट करके नगर की रक्षा की। इसलिए नगर के सभी व्यापारिक संगठनों ने मिल कर इस परिवार को नगर सेठ स्वीकार किया और नगर में बिकने वाले सब माल पर चार आना प्रति सैकड़ा नगर सेठ को प्राप्त करने का अधिकार दिया। यह रकम इस परिवार को बाद में भी शाही खजाने से मिलती रही। सन् १८२२ में दामा जी ने पाटण को मुसलमानों से छीन लिया था और वहाँ के शासक गायकवाड़ हो गये थे। इन शासकों ने शांतिदास के वंशधरों को पालकी छत्र और मसाल धारण करने का सम्मान दिया था। सच पूछिये तो एक ऐसा समय आया जब गुजरात में गायकवाड़, पेशवा और अंग्रेज कम्पनी का तिहरा राज था किन्तु नगर सेठ के परिवार का संबंध सबके साथ सामंजस्यपूर्ण होने के कारण जैनियों को अपनी धर्मचर्चा और व्यापारिक गतिविधियों में कोई विशेष असुविधा नहीं हुई; कम से कम वैसी असुविधा और पीड़ा कभी नहीं हुई जैसी बंगाल में दुहरे शासन प्रबंध के दौरान वहाँ की जनता को हुई थी। सं० १८७४ में अहमदाबाद पूर्णतया अंग्रेजी कंपनी के अधिकार में आ गया था, उस समय भी इन लोगों के प्रयत्न से हेमाभाई इन्स्टीट्यूट, पुस्तकालय और बालिका विद्यालय आदि सार्वजनिक संस्थाओं भी स्थापना की गई। १९०४ सं० में गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी की स्थापना हुई। गुजरात कालेज, अनेक मंदिर और प्रतिष्ठान आदि की स्थापना में इन लोगों ने योगदान किया।

१९वीं शती (वि०) में गुजरात में कई अकाल पड़े जिनमें १८०३, १८४०, १८६९ के दुकालों और प्राकृतिक आपदाओं के समय इन लोगों ने जनहितार्थ बहुत द्रव्यदान देकर जनता को राहत पहुँचाया। सारांश यह कि १९वीं शती में भी श्रेष्ठिवर्ग, श्रावकों और साधुओं का देशी रजवाड़ों, नवाबों के साथ सौहाद्रपूर्ण संबंध था और ये लोग जनहिताय कार्यों में तन-मन धन से सहायता करते थे। १८९१ में जेसलमेर के गुमानचंद और उनके पाँच पुत्रों ने शत्रुंजय तीर्थ की संघयात्रा निकाली, पुस्तक भंडार स्थापित कराया। मुम्बई के प्रसिद्ध सेठ मोती शाह ने आदीश्वर की प्रतिमा स्थापित कराई और धर्मशाला आदि बनवाई। अहमदाबाद के सेठ हरीसिंह, केसरीसिंह ने जिनालय और भव्य प्रसाद आदि बनवाये। यह प्रासाद् और विशाल मंदिर अहमदाबाद के दर्शनीय स्थानों

में अपनी कारीगरी और भव्यता के लिए उल्लेखनीय है।

संदर्भ–

१. विपिनचन्द्र- आधुनिक भारत पृ०-४४.
२. भगवती चरण वर्मा- 'मुगलों ने सल्वनतन बटन्श दी'
३. "About AD. 1452. The Lonka seet arose and was followed by sthanakvase seet. Dates of which strugly coincide with the Lutheren Puritans."
'Heart of Jainisem'
मुनि- सुशीलकुमार- जैन धर्म का तिहास पृ० ३०६ से उद्धृत

द्वितीय-अध्याय

१९वीं शती (वि०) के जैन हिन्दी साहित्य का विवरण

अगरचंद

खरतरगच्छीय भट्टारक शाखा के साधु हर्षचंद आपके गुरु थे। इन्होंने 'सीमंधर चौढालिया' सं० १८९४ में रामपुर में बनाया।[१] श्री अगरचंद नाहटा ने इनका नाम १९वीं शताब्दी के प्रमुख कवियों में गिनाया है।[२]

अनोपचंद

यह खरतरगच्छीय क्षमा प्रमोद के शिष्य थे। आपने 'गोड़ी पार्श्व वृहत् स्तव' की रचना चैत्र शुक्ल पंचमी सं० १८२५ में की।[३]

अनोपचंद शिष्य

अनोपचंद के किसी अज्ञात शिष्य ने 'मानतुंग मानवती संबंध चौपाई' की रचना मा० शुक्ल १३ सं० १८७२ में की।[४] इसकी हस्तप्रति सं० १८८० की लिखी हुई विक्रमपुर ज्ञान भंडार में सुरक्षित है।

अमरचंद लोहाड़ा

आपने 'बीस विहरमान पूजा (सं० १८९१) की रचना की।[५]

अमरविजय १

ये खरतरगच्छीय उदयतिलक के शिष्य थे। इन्होंने हिन्दी में 'अक्षर बत्तीसी' की रचना की।[६] इनकी पचीसो रचनायें राजस्थानी मिश्रित हिन्दी में प्राप्त हैं। 'सीमंधर स्वामी स्तवन' सं० १८१४ में लिखी गई।[७] चूँकि ये १८वीं शती के उत्तरार्द्ध से लेकर १९वीं शती के पूर्वार्द्ध तक रचनाशील थे, इसलिए १८वीं शती के रचनाकारों के साथ इस ग्रंथ के भाग३ में इनकी चर्चा की जा चुकी है, अत: यहाँ इनका विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया जा रहा है। इनके संबंध में अधिक जानकारी के लिए हिन्दी जैन साहित्य का वृहत् इतिहास खण्ड३ पृष्ठ ३५-३६ देखा जाय।

अमरविजय २

आप तपागच्छीय सदाविजय के प्रशिष्य और सुरेन्द्र विजय के शिष्य थे। इन्होंने उदयसूरि का सादर स्मरण किया है जिनका देहावसान सं० १८३७ में हुआ था। इसलिए

उनके समसामयिक होने के कारण यह भी १९वीं शती के रचनाकार थे। इनकी शांति जिन स्तुति (१३५ कड़ी सन् १८१९ रांदेर) प्राप्त है जिसका विवरण आगे दिया जा रहा है—

आदि— 'परम धरम धन पूरवा, सद्गुरु सुरतरु सार,
आवे मति ऊकति अधिक, अचल अवनि उपगार।'

अंत— यह कल्याणक प्रभुतणा, गुरु कृपाइं गाया उलास रे,
संवत अठार उगणिस मां, रही रांदेर चोमास रे।
शाश्वत तपगच्छ गगन शशि यश घणो सबल सूरि सिरताज रे,
अधिक सुख उदयसूरि सदा संथुण्यो शांति गणिराज रे।
विवुध विलक्षण वाणिइं, सदाविजय सुखकार रे,
सद्गुरु सुरेन्द्र सदा करें अमर मुनि उपगार रे।

इसका अंतिम कलश इस प्रकार है—

कलश— विश्वसेन नंदन त्रिजगवंदन, भावकि भंजन अपहरो,
सोलमां स्वामि मुगतिगामी, कह्या कल्याणक वंछित करो।
बहुभाँति युते चित्तें भविक आराधो अति भलइ,
सुगुरु सुरेन्द्रविजय संपद नित्य अमरमुनि सुख निरमला।[८]

यह भी हो सकता है कि अमरविजय (१) और (२) दोनों एक ही कवि हो केवल गच्छभेद के कारण दोनों को भिन्न मान लिया गया हो। इस विषय में शोध की आवश्यकता है।

अमरसिंधुर

ये खरतरगच्छीय क्षेमशाखा के साधु जयसार के शिष्य थे। इनका जन्मनाम अमरा या अमरचंद था। सं० १८४० में इनकी दीक्षा समारोहपूर्वक जैसलमेर में सम्पन्न हुई थी। सं० १८७७ से १८९१ के बीच ये अधिकतर बंबई रहे, वहाँ इनकी प्रेरणा से चिंतामणि पार्श्वनाथ मंदिर और उपाश्रय का निर्माण हुआ। इन्होंने 'नवांणु प्रकारी पूजा' १८८८, प्रदेसी चौ० १८९२, कुशलसूरि स्थान नाम गर्भित स्तव० १८९२, सोलह स्वप्न चौढ़ालिया के अलावा करीब दो सौ पद, स्तवन और गीत आदि लिखे हैं। इन रचनाओं का संपादन श्री अगरचंद नाहटा ने करके बंबई चिंतामणि पार्श्वनाथादि पद स्तवन संग्रह में प्रकाशित किया है।[९] नवाणु प्रकारी पूजा सं० १८९२ कार्तिक कृष्ण ६ बंबई का उल्लेख मो० द० देसाई ने किया है।[१०] उन्होंने भी नाहटा कीही भांति रचनाओं का

उदाहरण नहीं दिया। अमरसिंधुर का १९वीं शती के कवियों में नामोल्लेख 'राजस्थान के जैन साहित्य' में भी हुआ पर वहाँ किसी रचना का नाम या उसका विवरण नहीं दिया गया है।[११]

अमृत मुनि

आपकी दो रचनाओं 'नेमिगीत' चौ० सं० १८४९ और नेमिनाथ चोविसी सं० १८३९ का उल्लेख उत्तमचंद कोठारी ने अपनी सूची में किया है किन्तु उन्होंने और कोई विवरण नहीं दिया है।[१२]

अमृतविजय

आप तपागच्छीय विजयदेव सूरि, रत्नविजय, विवेकविजय के शिष्य थे। इनकी रचनाओं का विवरण नीचे दिया जा रहा है—

नेमिनाथ राजिमती संवाद ना चोक २४ चोक (सं० १८३९ कार्तिक कृष्ण ५ रविवार) इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

"आराधो जिनदेव कुं जपो ते श्री नवकार,
सिद्ध निरंजन मन धरी, पावो सुख भंडार।
सुणो भविक मन भाव धरी, भोग जोग की बात,
राजुल पूछे नेम कूं, दो में कोन विख्यात।

इसी प्रश्न का उत्तर नेमि द्वारा कवि ने इसमें प्रस्तुत किया है।

रचनाकाल— कीय उगणचालीस अठारें, काती बद पांचम रविवारे
अे चोबीस चोक चतुर धारे।
गुरु रत्नविजय पंडित राया, बुध सीस विवेकविजय भाया,
तस सीस अमृत गुण गाया।"[१३]

इस रचना के आधार पर अनुमान होता है कि कोठारी की सूची में दर्शित अमृत मुनि और अमृत विजय संभवत: एक ही व्यक्ति है। आगे राजुल नेमिजी से सीधा सवाल करती है—

"छारत हो यह संपदा, एकछत्र जदुराय,
मनवंछित सुखे छाड़ के जोग ग्रह्यो किस काज।?"

नेमिनाथ जोग का महत्त्व समझा कर राजुल को सान्तवना देते हैं, वह भी उनके

मार्ग की अनुगामिनी हो जाती है।

इनकी दूसरी उपलब्ध रचना 'विमलाचल अथवा सिद्धाचल अथवा शत्रुंजय तीर्थमाला अथवा रास सं० १८४०/४५ में विजयजिनेन्द्र सूरि के सूरित्वकाल में रची गई। यह रचना एक लोकप्रिय गरबा के धुन पर रचित है। इसका प्रारम्भ इन पंक्तियो से हुआ है—

"विमलाचल बाल्हा वारू रें, भले भवियण भेटो भाव मां,
तुम सेवो अे तीरथ तारु रे, जिम त पडो भव ना दाव मां।
जग सधला तीरथ नो नायक, तुमे सेवो सुखदायक रे।'[१४]

गुरु परम्परा और रचनाकाल का विवरण निम्नलिखित पंक्तियों में दिया गया है—

"तपगच्छ गयण दिणंद रुप छाजे रे, श्री विजयदेव सूरिंद अधिक दिवाजे रे।
रत्नविजय तस शिष्य पंडित राया रे, गुरुराज विवेक जगीस तास पसाया रे।
कीधो अेह अभ्यास, अठार चालीसे रे (पाठांतर) सर युग धृति वरसे रे।
उज्वल फागुन मास तेरस दिवसे रे, श्री विमलाचल चित्त धरी गुण गाया रे,
कहे अमृत भवियण नित्य नमो गिरिराया रे।"[१५]

इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त है जिनसे इसकी लोकप्रियता का अनुमान होता है, यह रचना शत्रुंजय तीर्थमाला रास अने उद्धारादिक नो संग्रह में भीमसिंह माणेक द्वारा प्रकाशित है।

रचनाकाल में आये शब्दों का मान धृति=१८, युग=४ और सर=५ माना जाय तो सही रचनाकाल १८४५ ही ठहरता है। श्री विजयजिनेन्द्र सूरि का काल १८४१ से प्रारम्भ होता है इसलिए १८४० इसका रचना काल न होकर सं० १८४५ ही उचित लगता है।

अमृतसागर

आप तपागच्छ के संत धर्मसागर, शांतिसागर, श्रुतसागर, बुद्धिसागर, हंससागर, वसंतसागर, माणिकसागर, दानसागर के शिष्य थे। आपने 'पुण्यसार रास (३१ ढाल, ७७६ कड़ी, सं० १८१७ पुण्यमास शुक्ल ५, रविवार को पालणपुर में बनाया। रचना के अंत में हीरविजय से लेकर धर्मसागर और धनसागर तक के गुरुजनों की वंदना की गई है—

श्री धनसागर गुरु सुखदायी, दिन-दिन सुजस सवाया जी,

तेहनो बालक अमीयसागर, उत्तम नां गुण गाया जी।
विबुध न हस जो बाल कीड़ाई, अे अेकतीशें ढाल जी,
पुण्यसागर नो रास अे गायो चरित्र वचन पर नाले जी।

रचनाकाल— पुण्यसार नो रास अे रचीयो चंद मुनी चंद वसु वर्षे जी,
पुण्य मांस नी पंचमी दिवसे, तरणीज वारे मन हरषें जी।

अंतिम पंक्तियाँ— अधिकुं ओछुं जो कोइ भाख्युं मीच्छा दुक्कड़ तेह जी,
ध्रु जीम अचल होज्यो जग माहे, पुण्यसार गुण अेह जी।''[१६]

अमीविजय

तपागच्छ के रूपविजय आपके गुरु थे। आपने नेम रासो (सं० १८८९, राजनगर) और 'महावीर नुं पारणुं' नामक रचनायें की। ये दोनों कृतियाँ प्रकाशित हैं। चैत्यआदि संज्झय भाग १ तथा २ और ३ के अतिरिक्त वृहत् काव्य दोहा भाग२ और अन्यत्र से भी ये प्रकाशित हो चुकी है।

इनकी रचना नेमराजुल बारमासा (सं० १८८९ राजनगर) प्राचीन मध्यकालीन बारमासा संग्रह भाग १ में प्रकाशित है। इसकी अंतिम पंक्तियाँ नमूने के तौर पर प्रस्तुत हैं—

"इण विध प्रीतडी पालस्ये, सरस्यें तेहना काज,
मांगलिक माला ने वरे, अमीयविजय कहे आज।

रचनाकाल— संवत् अणरनव्यासी अे, रही राजनगर चोमास,
बारमास राजुल नेम ना, गाया हरख उल्लास।
पारेख डुंगर ना कहण की, रच्या मास श्रीकार,
साभंलता सुख उपजे, पामे भव नो पार।[१७]

अमोलक ऋषि

आपकी गुरु परम्परा का पता नहीं चला। आपने 'भीमसेन चौपाई की रचना सं० १८५६ में दक्षिण देश के आवलबुटी गाँव में की। इसका उदाहरण भी नहीं मिला।[१८]

अविचल

आपकी एक रचना 'दुंढक रास' का विवरण प्राप्त हुआ है। यह रचना १८६९ से पूर्व रची गई। इसका प्रारम्भ निम्नवत् है—

सरसति मात मया करी आपो अविचल वांणि,
ढुंढ पवाडो गावतां लहीअे कोडी कल्याण।

अंत— अहेवो प्रभाव ज देखी नीकली ढुंढीयारी सेखी,
कहे अविचल मन रंग तुमे म करजो ढुंढ प्रसंग।

अंत— अहेवो प्रभाव भाव ज देखी नीकली ढुंढ़ीयारी सेखी,
कहे अविचल मन रंग तुमे म करजो ढुढं प्रसंग।

कलश— मम करो ढुढं प्रसंग मानव देव नंद्या मत करो,
इह भव परभव उभय भव जो सकल सुखवांछा करो।
अे ढुढं जास्ये सुजस थास्ये गच्छ इज्जत खास जी,
श्री पार्श्वनाथ प्रसाद अविचल रच्यो रास उल्लास जी।"[१९]

आणंद-

रचना' नेमि जी का चरित्र' सं. १८०४ फाल्गुन शुक्ल ५, रचनांकाल संबंधी पक्तियाँ

"संवत् १८ चिडोत्तर- फागुण मास मझारी,
सुद पंचती सनीचर रे कीधो चरित उदारों।

रचना मेमनाथ के चरित्र पर आधारित है, संबंधित दो पंक्तियाँ देखे:-

नमे तसतात सघर मध्ये रे रहया ज रूड भावो,
चरित्र पालये सात सारे सहस वरस ना आवो।"[२०]

आणंदवल्लम-

खरतरगच्छीय रामचन्द्र के आप शिष्य थे। इन्होंने दण्डक संग्रहणी बाला० सं.१८८०, अजीमगंज में और' विशेष शतक भाषा गद्य सं० १८८२, ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी, बालूचर में रचा। मूल ग्रंथ समयसुंदर की रचना है। आपने सं० १८७३ से १८८२ के बीच कई गद्य रचनायें की जिनमें चौमासा व्याख्यान, अठाई व्याख्यान, ज्ञानपंचमी मौन ग्यारस होली व्याख्यान, श्राद्धदिन कृत्य बालावबोध आदि उल्लेखनीय हैं। इससे प्रकट होता है कि आप अच्छे गद्य लेखक थे। आपके गद्य रचना शैली का प्रमाण देने के लिए कोई उपयोगी उदाहरण नहीं उपलब्ध हो सका परन्तु रचनाओं की प्रभूत संख्या से उनके अच्छे गद्यकार होने का प्रमाण मिल जाता है।[२१]

आणंदविजय

तपागच्छीय रत्नविजय, रामविजय, उत्तमविजय के शिष्य थे। आपने 'उदायन राजर्षि चौपाई' की रचना (३ खण्ड सं० १८५५ फाल्गुन कृष्ण ११) विजयजिनेन्द्र सूरि के सूरिकाल में किया। इसके आदि की पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

आदि— "श्री जिन पारस शासने, श्री महावीर जिनंद,
नमतां दोऊ जिननवा, वचन रसायण वृंद।

गुरुवंदना—

गुरु बिन घोर अंधार है, गुरु विण है मति हीण,
तिण कारण गुरु वंदना, शुभ अक्षर दीयांवीन।
त्रिहु संबोधन अेकहु रचना ग्रंथहु ज्ञान,
ज्ञान उदायन चरित्र को शुभ विधि करूं बषांण।

प्रथम खंड के अंत में ऊपर दी गई गुरु परंपरा का उल्लेख किया गया है। यह रचना मुहता सुरतराम के आग्रह पर की गई। दूसरे खण्ड के अंत में लिखा है—

"वारे श्री वर्द्धमान जिनंदने, पट्ट जिनेन्द्रह सूरी रे,
राम उत्तम आणंद गुण गाया, दिन दिन तेज सवाया रे।
को कवि वांचन खोड म काढ़ो, गुण सिवना सिर चाढ़ो रे,
रिध सिध अंग सिध धरोधर, वधते सुजस सवाई रे,
आनंद जयप्रद लामे सारा, अे रस ग्रंथ विस्तारा रे,
हितधर गायो रास रसाला, फलसी मंगल माला रे।"[२२]

जैन गुर्जर कवियों के प्रथम संस्करण में रचना का नाम उदायी राजर्सि चौ० लिखा था परन्तु मूल पाठ में 'उदायन' नाम दिया होने से नवीन संस्करण में संपादक कोठारी ने रचना नाम 'उदायन' ऋषि चौ० कर दिया है।

आलमचंद

यह कविवर समयसुंदर एवं विनयचंद की परंपरा में आसकरण के शिष्य थे। अनेक वर्षों तक आप मुर्शिदाबाद में रहे। इसलिए अधिकतर रचनायें वहीं हुईं। मौन एकादशी चौ० सं० १८१४ मुर्शिदाबाद, जीव विचार स्तवन (गाथा ११५) सं. १८१५ मुर्शिदाबाद, त्रैलोक्य[२३] प्रतिमा स्वतन् सं० १८१७ और सम्यक्त्व कौमुदी चौ० सं० १८२२ मुर्शिदाबाद। श्री मो० द० देसाई गुरु परंपरान्तर्गत समयसुंदर की परंपरा में

इन्हें काशीदास, ठाकुर सिंह, कुशलचंद, आसकरण का शिष्य बताया है। उन्होंने तीन रचनाओं का विवरण भी दिया है जिसको संक्षिप्त करके यहाँ दिया जा रहा है। मौन अेकादशी चौ० (१३ ढाल सं० १८१४ माह शुक्ल ५, रवि, मुर्शिदाबाद) का आदि—

"च्यांर तीर्थंकर सासता, विहरमान जिन बीस,
चौबीसें जिन पय नमूं जगजीवन जगदीस।

गुरुवंदना—

अे सहूने प्रणमी करी, सद्गुरु पय प्रणमेव,
श्री मौनेकादशी तणी, कहूं कथा संखेव।"

यह रचना जैसलमेर वासी श्रावक सुगालचंद पुत्र लालचंद के आग्रह पर आलमचंद ने लिखी थी। रचनाकाल एवं स्थान से संबंधित पंक्तियाँ आगे उद्धृत कर रहा हूँ—

"संवत अढार चवदोत्तर वरसे, माह मास सुदि हरखे बे,
वसंत पंचमि आदित्यवारा, पूरण थया अधिकारों बे।
मकसूदाबाद नयर ने मांहे, चौपइ कीधी उछाहे बे।

गुरु परम्परा—

जुग परधान श्री जिनचंद्रा, तसुशिष्य सकलचंदा बे,
पाठक समयसुंदर शाखायें, काशीदास जी कहाया बे,
तसु सीस ठाकुरसी जु कहावे, वाचक पदवी धरावैं बे,
तसु शिष्य वाचक कुशलचंदा, देखा होत अणंदा बे,
आसकरण तसु अंतेवासी, जग में सुजस प्रकाशी बे।"

अंतिम पंक्तियाँ— "राग धन्यासिरी तेरमी ढाल, इण परि भाखी रसालू बे।
आलमचंद कहै सुख पावो, मधुर स्वरै गुण गावो बे।"

दूसरी रचना गद्य में है। रचना का शीर्षक है 'जीव विचार भाषा'[२४] (गाथा ११४२) सं० १८१५ वैशाख शुक्ल ५, कविवार, मुर्शिदाबाद,

यह रचना भी शाह सुगालचंद के आग्रह पर की गई। रचनाकाल संबंधी पंक्तियाँ—

"बाण शशी वसु वृद्ध? वरवाणु, अेन बच्छर संख्या जाण,

वैशाख सुदि पंचमी कवीवार, भाषाबंध रच्यो जीवविचार।"[२५]

'समकित कौमुदी चतुष्पदी' सं० १८२२ मागसर शुक्ल ४, मुर्शिदाबाद, इसमें भी ऊपर दी गई गुरुपरम्परा का उल्लेख है। यह चतुष्पदी भी शाह सुगालचंद के आग्रह पर आलमचंद ने की है।

रचनाकाल— संवत अठारे से बावीसै, मिगसिर मास जगीसे जी,
शुकल पख्य तीथ चउथ शुदि ने सिद्धि योग मन हीसे जी।
अे संबंध रच्यो सुखकारी में माहरी मतिलारे जी,
मकसुदाबाद सुसहर मझारे, भवीयण ने उपगारे जी।"[२६]

श्री अगरचंद नाहटा ने भी १९वीं शती के प्रमुख रचनाकारों में इनका नाम गिनाया है।[२७]

आसकरण

ये रायचंद के शिष्य एवं पट्टधर थे। इनका जन्म स्थान जोधपुर का तिवरी ग्राम था। जन्म सं० १८१२ मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष द्वितीया को हुआ। पिता का नाम रुपचंद और माता का नाम भोगा दे था। सं० १८३० वैशाख कृष्ण पंचमी को इन्होंने आचार्य जयमल से दीक्षा ग्रहण की। ७० वर्ष की आयु में सं० १८९२ कार्तिक कृष्ण पंचमी को इनका स्वर्गवास हुआ। ये प्रसिद्ध कवि और संयमी साधु थे। आचार्य रायचंद के पश्चात् सं० १८६८ में ये आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुये थे। इन्होंने पर्याप्त रचनायें की। इनकी रचना 'छोटी साधु वंदना' का जनता में व्यापक प्रसार हुआ था। दस श्रावकों की ढाल, पुण्य वाणी ऊपर ढाल, केशी गौतम चर्चा ढाल, साधुगुण माला, भरत जी री सिद्धि, नेमिराय जी सप्तढालिया, श्री धन्नाजी की सात ढालां, जयघोष की सात ढाल, श्री तेरा काठिया की ढाल, राजमती संज्झाय, पार्श्वनाथ स्तुति, श्री पार्श्वनाथ चरित्र, गजसिंह का चौढालिया, श्री अठारह नाता की चौढालिया और पूजा श्री रायचंद जी महराज के गुणों की ढाल' आदि आपकी अनेक रचनायें उपलब्ध हैं।[२८]

श्री मो० द० देसाई ने इन्हें लोकागच्छीय जेमल जी की परम्परा में रायचंद ऋषि का शिष्य बताया है। इनकी एक रचना 'नेमि राजा ढाल' (सं० १८३९ पो० शु० १३, जैन विविध ढाल संग्रह में जेठमल शेठिया द्वारा प्रकाशित हुई है। चूदंडी ढाल नामक रचना की भी वही तिथि रचनाकाल में बताई गई है, दोनों दो रचनायें नहीं है। देसाई ने जैन गुर्जर कवियों के प्रथम संस्करण में इन्हें रामचन्द्र का शिष्य लिखा था।[२९] किन्तु नवीन संस्करण के संपादक श्री जयंत कोठारी ने इन्हें रायचंद का ही शिष्य बताया

है। अगरचंद नाहटा भी इन्हें रायचंद का शिष्य कहते हैं इसलिए गुरु परंपरा में कोई शंका नहीं है। इनकी तमाम रचनाओं का नामोल्लेख तो नाहटा जी ने किया है। किन्तु कोई उदाहरण किसी रचना से नहीं दिया है। उन्होंने धन्ना सतढालिया का रचनाकाल १८५९, नागौर और नेमिराज ढाल अने चूनडी रास (दोनों एक ही रचना है) का रचनाकाल सं० १८४९ बताया है।[३०]

इन्द्रजीत

इनकी एक रचना 'मुनि सुब्रतपुराण' (सं० १८४५ मैनपुरी) का परिचय मिला है यथा—

केवल श्री जिनभक्ति को, हुव उछाह मन मांहि,
ताकरि यह भाषा करौं, ज्यो जल शशि शिशु छाहिं।
श्री जिनेन्द्र भूषण विदित, भट्टारक मह मांहि,
जिनके हित उपदेश सो, रच्यों ग्रंथ उत्साहि।''
इससे ये जिनेन्द्र भूषण के शिष्य लगते हैं।

रचनाकाल— ''रंध्रि द्विगुण शत च्यार शर, संवत्सर गत जान,
पौष कृष्ण तिथि द्वैज सह, चंद्रवार परिमान।

तादिन पूरो ग्रंथ हुत, मैनपुरी के मांहि,
पटे: सुने उरमें धरें, सो सुर रमा लहाहिं।''[३१]

श्री कस्तूरचंद कासलीवाल ने इसे हिन्दी भाषा की पद्य रचना बताते हुए लेखन काल सं० १८८५ बताया है।[३२] पता नहीं यह लिपि का लेखनकाल है या भ्रमवश रचनाकाल ही १८८५ मान लिया है क्योंकि रचनाकाल सूचित करने वाले प्रतीक शब्द भ्रामक है। उनका अर्थ १८४५ और ८५ दोनों हो सकता है। 'द्विगुण शत' शब्द का स्पष्ट अर्थ नहीं बैठता। इसकी प्रति श्री नया मंदिर धर्मपुर (दिल्ली) के शास्त्र भंडार में सुरक्षित है, जिज्ञासुओं को मूल प्रति से शंका समाधान करना उचित होगा।

उत्तमचंद भंडारी–

ये जोधपुर के राजा मानसिंह के मंत्री थे। आप साहित्य और अलंकार शास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे। अलंकार शास्त्र पर आपका एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'अलंकार आशय' प्राप्त है जिसकी रचना सं० १८५७ में हुई थी। आपकी अन्य रचनाओं में 'नाथ चंद्रिका' १८६१ और 'तारकतत्त्व' का नाम विशेष रुप से उल्लेखनीय है।[३३]

उत्तम मुनि--

आपकी एक रचना 'नेमि स्नेह बेलि' का उल्लेख उत्तमचंद कोठारी ने अपनी सूची में किया है। यह रचना सं० १८८९ में रचित है। इससे अधिक विवरण उन्होंने नहीं दिया।[३४]

उत्तमविजय

इसी शताब्दी में इस नाम के तीन लेखकों का विवरण मिलता है उनका विवरण क्रमशः आगे दिया जा रहा है।

उत्तमविजय १

आप तपागच्छीय सत्यविजय, कपूरविजय, क्षमाविजय, जिनविजय के शिष्य थे। अहमदाबाद के श्यामलापोल मुहल्ले के निवासी श्री लालचंद की भार्या माणेक बेन की कुक्षि से सं० १७६० में आपका जन्म हुआ था। जन्म नाम पुंजा शा था। १७७८ में जब खरतरगच्छीय प्रसिद्ध संत देवचंद जी अहमदाबाद पधारें तो उनके सान्निध्य में तत्त्व ग्रंथों का अभ्यास किया। शाह कचराकीका के साथ समेत शिखर की संघयात्रा में गये और वहाँ से अन्य तीर्थों की यात्रा करते सूरत होते हुए पुनः अहमदाबाद आये और ज्ञानविमल सूरि संतानीय जिनविजय जी का सत्संग करते रहे। अंततः सं० १७९६ वैशाख शुक्ल ६ को इन्होंने विधिवत दीक्षा ली और नाम उत्तमविजय पड़ा। इन्होंने गुरु के सान्निध्य में अनेक धर्म ग्रंथों जैसे भगवती सूत्र आदि का विधिवत् अध्ययन किया। १७९९ में जिनविजय जी के देहावसानोपरांत ये देवचंद जी से विद्याभ्यास करते रहे।

इन्होंने अनेक तीर्थ यात्रायें, संघ यात्रायें की, लोगों को धर्मोपदेश दिया और ६७ वर्ष की वय में सं० १८२७ महा शुक्ल ८ को शरीर त्याग किया। आपने अपने गुरु के निर्वाण पर 'जिनविजय निर्वाण रास' १६ ढालों में सं० १७९९ श्रावण शुक्ल १ के थोड़े समय पश्चात् रचा जिसका आदि इस प्रकार है--

"कमलमुखी श्रुतदेवता, पूरो मुज मूखवास,
गुणदायक गुरु गावता, होय सफल प्रयास।

अंत-- "षटकाय पालक सुमति दायक, पापनिवारक जग-जय करो
संवेगरंगी सज्जनसंगी जिन विजय गुरु जयगुण करो,
मानविजय गुरु कहण थी रच्यों गुरु निर्वाण अे,
सकल शिष्य उत्साह उत्तमविजय कोडि कल्याण अे।"[३५]
यह रास जैन ऐतिहासिक रास माला में प्रकाशित है।

इन्होंने गद्य में टव्वा के साथ 'संयम श्रेणी समिति महावीर स्तव स्वोपज्ञ टव्वा सहित' की रचना ४ ढालों में सं० १७९९ वैशाख शुक्ल ३ सूरत में की।

आदि— "श्री वर्द्धमान जिनं नत्वा वर्द्धमान गुणास्यदं,
स्वोपज्ञ संयम श्रेणी स्तवस्यार्थो वितन्यते।
केवल ज्ञान दिवाकर जी सिद्ध बुद्ध सुखदाय,
आतम संपद भोगने जी, वर्द्धमान जिनराय।
वाचक जसविजये जी रच्यो जी संखेपे संज्झाय,
विस्तरी जिनगुण गावतांजी, जीहा पावन थाय।

रचनाकाल— संवत नंद विधि मुनि चंदे, देव दयाकर पायो,
प्रथम जिनेसर पारण दिवसे, स्तवना कलश चढ़ायो रे,

गुरुपरम्परा—

विजयदेव सूरीस पटोधर, विजयसिंध सवायो,
सत्य शिष्याधर कपूर विजय बुध, क्षमाविजय पुण्य पायो रे।

रचनास्थान—

सूरत मांहे सूरजमंडल, श्री जिनविजय पसायो,
विजयदया सूरि राजे जगपति, उत्तमविजय मल्हायो रे।

यह रचना भी प्रकाशित है। इसे सेठ बाला भाई मूलचंद, अहमदाबाद ने श्री सत्यविजय ग्रंथमाला नं० १ में प्रकाशित किया है।

अष्टप्रकारी पूजा सं० १८१३ का

आदि— "श्रुतधर जस समरे सदा, श्रुत देवी सुखकार,
प्रणमी पद पंकज तेहना पभणूं पूजा प्रकार।

रचनाकाल— 'तत्त्व शशि अठचंद संवत्सर क्षमाविजय जिन गावो,
उत्तम पदकज पूजा करता, उत्तम पदवी पावो रे।[२६]

यह रचना विविध पूजा संग्रह पृ० ४५०-६० और पूजा संग्रह आदि कई ग्रंथों में प्रकाशित है।

चौबीसी—

यह जैन गुर्जर साहित्य रत्नों भाग २ में प्रकाशित है।

श्राद्धविधि वृत्ति बाला० —

सं० १८२४ के मूल लेखक रत्नशेखर सूरि हैं इस प्रकार हम देखते है कि उत्तम विजय १८वीं शती के अंतिम दशक और १९वीं के प्रथम दो दशकों में रचनाशील रहे। इन्होंनें गद्य और पद्य दोनों विधाओं में कई रचनायें की।[३७]

उत्तमविजय २ –

यह तपागच्छ के यशस्वी संत यशोविजय, गुणविजय, सुमतिविजय के शिष्य थे। 'पिस्तालीस आगम नी पूजा' (कार्तिक शुक्ल पंचमी सं० १८३४, बुधवार, सूरत) आपकी उपलब्ध कृति है। यह विजयधर्म सूरि के सूरित्वकाल में रची गई थी। इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

"सुखकर साहिब सेविई, गोड़ी मंडल पास,
श्री शंखेश्वर जगधणी, प्रणमु अधिक उलास।
आगम-अगम अछे घणुं, नय गम भंग प्रमाण,
स्वादनादातम सोधतां, कहीई तत्त्व निर्वाण।
हूं नवि जाणुं श्रुत भणी, मंतमति अनाण,
तोपण माहरी मुखरता, करजो कवि प्रमाण।

रचनाकाल— संवत् आठार चौत्रीसन माने, कार्तिकी सुदी पंचमी ज्ञाने जी,
बुधवारे अे आगम स्तवना, पूरण करी शुभ वचने जी।

गुरुपरम्परान्तर्गत विजयधर्म सूरि के साथ जसविजय आदि की वंदना की गई है। इसकी अंतिम दो पंक्तियाँ देकर यह विवरण समाप्त कर रहा हूँ,

"आगम नांण जो भणसों गास्यें, तस घर मंगलमालो जी,
जग मांहि जस लच्छि वरसों, जय जयकार विशालो जी।"[३८]

उत्तमविजय ३ –

आप तपागच्छ के संत विमलविजय, शुभविजय, हितविजय, माणिक्यविजय, धनविजय, गौतमविजय, खुशालविजय के शिष्य थे। उन्होंने कई रचनाएं की, उनमें से कुछ प्राप्त रचनाओं का संक्षिप्त विवरण आगे दिया जा रहा है।

नाम रचना—

रहनेमि राजिमती चोक (चार चोक, चारकड़ी सं० १८७५ कार्तिक शुक्ल १२,

रविवार) का प्रारम्भ—

"अेक दिवस वसे रहनेमि रहियो छे काउस ध्याने;"

रचनाकाल— संवत् पंच्योतर अठारें, कार्तिक शुद रुद्रा रविवारे,
चित चोक्क अे च्यार धारे।
गुरु गोतम नामे तस पाया, तस शिष्य खुशालविजय भाया,-
तस सीसे उत्तम गुण गाया।

यह रचना जैन संज्झायमाला भाग एक में बालाभाई द्वारा प्रकाशित की गई है।

✓धनपाल शीलवती नो रास (४ उल्लास ७० ढाल, सं० १८७८ मागसर ५, सोमवार, पेथापुर) का आदि—

"श्री विभु पद रज वर्णन होवें ढोक समान,
त्रिदशा सुरस्तवे जेहने मूंकी अलगूं मान।"

इसके बीच २ में प्रसादगुण संपन्न हिन्दी भाषा और सवैया छंद का मनोहर प्रयोग मिलता है। कवि एक ऐसे ही छंद में अपनी विनय शीलता के चलते अपनी अल्पज्ञता का वर्णन करता हुआ लिखता है—

"जैसे कोऊ महासमुद्र तरिबे कूं भुजानि सौ उदित भयो है तजिनाव रो,
जैसे गिरि ऊपर बिरछ फल तोरिबे कूं बावन पुरुष कोउ उमंगे उतावरो।
जैसे जलकुण्ड में निरखि शशी प्रतिबिंब ताके गहिबें कूं कर नीचो करे बावरो,
तैसे मै अलपबुद्धि रास को आरंभ कीनो गुणी मोंहि हंसेगे कहेंगे कोऊ डाबरो।"

रचनाकाल— "संवत् नग गुनी अहि विधु वरसे, मृगसिर मास सोहायो जी,
तिथी पंचमी शीतवार विरोचन, विजय मुहूर्त मन भायो जी।"

अंत— "होस्ये घर-घर मंगलमाला सुणतां रास उल्लास जी,
धण कण कंचण लीलालच्छी, उत्तमविजय विलास जी।"

"ढूंढकरास अथवा लुम्पकलोपक तपगच्छ ज्योत्पत्ति वर्णन रास" (७ ढाल, सं० १८७८ पोष शुक्ल १३, राधनपुर) का प्रारम्भ—

सरसती चरण नमि करी कहेस्युं, ढुढंक धर्म्म अधोरे रे,
धर्मवतां धरें ध्यान भरे छे, ढुंढा खावे ढोरे रे।

रचनाकाल— "अठार अठ्योत्तर बरसे शुदि पोषना तेरस दिवसें रे,

कुमति ने शिक्षा पिण दीधी रे, तब रास नी रचना कीधीरे।
राधनपुर ना सहवासी रे, तपगच्छ केरा चोमासी रे,
खुस्यालविजय नो सीस रे, कहे उत्तमविजय जगीस रे।''

सिद्धाचल सिद्धबेलि—

(१३ ढाल सं० १८८५ कार्तिक शुक्ल १५, पेथापुर)

आदि— ''पास तणा पदकज नमी, समरी सारद माय,
विमलाचल गुण वरणनुं साभंलता सुख थाय।''

रचनाकाल— ''गायो गिरि इक्षूवंशी ईश ढालो तरे करी ताजी रे,
अठार पच्चासिइं कारतिक मास, रुडी पुन्निमे दिलराजी रे।''

इसमें भी अन्य रचनाओं की तरह ऊपर दी गई गुरुपरम्परा का उल्लेख और गुरुजनों का सादरस्मरण किया गया है।

नेमिनाथ रस बेलि—

(सं० १८८९ फाल्गुन शुक्ल सप्तमी) यह शृंगार रस की रचना है। इसके अंत में कवि ने लिखा है—

''रस मांहे विरस न वरणीये, अे वरणन नो विवहार रे,
साकर मां खार न नाखिये समभै ते जांण संसार रे।
में रास रच्यो रसवेलि नो रसशास्त्र ने नपण निहाली रे,
कर्युं रसमय शास्त्र अे रुयडुं कबहुं, ते घरि नित्य दीवाली रे।
अठर नव्यासियै नेडु थी फागुण शुदि सातिमे साची रे,
कहे उत्तम विजय खुशाल नो रढीयाला रसमां राचीरे।
रुडी रसबेले रसिया रमौ।''

इस बेलि को उत्तमविजय के प्रशिष्य अमृतिविजय रत्नविजय ने १९४२ में छपवाया है।

नेमि राजिमती स्नेह बेलि (१५ ढाल सं० १८७६ आसो ५, भृगुवार) यह बारहमासा है। इसके ढालों में प्रयुक्त देशी तत्कालीन जैनेतर पदों से लिए गये हैं जैसे

''मारो बहालो छे दरियापार, मनहुं मान्यु छे।''

इस बारहमासे का आदि इस प्रकार हुआ है—

"श्री शंखेश्वर पास जी, हरी जरा हरनार,
तस प्रणमुं प्रेमे करी, शिवरमनी उरहार।

रचनाकाल— अही मही लोचन दधी (भोजन दधि अहि महि) जेहरे,
संवत् संवच्छर अेहरे।

अंत में उपरोक्त गुरुपरम्परा इसमें भी दी गई है।[39]

उदयऋषि–

आपकी रचना 'सूक्ष्म छत्रीसी' (६२ कड़ी, सं० १८४१ फाल्गुन, नौरंगाबाद' का प्रारम्भ इन पंक्तियो से हुआ है—

"सुखम् छत्रीसी सांगल प्राणी, अे आगम अधिकार जी,
जिनवर भाख्यो सार पदारथ, धारो रिदय विचार जी।

अंत— "सूक्ष्म छत्रीसी शिष्य ने काजे, कीधी मन हुलास जी,
बुध बोधवा भणतां गुणता, पामे लील विलास जी।
आगम रै अनुसारे कीधी, नौरंगाबाद मजार जी,
कहै उदैरिष सुणजो चतुरां, लेज्यो अर्थविचार जी।"[40]

उदयकमल–

आप रत्नकुशल के शिष्य थे। इन्होंने सं० १८२१, कमालपुर मे 'विजयशेठ विजया शेठानी चौ०' की रचना की।[41]

श्री देसाई ने इनकी गुरु परम्परा इस प्रकार बताई है—

खरतरगच्छीय जिनचंद सूरि संतानीय क्षमासमुद्र, भावकीर्ति, रत्नकुशल के शिष्य, इन्होंने उक्त रचना का विवरण उदाहरण दिया है। विजय शेठ विजय शेठानी चौ० (११ ढाल, सं० १८२१ ज्येष्ठ शुक्ल १२ सोमवार, कमालपुर) इसकी भाषा मारवाड़ी मिश्रित गुजराती (मरु गुर्जर) है। इसका आदि निम्नवत् है—

आदि— "श्री जिनराज नमी करी, ग्यांन विमल दातार;
विघन विदारण सुखकरण, पर दुख काटणहार।

इसमें शील का माहात्म्य दर्शाया गया है यथा:—

पांच वरत में शीलव्रत, उत्तम हौ हितकार,

विजयशेठ विजयावली, पाया शिवसुख सार।

इसमें ऊपर लिखी गुरु परम्परा का उल्लेख करते हुए गुरुवंदना की गई है।

रचनाकाल— संवत् अठार सै इकबीसे जेठ शुकल शुभ मासै रे;
द्वादसि तिथि देखत मन हीसै, सोमवार शुभ दीसै रे।

अंत— "दंपति इण विधि चरित्र पाली, दूषण सगला टाली रे,
चारे धातीयां कर्म प्रजाली, निज आतम अजुआली रे।
इग्यारसी ढाल भविकजन भणिज्यो निज पातकजन लुणज्यो रे;
गाँव कमालपुरे में थुणिज्यो, तज परमाद गुणिज्यो रे।[४२]

उदयचंद–

आपकी एक रचना 'ब्रह्मविनोद' का उल्लेख मिलता है। यह सं० १८८४ से पूर्व जोधपुर में रची गई। कोई उद्धरण नहीं प्राप्त हुआ। प्रति का लेखन सं० १८८४ कार्तिक शुक्ल १० जोधपुर में हुआ। इस प्रति के लेखक साधु नयविजय ने अपने शिष्य चेतविजय के पठनार्थ इसे लिखा था[४३]

उदयचंद भण्डारी–

आप जोधपुर के राजा मानसिंह के मंत्री उत्तमचंद भंडारी के भाई थे। अपने भाई के समान ये भी राज्याधिकारी थे और काव्य साहित्य, छंद, अलंकार और दर्शन आदि विषयों के अच्छे जानकार थे। इनका रचनाकाल १८६४ से सं० १९०० तक है। आपके कृतित्व पर डॉ० कृष्ण मुहणोत ने शोध प्रबंध लिखा है। आपके रचनाओं की सूची आगे दी जा रही है— छंद प्रबंध, छंद विभूषण, दूषण दर्पण, रसनिवास, शब्दार्थ चंद्रिका, ज्ञान प्रदीपिका, जलंधरनाथ भक्ति प्रबोध, शनिश्चर की कथा, अनुपूर्वी प्रस्तार बंध भाषा, ज्ञान सत्तावनी, ब्रह्मविनोद, ब्रह्मविलास, विज्ञविनोद, विज्ञविलास, वीतराग वंदना, करुणा बत्तीसी, साधुवंदना, वीनती, प्रश्नोत्तर वार्त्ता, विवेक पच्चीसी, विचार चन्द्रोदय, आत्मरत्नमाला, ज्ञान प्रभाकर, आत्मज्ञान पंचासिका, विचारसार, षट्मतसार सिद्धांत, आत्मप्रबोध भाषा, आत्मसार मनोपदेश भाषा, वृहच्चाणक्य भाषा, लघुचाणक्य भाषा, सभासार सिखनख, कोकपद्य, स्वरोदय, शृंगार कवित्त और सौभाग्य लक्ष्मी स्तोत्र। ये समस्त रचनायें महोपध्याय श्री विनयसागर के संग्रह में सुरक्षित हैं।[४४]

भण्डारी से पूर्व जिस 'उदयचंद' नामक रचनाकार की रचना 'ब्रह्मविनोद' का उल्लेख किया गया है, वे उदयचंद भण्डारी ही होंगे। ब्रह्मविनोद भण्डारी जी की रचना है। खेद है कि इनकी किसी रचना का विवरण-उद्धरण न तो देसाई ने और न नाहटा

जी ने दिया।

उदयरत्न–

खरतरगच्छ के विद्याहेम आपके गुरु थे। यति विद्याहेम खर० कीर्तिरत्न सूरि की शाखा के यति थे। इन्होंने सीमंधर स्तवन (१८५७ आषाढ़ शुक्ल १०), जिनपालित जिनरक्षित रास सं० १८६७ बीकानेर, जिनकुशल सूरि निशानी सं० १८७४ और ढंढक चौढालिया १८८३ में लिखा।[४५] इन रचनाओं का नामोल्लेख देसाई और नाहटा ने किया है किन्तु उदाहरण किसी भी रचना का नहीं प्राप्त हुआ।

उदयसागर–

आंचलगच्छीय कल्याणसागर के प्रशिष्य और विद्यासागर के शिष्य थे। इनकी रचना 'कल्याण सागर सूरि रास' (सं० १८०२ श्रावण शुक्ल ६, माडंवी) का आदि इस प्रकार है—

आदि— "प्रणमी श्री जिनपास ने, धरि मन मां गुरु ध्यान,
सरसती मात पसाय थी, करसूं गुरु गुणगान।

गुरुपरम्परान्तर्गत इस रचना में अंचल गच्छ के कल्याणसागर, अमरसागर और विद्यासागर की वंदना की गई है यथा—

"अतिशय जोना अतिघणा, ज्ञान तणो नहि पार,
कल्याणसागर सूरिवरा, छे जग मां निरधार।
अंचलगच्छ दीपावता, विचर्या देश-विदेश,
शुभ संजम ने धारता दीये भवी उपदेश।
गच्छाधिष्ठापिक सूरि महाकाली धरे नेह,
गुरु जी पर बहु भाव थी जाणी ने गुणगेह"

रचनाकाल— संवत् अठारसो बेनी साले, श्रावण सुद छठ पाया,
अेह रास संपूर्ण करीने, संघनी आगल गाया री।
मांडवी नगरे रही चोमासुं, रास अेह रचीया,
संभलावी भविक जन ने कंठे, मंगलमाला ठाया।

अंत— "यावत चंद्र दिवाकर जगमो, रास अेह रसदाया,
लघुजन मन ने मंगलदायी, थजे सदा इम ध्याया रे।"[४६]

इन्होंने गद्य में भी रचना की है। 'लघु क्षेत्र समास पर बाला० और स्नात्र

पंचाशिका सं० १८०४ आपकी प्राप्त गद्य रचनायें हैं। पूजा पंचाशिका भी संभवत: आप की ही रचना है, इन रचनाओं के गद्य नमूने नहीं उपलब्ध हो सके।

उदयसोम सूरि–

आप लघु तपागच्छीय सूरि आनंदसोम के पट्टधर थे। आपने 'पर्युसण व्याख्यान सस्तवक' सं० १८९३ और श्रीपाल रास सं० १८९८ आसो मास, परेंडा में रची। श्रीपाल रास चार खण्डों का विशाल ग्रंथ है इससे कुछ उद्धरण आगे दिए जा रहे हैं—

श्रीपालरास के चतुर्थ खण्ड की प्रारंभिक पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

"चोथो खंड रचूं हवे, श्री सिद्धचक्र पसाय,
भाषंण च्यारे मांहवे अज गाडर मसी गाय।

रचनाकाल एवं स्थान से संबंधित पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

परेंडा सहेर मां पूरण कीधो, भविक श्रवण मन ध्याया,
अठार अठाणुं आसो ऊडी मां अे अधिकार बचाया रे।"

परेंडा सूरत के पास कोई गाँव होगा। आसो ऊडी से संभवत: कवि का आशय आषाढ़ मास से है। इसकी अंतिम पंक्तियाँ निम्नवत् हैं—

"लघु पोषधशाले स तपागण सडसठ पाट सवाया,
श्री आनंदसोम सूरि पट्टधर री उदयसोम सूरिराया रे,
सुरत संजति श्रावक आग्रहे, सुगम अर्थ समजाया,
चोथे खंड रच्यो मनरंगे, सांभलता सुख पाया रे।"[४७]

उद्योतसागर सूरि–

तपागच्छीय पुण्यसागर, ज्ञानसागर के शिष्य थे। आपने अनेक रचनायें की हैं जिनका संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है—

२१ प्रकारी पूजा—

सं० १८२३ का आदि—

"स्वस्ति श्री सुख पूरवा कल्पवेली अनुहार,
पूजा भक्ति जिन नी करों, अेकवीस भेव विस्तार।

रचनाकाल— संवत् गुण युग अचल इंदु, हर्ष भरि गाइयो श्री जिनेन्दु,

तास फल सुकृत थीं सकल प्राणी, कहे ज्ञानउद्योत धन शिव निशानी।

दोहा— अेकवीस श्रावक गुण वर्में पूजा पुष्कर मेह,
सुखर सुख फूले फले, शिव सुख कहे अछेह।

अंत— "अगणित गुण मणि आगर, नागर वंदित पाय,
श्रुतधारी उपगारी, ज्ञानसागर उवझाय।"

यह पूजा श्री मद्देवचंद भाग २ पृ० ८७२-७३ पर प्रकाशित है। इसी भ्रमवश इसे देवचंद की रचना कहा गया था, परन्तु जैन गु० क० के नवीन संस्करण में इसे उद्योतसागर की रचना बताया गया है।[४८]

(श्रावक गुणोपरि) अष्ट प्रकारी पूजा (विधि) सं० १८२३, इसमें गद्य-पद्य दोनों विधाओं का प्रयोग किया गया है, इसका प्रारंभिक दोहा आगे दिया जा रहा है—

शुचि सुगंधवर कुसुमयुत जल शूं श्री जिनराय,
भाव शुद्ध पूजन भव कषाय पंकजल जाय।

पाठांतर— गंगा मागध क्षीरविधिं ओषध मंथित सार,
कुसुमे वासित शुचि जलें, करो जिन स्नात्र उदार।

रचनाकाल— संवत् गुण युग अचल इंदु हरषभर गाइयें श्री जिनेन्दु,
तास फल सुकृत श्री सकल प्राणी लहौ, ग्यान उद्योत धन शिव निशानी।

यही रचनाकाल ज्यों का त्यों २१ प्रकारी पूजा का भी बताया गया है।

अंत— "इम आठविध पूजा जिनपूजा, विरचै जे थिर चित्त,
मानव भव सफलो करै, वाधै समकित वित्त।

यह रचना भी मद्देवचंद भाग २ पृ० ८८४-९१ और विविध पूजा संग्रह (प्रकाशक भीमसिंह माणेक) में देवचंद के नाम से ही प्रकाशित है।

आराधना ३२ द्वारनो रास—

इसकी प्रति खंडित होने के कारण रचनाकाल और अन्य विवरणों से संबंधित उद्धरण उपलब्ध नहीं हैं। वीरचरित्र वेली (गा० १७) इनकी एक लघुकृति है। आपने कुछ गद्य रचनायें भी की है उनका विवरण भी दिया जा रहा है—

सम्यकत्व मूल बारव्रत विवरण अथवा बारव्रत टीप (हिन्दी) सं० १८२६

मागसर शुक्ल पंचमी, गुरुवार, पारण में रचित है। प्रारम्भ में गद्य है, तत्पश्चात् यह पद्य है।

"सदा सिद्ध भगवान के चरण नमुं चित लाय,
श्रुत देवी पुनि समरीये, पूजता कै पाय।

अंत— "इति सम्यकत्व मूल बारव्रत विवरण ऐसी विगक माफक दोषे
मिटाय के व्रत पाले सो परम कल्याण माला बरे।"

शत अठारे ऊपरि बीते वर्ष छब्बीस,
मगसिर शुदि पंचमी गुरु पूरण भई जगीस;
सुरसरिता के तट बसें पाडलीपुर शुभथान,
जिहांसुदर्शन साधुवर पाया केवल ज्ञान।

पाटलीपुत्र के साह सोमचंद पुत्र हेमचंद के लिए यह बारव्रत विवरण उद्योतसागर ने लिखा है। इसमें पुण्यसागर और ज्ञानसागर की वंदना की गई। अंत में लिखा है।

इह विधि जे व्रत धारस्ये, वारसे विषय कसाय,
विलसे ज्ञान उद्योत मय आनन्द घन सुखदाय।"[४९]

जै० गु० क० प्रथम संस्करण में इस रचना के कर्त्ता का नाम ज्ञानसागर शिष्य, ज्ञानउद्योत और उद्योतसागर आदि कई नाम दिए गये थे। नाम के अलावा रचनाओं के विवरण भी गड़बड़ थे जैसे अष्टप्रकारी पूजा का रचनाकाल सं० १७२३ और १८२३ तथा १८४३ दिया गया था पर नाम उद्योतसागर सर्वत्र मिला; इससे निश्चित है कि ये सभी रचनायें उद्योतसागर की हैं। नवीन संस्करण में इन भ्रमों को सुधार कर जो विवरण दिया गया है उसी के आधार पर यह विवरण दिया गया है।

ऋषभदास निगोता–

पं० जयचंद छाबड़ा के समकालीन विद्वान् निगोता का जन्म सं० १८४० के लगभग जयपुर में हुआ था। इनके पिता का नाम शोभाचंद था। सं० १८८८ में इन्होंने प्राकृत में रचित मूलाचार पर भाषा वचनिका लिखी। इनकी वचनिका पर ढूढारी बोली का अधिक प्रभाव है। रचना शैली टोडरमल और जयचंद से प्रभावित है। एक उदाहरण-

'वसुनंदि सिद्धांत कविचक्रवर्ति कवि रची टीका है सो चिरकाल पर्यन्त पृथ्वी विषय तिष्ठहु। कैसी है टीका सर्व अर्थनि की है सिद्धि जातै। बहुरि कैसी है समस्त गुणन की निधि, बहुरि ग्रहण करि है नीति जाने ऐसो जो आचरन कहिये मुनिनि का आचरण

ताके सूक्ष्म भावनि की है। अनुवृत्ति कहिये प्रवृत्ति जाते। बहुरि विख्यात है अठारह दोष रहित प्रकृति जाकी ऐसा जो जिनपति कहिये जिनेश्वर देव वाके निर्दोष वचनि करि प्रसिद्धि।''[५०]

मूलाचार भाषा का उल्लेख क० च० कासलीवाल ने भी किया है और इसे सं० १८८८ की भाषा (हिन्दी) में रचित आचारशास्त्र की रचना बताया है।[५१]

ऋषभविजय–

यह तपागच्छीय विजयानंदसूरि, ऋद्धिविजय, कुंवर विजय, रविविजय, आणंदविजय, प्रेमविजय, रामविजय के शिष्य थे। आपकी दो रचनाओं का विवरण प्राप्त हुआ है१ खंधकमुनि संज्झाय (३ ढाल सं० १८७७ पौष ६)।

आदि— "श्री मुनि सुव्रत जिन नमुं चरण युगल कर जोड़ि,
सावत्थिपुर शोभवुं, अरि सबला बल तोड़ि।
जितशत्रु महिपति तिहां, धारणी नामे नार,
गौरी ईश्वर सून सम, खंधक नामे कुमार।

रचनाकाल— संवत् सप्त मुनीश्वर वसु चंद्र (१८७७) वर्षे पोष अे,
मास षष्टि प्रेम रागे ऋषमविजय जग भाख अे,

अंत— 'बंध परीषह ऋषि ये खम्या गुरु खंधक जेम अे,
शिव सुख चाहो जो जंतु, तब करशो कोप न अेम अे।

यह रचना आनन्दकाव्य महोदधि मौक्तिक ५ परिशिष्ट पर छपी है।

वत्सराज रास (४ उल्लास, ५६ ढाल १५२८ कड़ी सं० १८८२ श्रावण शुक्ल ६ भृगुवार, बारेजा) का आदि—

श्री सुहंकर आदि देव, युगल धरम हरनार,
वीमल आमल अगोचरु, अजर अमर निरधार।

यह रचना मुख्यतया पूजा के माहात्म्य पर आधारित है, पूजा का महत्त्व दर्शित करने के लिए उदाहरण स्वरुप वत्सराज की कथा दी गई है यथा—

पूजा ऊपर वत्सराज ना, भाखी सु अधिकार,
किण विध से सुख दुख लह्यो, किम कीधा भवपार।

अंत में सेनसूरि, तिलकसूरि, विजयाणंद सूरि से लेकर रामविजयसूरि तक की

गुरु परम्परा का उल्लेख करके वंदन किया गया है।

रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

"आप आपां दे उद्यम कीधो, श्री गुरु चरण पसाया लाल,
संवत् अठार ने व्यासिया बरसे, श्रावण मास ने आया लाल।
उज्वल छठ दिवसैं मृगुवारे, ढाल छपन्न करी ध्याया लाल,
रत्नभये गुण मोटा दीठा अेक अवतारी दाया लाल।"[५२]

अंत मे इसका कलश निम्नांकित है—

दान शियल तप चोथो भाव, अे च्यारे छे भवजल नाव,
च्यारें उल्लासे छपन्न ढाल, भणतां गुणतां मंगलमाल।
सूत्र छे अनयोगिद्धार, ते प्रभु भाख्या च्यारि प्रकार
तिम उल्लास में रचिया च्यार, ऋषभविजय कहे जय जयकार

नेमिनाथ विवाहलो (१७ ढाल सं० १८८६ आषाढ़ शुक्ल १५, बरेजा)

आदि— 'सरसति चरण नमी करी रे, श्री शंखेसर राय रे,
वाहलो माहरे नेमजी गायसूं रे।

अंत— "दंपति अविचल प्रीतडी अे, राखी जग आख्यात,
संवत् अठार ने छासीई, मास अषाढ़ महंत,
पुन्यम दिन गुण गाइया अे, रही बारेजो चोमास
विजयानंद सूरि गछपति अे, दिनकर परे परकास।"

राम सीता नां ढालिया (७ ढाल सं० १९०३ मागसर वद, बुधवार)

आदि— "श्री सरसति धवल हंसासनी, कवियण नी तु माय,
सरस वयण उपगारणि, ललि ललि प्रणभुं पाय।"

यह रचना बीसवी शताब्दी की है इसलिए इसका विस्तार नहीं किया जा रहा है।

इसमें कहा गया है कि श्री रामचन्द्र मुनि सुव्रत के समकालीन थे। इसमें सती सीता के उज्वल चरित्र पर विशेष बल दिया गया है। पंदर तिथि के अलावा इन्होंने 'राजिमती बारमासा' और स्थुलिभद्र संञ्झाय की भी रचना की है। राजिमती बारमासा में कवि ने राजुल के विरह का वर्णन परिपाटी विहित बारहमासा शैली में किया है। श्रावण का एक

उदाहरण देखिये—

"राजुल बोली मोहनबेली, श्रावण मास में सहेली,
नेम गया मुझसे मेहली। आवो हरिवंश तणा राजा,
राखो निज कुल नी माझा रे, आवो"

स्थूलिभद्र संज्झाय में स्थूलिभद्र और कोशा वेश्या की सरस कथा का संक्षिप्त वर्णन है। इसकी प्रारम्भिक पंक्ति है—

"थूलिभद्र मुनिगण मां—।"

यह रचना प्रस्तुत ऋषभ विजय की है या किसी अन्य ऋषभ की यह निश्चित नहीं हो पाया है क्योंकि जै० मु० क भाग ३ में इसे ऋषभदास की कृति कहा गया है।[५३]

ऋषभ सागर-

तपा० जशवंतसागर, जैनेन्द्र सागर, आगमसागर, विनोदसागर के शिष्य थे। इन्होंने विनयचट रास ४ उल्लास ५८ ढाल, १५३० कड़ी सं० १८३० भाद्र शुक्ल १५ बुधवार, पोरबंदर में लिखा। इसका आदि इस प्रकार है—

"पार्श्वनाथ जिनवर प्रणम्य, त्रेतीसमो जिन तास,
अलिय उपद्रव उपशमे, बारे गडवास।
पन्नग राख्यो परिजलत, अद्भुत कर्यो उपगार,
सुर पदवी आपी सरस, धन्य विश्व आधार।

रचनाकाल— संवत् गगन वन्नी (वह्नि) ते जाणो, सिद्धिचक्र अे माणो जी,
भाद्रवा शुदि पौनम बुधवारे, संवत्सर सुप्रमाणो जी।

इसमें यशवंतसागर से लेकर विनोदसागर आदि गुरुजनों की वंदना की गई है। अंत इन पंक्तियों से हुआ है।

"पोबिंदर चौमासं कीधुं, श्री विजयधर्म सुदीस जी,
तेह तणी सेवा मां रहीने, रचीओ रास सुजगीस जी।

'प्रेमचंद संघ वर्णन रास' अथवा सिद्धाचल शत्रुंजय रास (२१ ढाल, सं० १८४३ जेष्ठ कृष्ण ३, सोमवार, सूरत)

आदि— "सुमर मात चक्रेसरी, वाणी आप विगत
गुण गाइस गिरुआ तणा, आछी धरे उकत।"

इस रचना में प्रेमचंद द्वारा निकाली शत्रुंजय संघ यात्रा का अच्छा वर्णन है। अंत में रचनाकाल इन पंक्तियों द्वारा दर्शाया गया है—

"वह्नि वेद सिद्धि भू संवत्सर, ज्येष्ठ वदि तिथि तीज,
सोमवार संपूरण रचना, कीधी मन नी रीझी रे।"[५४]

यह रचना सूर्यपुर रास माला में संकलित प्रकाशित है।

कनकधर्म-

आप का एक गीत ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में जिनलाभ सूरि पट्टधर जिनचन्द्र सूरि गीत शीर्षक के अंतर्गत दूसरे स्थान पर संकलित है। जिनलाभ सूरि का स्वर्गवास सं० १८३४ में हुआ था, इसलिए उसके पश्चात् १८३५ में जिनचंद पट्टासीन हुए और यह रचना उनकी स्तुति में है अत: १९वीं (वि०) की रचना है। इसकी अंतिम दो पंक्तियाँ प्रस्तुत है—

"इम बहुविध विनती करी, आवधारो गछराय,
कनक धर्म कहे वंदणा, अवधारो महाराय।[५५]

इसमें जिनचंद्र की वेदना है, यति कनकधर्म उनके शिष्य रहे होंगे।

कनीराम ऋषि-

इनका जन्म सं० १८५९ माघ शुक्ल एकादशी को रवींवसर (जोधपुर) में हुआ। इनके पिता का नाम किसन दास पूणोत और माता का नाम राऊ देवी था। सं० १८७० में दुर्गादास महाराज के शिष्य मुनि श्री हर्षीचंद से इन्होंने दीक्षा ली और संयम पूर्वक जीवन यापन करते हुए सं० १९३९ माघ शुक्ल पंचमी को पीपाड़ में शरीर त्याग किया। नागोर, अजमेर, पीपाड़ तथा पंजाब प्रदेश में इन्होंने विहार किया। चर्चावादी होने के कारण इन्हें वादीभ केशरी कहा जाता था, परन्तु इनके उपदेश प्रधान पद शुष्क नहीं बल्कि भावप्रवण है। आपने जंबू कुमार संज्झाय, कुंभिया के श्रावक की संज्झाय, पडिमा छत्तीसी, सिद्धांतसार और ब्रह्मविलास (८७ ढाल) नामक रचनायें की है।[५६] पडिमा छत्तीसी का वर्णन संभवत: 'चर्या' नाम से देसाई ने वर्णित किया है जिसे आगे दे रहा हूँ। इनकी अन्य रचनाओं के विवरण उद्धरण नही उपलब्ध हुए।

श्री देसाई ने इनकी दो रचनाओं का उल्लेख किया है। 'चर्या' का विवरण पहले दिया जा रहा है-चर्या (६९ कड़ी) सं० १८९४ पीपाड़।

आदि— पडिमाधारी आणदवक पोते पाप न करायो रे;

अब अेने कहनें नहीं करावै, अणमोदे नहि मन भायो—

पडिमाधर्म थी जिनधर्म आग्यामें।

रचनाकाल— अष्टादश वर्ष चौराणबे जी, पीपाड कीयो चौमास,
धर्मज्ञान रसरंग में जी, श्रावक हुवा हुलास।

अंत— "कनीराम कहै अेह सांभली जी, छोड़ो पाखंड च्यारो संग।
समगर ननज देहिलो जी, इणसुं राखो अविचल संग।

इसकी भाषा राजस्थानी प्रधान मरुगुर्जर है। इनकी दूसरी रचना "त्रिलोक सुंदरी चौ० का रचनाकाल १८११ लिखा है। इसकी रचना और 'चर्या' की रचना में लम्बा अंतराल है। इसलिए इसके कर्त्ता के संबंध में शंका है।[५७]

कमलनयन-

आपके पिता का नाम हरिचंद था जो एक अच्छे वैद्य थे। ये मैनपुरी के निवासी थे। साहु नंदराम के सुपुत्र धनसिंह ने सम्मेदशिखर की जो संघयात्रा निकाली थी, उसके साथ कवि कमलनयन भी गये थे और इन्होंने उस यात्रा का सजीव वर्णन अपनी रचना में किया है। ये अध्यात्म रस के रसिक थे, इस संबंध में चार पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

"जिन आतमघट फूलो वसंत, सुनि करत केलि सुख को न अंत;
जहाँ रीति प्रीति संग सुमति नार, शिवरमणि मिलन को कियो विचार;
जिन चरण कमल चित्त बसो मोर कहें कमलनयन राति सांझ भोर।

इन्होंने सं० १८६३ में 'अठाई द्वीप का पाठ' लिखा और सं० १८७१ में जिनदत्त चरित्र का पद्यानुवाद किया। १८७३ में अपने मित्र लालजीत के आग्रह पर प्रयाग में 'सहस्रनाम पाठ' की रचना की। सं० १८७४ में पंच कल्याणक पाठ और सं० १८७७ में बरांगचरित्र लिखा। अंतिम रचना शिवचरण लाल ग्रंथमाला में छप गई है। इनकी रचनायें सरल, सुबोध है और लोक कल्याण की भावना से परिपूर्ण हैं। इनकी रचना का नमूना निम्नांकित 'पावस वर्णन' से मिलेगा—

'पावस में गाजैं धन दामिनी दमंकै जहाँ, सुरचाप गगन सुबीच देखियतु हैं।
नागसिंह आदि बनजंतु भय करै जहाँ, कंपित सुपादप पवन पेखियतु है।
निरंतर वृष्टिं करैं जलद अगमनीर, तरु तलैं खड़े मुनि तन सोखियतु हैं।

मुनियों के तप का वर्णन ग्रीष्म ऋतु के व्याज से निम्न पंक्तियों में किया है—

"ग्रीष्म की ऋतु संतापित जहाँ शिलापीठ, पवन प्रचारु चारि दिशा में न जा. समैं,
सूखि गयो सरवर नीर और नदीजल, मृगन के यूथ बन दौड़े फिरैं प्यास मैं।
जलाभास देखियतु दूरितैं सुथल जहाँ, जाम जुग धाम तेज करेऊं आवास में,
गुफा तल सलिल सहाय छाड़ि धीर मुनि, गिरि के शिखर योग गाड़ि बैठे ता समैं।"[५८]

कमलविजय-

तपा० विजयप्रभ सूरि के प्रशिष्य और लाभविजय के शिष्य थे। आपने चंद्रलेखा रास सं० १८२० कार्तिक शुक्ल ५ बीसनगर में लिखा, उसका आदि—

"सकल सिद्धि कारक सदा, समरुं हूँ शुभकाम,
चउवीसे जिनवर चरणि, प्रतिदिन करुं प्रणाम।
आई प्रसन्न जे ऊपरि भूतल ते भाग्यवंत,
कालिदासादिक तणी ऊपम कवि पावंत,
देव गुरु धर्म दया सहित, शुद्ध समकित गुणकार,
गुरु समीपै अे ऊपरि सरस सुणो-अधिकार।
समकित अे सही कहिसुं कथा प्रबंध,
चंद्रलेखा सती तणो सुणयो सहु संबंध।

रचनाकाल— नयन गगन फुनि इंदु संवत अेह सुजाण जी,
बहुल मास सौभाग्य पंचमी दिनै, चौपइ चढ़ी प्रमाण जी।

इसमें तपागच्छ के आचार्य विजयदेव, विजय प्रभ सूरि और लाभविजय का वंदन किया है। इसकी अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

'श्री विशलनगर विख्यात विशेषै तिहां श्रावक श्राविकाचार जी,
देव गुरु धर्म तणा बहु रागी, विनय विवेक विचारि जी।
श्री ऋषभदेव वीर प्रभु वंदि, ते पूजे चित चंगे जी,
तिणै नयरइ चोमासुं रहि सुखई, अे रास रच्यो मनरंगेजी।'[५९]

कर्पूरविजय-

यह चिदानंद संवेगी साधु थे, पूरे योगी थे। इन्होंने अपना सांप्रदायिक नाम छोड़कर अभेद मार्गी चिदानंद नाम रखा था। आपने अध्यात्म परक पदों की रचना की है। स्वरोदय नामक एक निबंध भी लिखा। इनके एक पद का नमूना प्रस्तुत है—

"जौं लों तत्त्व न सूझ पड़ै रे,
तौं लों मूढ़ भरमवश मूल्यो, मत ममता गहि जग सो लड़ै रे
अकर रोग कर्म अशुभ लख, भवसागर इण भाँति मड़ै रे।

कुमता वश मन वक्र तुरग जिम, गहि विकल्प मग मांहि अड़ै रे।
चिदानंद निज रुप मगन भया, तब कुतर्क तोहि नाहि नड़ै रे।"[६०]

कल्याण-

आपने सं० १८२२ में 'जैसलमेर ग़जल और सं० १८३८ में गिरनार ग़जल तथा सं० १८६४ में सिद्धाचल ग़जल की रचना की। जैन साहित्य में उर्दू की इस लोकविधा के प्रयोक्ता के रूप में कल्याण कवि बराबर स्मरण किए जायेंगें। तीनों नगरवर्णनात्मक ग़जले हैं। कल्याण खरतरगच्छ के कवि थे, किन्तु इनकी गुरुपरम्पराका निश्चित पता नहीं चल पाया।[६१] श्री देसाई ने गिरनार ग़जल का विवरण-उद्धरण दिया है जो आगे संक्षेप में प्रस्तुत है—

गिरनार ग़जल (५९ गाथा) सं० १८२८ महाबद २, रचनाकाल से संबंधित अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

"संवत अठार अडवीसे क, महा वदि बीज के दिवसैक,
कीनी यात्रा गढ़ गिरनार, कहिता ग़जल अति सुखकार।
धरके अधर में नसौ धार, गढ़ युं वर्णव्यो गिरनार,
खरतरपती है सुप्रमाण,कवि युं कहत है कल्याण।"[६२]

कल्याण सागर सूरि शिष्य-

संभंवत: ये उदय सागर हों। इनकी एक रचना 'सिद्धगिरि स्तुति प्राप्त है। उसका प्रारम्भ देखिये।

आदि— "श्री आदीश्वर अजर अमर अव्याबाध अहनीश;
परमातम परमेसरू, प्रणमुं परम मुनीस।

अंत— "इम तीर्थनायक स्तवन लायक संथुण्यो श्री सिद्धगिरि,
आठोतरीसय गाह स्तवने, प्रेम भक्तें मन धरी।
श्री कल्याणसागर सूरि शिष्ये; शुभ जगीसे सुखकरी;
पुण्य महोदय सकल मंगल, वेलि सुजसें जयसिरी।[६३]

जैन गुर्जर कवियों के नवीन संस्करण में ढूढ़ने पर न कल्याणसागर शिष्य का पता चला न उदयसागर ही मिले; इसलिए कर्त्ता का निश्चय नहीं हो पाया।

कवियण–

आपकी रचना 'देवविलास या देवचंद्र जी महाराज नो रास' सं० १८८५ आसो सुद ८ रविवार को रची गई। आपने इस रचना में खरतरगच्छ के आचार्य जिनदत्त, जिनकुशल, जिनचंद्र, पुण्यप्रधान, साधुरंग, राजसागर, ज्ञानधर्म, दीपचंद और देवचंद की वंदना की है। इसलिए कवि खरतरगच्छ के साधु देवचंद या रामचंद का शिष्य रहा होगा। कवियण नाम से एक गीत ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में कविवर जिनहर्ष गीतम शीर्षक के अन्तर्गत दूसरे गीत के रूप में छपा है। संभवतः यही कवियण देवविलास के भी रचयिता हैं और कवियण किसी का नाम नहीं बल्कि किसी अज्ञात कवि का प्रतीक है। जिनहर्ष गीतम में संकलित कवियण रचित गीत की अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

"धन जिनहरष नाम सुहागणु धन-धन अे मुनिराय,
नाम सुहावइ निस्पृह साधु नुं, कवीयण इम गुण गाय।"

ये जिनहर्ष कविवर जिनहर्ष से भिन्न है। ये बोहरा गोत्रीय तिलोकचंद की पत्नी तारा देवी की कुक्षि से पैदा हुए थे। आपके बीकानेर पधारने पर महिमाहंस ने उस उत्सव का एक गहूली में वर्णन किया है, वह गहूली यथास्थान दी जायेगी।

'देवविलास' या देवचन्द रास एक विस्तृत रचना है। इससे ज्ञात होता है कि देवचंद बीकानेर के निकट स्थित एक मनोरम ग्राम के निवासी लूणिया साह तुलसीदास और उनकी पत्नी धनबाई के सुपुत्र थे। माता धनबाई ने गर्भवस्था में ही बालक को राजसागर जी को देने का वचन दिया था। सं० १७४६ में यह बालक पैदा हुआ। सं० १७५६ में राजसागर ने उन्हें दीक्षा दी, बाद में जिनचन्द्र जी ने विधिवत् बड़ी दीक्षा दी और नाम राजविमल रखा। आप जैनागमों के पारंगत पंडित हुए और 'आगमसार' नामक ग्रंथ की रचना की। १७७७ में भगवती सूत्र पर अहमदाबाद में प्रवचन किया और अनेक ढूढ़कों को स्वमतानुयायी बनाया। शिष्यों से शत्रुंजय का सुंदरीकरण कराया और सं० १८१२ में कचराशाह के संघ में वहाँ की यात्रा की। सं० १८१२ में आपका राजनगर में भाद्रपद अमावस्या के दिन स्वर्गवास हुआ। प्रस्तुत रास उनके योग्य शिष्य के आग्रह पर कवियण ने सं० १८२५ में लिखा। इसकी प्रारंम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

सुकृत प्रेम राजीव ने, प्रोल्लासन चिन्हंस,
ते तिम रिदये अक्षता, आदिनाथ अवंतस।

इसमें नेमि- राजुल, पार्श्व, महावीर की वंदना के पश्चात् सरस्वती और माँ के

बरद पुत्रों माघ, कालिदास आदि का सादर उल्लेख किया गया है। रचनाकाल से संबंधित पंक्तियाँ—

"संवत अठार पचीस आसो सुदि रे, अष्टमी रविवार रच्यो रे,
स्तोक में देव विलास कीधो रे, किंचित गुणग्रहीने संस्तव्यो रे।

अंत— कवियणे देवविलास कीधो मन हर्षित उल्लस्यो रे,
कीधो देव विलास शुभ दिने रे, जयपताका विस्तारी रे।

कलश के तीन छंदों में अंतिम यह है—

"मनरूप वाचक विजयचंद जी, पाठक नो पद भाग्यता,
मनरूप पदकज मेरू गिरिवर, रायचंद, रवि उद्रता।
सुज्ञानतायें विनयवंते, बुद्धि मुक्ति सुरगुरू,
चंद्र सूर ध्रु तार तारक रहो अविचल जयकरू।"[६४]

यह रचना आचार्य बुद्धिसागर ने सं० १९८१ में छपाई है।

कस्तूरचंद–

खरतरगच्छीय समयसुंदर की परम्परा में आप भक्तिविलास के प्रशिष्य थे। आपने षट्दर्शन समुच्चय बाला० की रचना सं० १८९४, बीकानेर में की। रचनाकाल से संबंधित पंक्तियाँ देखें—

"संवत् वेद निधान गज पृथ्वी को परिमाण,
राध मास वदिदुतिय शनि, बीकानेर सुथान।
पंडित भक्तिविलास के पौत्र शिष्य कस्तूर,
समझ देखि टीका कठिन, कियौ प्रयास सबेर।"
कोठारी श्रावक सुबुध, अगरचंद के हेतु,
बालबोध रचना करी तुरत जाण सुख देत।[६५]

स्पष्ट है कि यहाँ रचनाकाल में प्रयुक्त 'निधान' शब्द नव निधि के लिए है किन्तु 'राध मास' अस्पष्ट है। यह श्राद्धमास अर्थात् क्वार हो सकता है। यह रचना श्रावक अगरचंद के पठनार्थ लिखी गई थी।

कान–

ये श्वेताबंर संप्रदाय के रचनाकार थे। इन्होंने 'फलवर्धी पार्श्वनाथ नो छंद'

(राजस्थानी प्रधान मरुगुर्जर भाषा, १२२ कड़ी) की रचना की।

आदि— "वंदे पास जिणंद चंद तिलयो तिलोयना हो वरी,
देविंदायन्नरिंद वंदीय पायो, हरा करो दुब्भरो।
विख्यातों महि आस तेण तनयो वामासुतं विम्मले,
माता श्री पद्मावती मम सदा कुर्वन्तु नो मंगलं।

गाहा— नव मंगल नव रयणी नवि दल कमल विकासिया नयणी,
गिरू यति हंसा गमणी, वंदे सरसत्ति शशि वयणी।

इसमें विविध प्रकार के छंदों का मनोरम प्रयोग मिलता है, जैसे वस्तु अथवा वछूआ, अडल्ल, मोतीदाम, दूहा, त्राटकी, जाति, कवित्त, वृद्ध नाराच और केसरी आदि छंद। अंत में कलश है, यथा—

"त्रिमैनाथ अनाथ नाथ श्री नाथ नमो नम;
जगविख्यात अविख्यात नाथ जगन्नाथ जयो मम।
अधकरण अस्त सुरतर समस्त किन्नर आराधक,
त्रिजगतनाथ श्री पार्श्वनाथ सुप्रसन्न मन साधक।
जयति-जयति सत्त विजयत जयति दीपति सुगति सद्गति दीयति,
कवि कांन स्वेतांबर कहित कृत श्री फल विध अथ पत्तिसति।"[६६]

कांतिविजय–

आप देवविजय के प्रशिष्य और दर्शनविजय के शिष्य थे।

रचना–

सुभद्रा चौ० अथवा संम्झाय (३७ कड़ी सं० १८३३ पोष पु, जामला)

रचनाकाल— संवत् अठार तेत्रीसो सार, पोस मास पंचमी निरधार,
जामला गामे जिनभुवन सुठाम, कर्यो चोमासो शुभ अभिराम।
देवदर्शन गुरु सीस सवाय, कांति विजय हरषे गुण गाय।"

अंतिम पंक्ति—

गाया गुण सुभद्रा तणा प्रह सम गणतां सुख बहुघणा,
प्रति के खंडित होने से प्रारंम्भिक पंक्तियाँ नही मिली।

आपकी दूसरी रचना का नाम है "चार कषाय छंद (३२ कड़ी सं० १८३५

बागड़ प्रदेश के बड़ोछा ग्राम में रचित है), इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ—

"पहिलो लीजे सरसती नाम, चोविस जिन ने करूं प्रणाम,
क्रोध मान माया ने लोभ, आखूं अर्थ करी थिर थोभ।

अंत— "अठार पांत्रीसा वरस मझार, (नागड़देश) बड़ोछा सार,
देवदर्शन गुरु पंडित राय, कांतिविजय हर्षे गुण गाय।'[६७]

कृष्णदास(जैनेतर)–

रचना— 'कृष्ण रूक्मिणी विवाहलो अथवा रूक्मिणी विवाह' इसकी प्रति सं० १८३० की प्राप्त है इसलिए मूल लेखन इससे कुछ पूर्व हुआ होगा।

आदि— "विद्रभ देश कुदंणपुर नगरी, भीषम नृप तहां नव निधि सगणी,
पंचपुत्र जाकइ कन्या रूक्मणी, तीन लोक तरण सिरि हरणी

रूक्मिणी की शोभा का वर्णन :-

"मिरगराज कटि तटि मृगज लोचन, गिरग अंग वंदन सुदेसही,
कहत कृष्णदास गिरधर उपज्य विद्रभ देस ही।

अंत— "रूषमणी जामडं सत्यभामा सदाभद्रा आणी,
लक्षमनि कलही नितविदा, अे आंठउ पटराणी।
दस-दस पुत्र अेक-अेककन्या, तरणि तरणि वृत्त दीना,
निरावारनिलेय निरजंण, मो माया रस भीना।
रूकमणि व्याह कथो कृष्णइ जन, सीष सुणइ अर गावइ,
अर्थ कामना सुगतिफल, च्यारि पदारथ पावइ।"[६८]

इस कृति को शास्त्री काशीराम करसनजी ने प्रकाशित किया है।

कृष्णविजय–

इनकी गुरु परम्परा नहीं बताई गई है किन्तु जैन गुर्जर कवियों में उल्लिखित कृष्णविजय के शिष्य (अज्ञात) ने अपनी गुरु परम्परान्तर्गत जसविजय, कांतिविजय ओर रूपविजय का उल्लेख किया है इसलिए कृष्ण विजय रूपविजय के शिष्य हो सकते हैं। इनकी एक रचना 'राजुल बारमास' का उल्लेख १९वीं शती की कृतियों में मो० द० देसाई ने किया है किन्तु अन्य विवरण-उद्धरण आदि कुछ नहीं दिया है।[६९] जै० गु० क० के नवीन संस्करण में इनका और इनकी रचना का उल्लेख भी नहीं मिला; इसलिए

शंकास्पद प्रकरण है और छानबीन की अपेक्षा है।

कृष्णविजय के शिष्य–

जसविजय, कांतिविजय, रूपविजय, कृष्ण विजय के शिष्य थें इन्होंने 'मृगसुंदरी महात्म्य गर्भित छंद' (५६ कड़ी सं० १८८५ फाल्गुन शुक्ल ३, पालनपुर लिखा है।

आदि— प्रणमी वीर जिनेसर पाय, करे प्रीछा गौतम चित लाय,
पूज्य जयण चंद्रोदय ठाम, केला कहिये त्रिभोवन स्वामि।

मधुर गिरा जंपे अरिहंत, सांभल तेह तणो विरतंत,
परी मन जीवदयानुं अंग, बांधे चंद्रोदय दस चंग।

रचनाकाल— अठार पंचासिया फागण मास, श्वेतभुवन तिथि माखी खास,
पालणपुर मां कियो अभ्यास, वामासुत मन पूरी आस।
प्रेमे सेवा दया अंकतार, कहो जसकांति रूप अपार।
कहे कवि कृष्णविजय नो सीस, जयणा धर्म करो निसदीस।''

मो० द० देसाई ने जै० गु० क० में कृष्णविजय के इस अज्ञात शिष्य की पहचान दीपविजय के रूप में की थी, लेकिन कृति में गुरुपरम्परा के पश्चात् दीपविजय का कही उल्लेख न होने से यह निश्चित नहीं है कि यह अज्ञात शिष्य दीपविजय ही है।[७०]

कुंवरविजय–

आप तपागच्छीय पद्मविजय के प्रशिष्य एवं अमीविजय के शिष्य थे। 'अष्टप्रकारी पूजा' पद्यात्मक सांप्रदायिक रचना है।

आदि— "त्रिजगनायक तु धणी, महा महोरो महाराज,
महोरे पुण्ये पामियो, तुम दरिशंण हूं आज।
आज मनोरथ सर्व फल्या, प्रगट्यां पुण्य कल्लोल,
पापकरम दूरे टल्यां, नाठां दुःख दंदोल।

अंत— जिन उत्तम पद पद्मनी, नित सेवा करो त्रणकाल,
निज रूप प्रगटे सुख होवे, अमिकुंवर कहे नहि वार।''

यह पूजा 'विविध पूजा संग्रह' और स्नात्रपूजा आदि पूजा संग्रहों में संकलित प्रकाशित है।[७१अ]

आपने गद्य में भी रचनायें की हैं उनमें 'अध्यात्म प्रश्नोत्तर' (सं० १८८२ महा शुद ५, रवि, पाली) के अंत में रचनाकाल इस प्रकार वर्णित है-

खीमाविजे रे खिमाना भंडार, जिन उत्तम पद ना दातार।
अेहवा गुरु ने नीत सेवो सहू, निज रूप प्रगटे सुख लहो बहु।
अमीकुंवर तस प्रणमी पाय, ग्रंथ कीयो भविजन सुखदाय,
अल्पबुद्धि में रचना करी, शुद्ध करो पंडित जन मिली।
मरूधर देश पालीनगर मझार, करयो चौमास धरी हर्ष अपार,
वर्ष बयासी संवत् अठार, महा सूद पांचम ने रविवार।
प्रश्नोत्तर ग्रंथ कीधो सार, अंतिम अर्थ ने हितकार।

इसके गद्य भाग का नमूना नहीं मिला, इसे भीमसिंह माणेक ने प्रकाशित किया है। अध्यात्म गीता बाला० (सं० १८८२ आषाढ़ शुक्ल २, गुरु पाली) आपकी दूसरी उपलब्ध गद्य रचना है पर उद्धरण इसका भी अनुपलब्ध है। इसकी मूल रचना देवचंद ने गुजराती प्रधान मरूगुर्जर में लिखी थी।

कुशलविजय–

रचना— 'त्रैलोक्य दीपक काव्य' (सं० १८१२ वैशाख शुक्ल३)। मरूगुर्जर' हिन्दी जैन साहित्य का वृहत् इतिहास भाग ३ (१८वीं वि०) के पृष्ठ ९४ पर इनका विवरण दिया जा चुका है। चूँकि ये १८वीं और १९वी शताब्दी के कवि है इसलिए पूर्व निश्चयानुसार इनका विवरण १८वीं शती के रचनाकारों के साथ दिया गया है। त्रैलोक्य दीपक के अलावा आपकी एक अन्य सरस रचना नेमि राजुल शलोको भी है।[७२]

केशरी सिंह–

आप जयपुर निवासी, भट्टारकीय परम्परा के विद्वान थे। उन्होंने जयपुर के दीवान बालचंद छाबड़ा के पुत्र जयचंद छाबड़ा के आग्रह पर सं० १८७३ में 'वर्द्धमान पुराण की भाषा टीका की। ये जयपुर के लश्कर दिगंबर जैन मंदिर में रहते थे। इसके गद्य का नमूना देखें—"अहो या लोक विषे ते पुरुष धन्य है ज्याँ पुरवन का ध्यान विषै तिष्ठता चित्त उपसर्ग के सैकण्डेन करिंहु किंचित् मात्र ही बिक्रिया कूं नहीं प्राप्ति होय है।[७३] इसका रचनाकाल फाल्गुन शुक्ल १२ क० च० कासलीवाल ने ग्रंथ सूची में बताया है। यह रचना बालचंद के पौत्र ज्ञानचंद के आग्रह पर की गई थी।

केशोदास–

आपकी रचना 'हिडोलना' की प्रति १८१७ की प्राप्त है अत: रचना कुछ पहले

की होगी। एक पद का नमूना प्रस्तुत है—

"सहज हिंडोलना झूलत चेतनराज।
जहाँ धर्म्य कर्म्म संजोग उपजत, रस सुभाउ विभाउ।
जहाँ सुगम रूप अनूप मंदिर सुरूचि भूमि सुढ़ंग,
तहां ज्ञान दरषन षंध अविचल छरन आड अभंग।
X X X X X X
ते नर विलक्षण सदय लक्षण करत ग्यान विलास,
कर जोरी भगत विशेष विधि सौ नमत् केशौदास।"[७४]

क्षमाकल्याण–

आप खरतरगच्छीय जिनलाभसूरि, अमृतधर्म के शिष्य थे। इन्होंने खरतरगच्छ की पट्टावली संस्कृत में लिखी है। इनकी कई उत्तम रचनायें संस्कृत में है जैसे गौतम काव्यकृति, पार्श्वस्तव चूरि, विज्ञान चंद्रिका इत्यादि। इन्होंने हिन्दी (मरूगुर्जर) में भी पर्याप्त लिखा है जिसका विवरण आगे दिया जा रहा है। ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में संकलित जिनलाभ सूरि निर्वाण गीतम् आपकी महत्त्वपूर्ण रचना है। इसके अंत की दो पंक्तियाँ दी जा रही हैं।

"चरण कमल की थापना, अतिशयवंत विराजै रै,
दास क्षमाकल्याण नौ वंदन हूओ शुभ काजै रै।"[७५]

'गिरनार गजल' (गाथा ५९ संवत् १८२८ महा, बद, २)

अंत— "संवत अठार अड़वीसैक, महा बदि बीज के दिवसैक;
कीनी यात्रा गढ़ गिरनार, कहिता वर्णव्यो गिरनार;
धरके अखरम नसौधार, गढ़ युँ वर्णव्यो गिरनार;
खरतरपती है सुप्रमाण, कवि युं कहत है कल्याण।

'थावच्चा चौ० अथवा चौढालियुं (सं० १८४७ विजयादशमी, महिमापुर) यह लघु रास कृतियों में प्रकाशित है। संपादक रमणलाल शाह है। 'चौंबीस जिन नमस्कार' (अथवा चैत्यवंदन) चौबीसी सं० १८५६ ज्येष्ठ शुक्ल १३ नागपुर का आदि—

"जय-जय जिनवर आदि देव तिहुअण जण तात,
श्री मरूदेवा नाभिनंद, सोवन सम गात।

रचनाकाल— सय अठार छप्पन समै, सुदी जेठ पिछांण;

दक्षिणदेशे नागपुर तिथी तेरस जाण।
श्री जिन भक्ति पसाय थी, इम वरणव्या सुजाण;
वाचक अमृतधर्म गणि, सीस क्षमाकल्याण।

यह रचना' चैत्यवंदन चौबीसी' में प्रकाशित है। जयतिहुअण स्तोत्र भाषा (४१ कड़ी, महिमापुर)

आदि— "परम पुरुष परमेशिता, परमानंद निधान,
पुरसादांणी पास जिन, वंदू परम प्रधान।

यह रचना वंगदेशीय शोभाचंद के पुत्र तनसुखराय के आग्रह पर की गई थी। इसके अलावा अनेक स्तवन, स्तोत्र और लघु रचनायें आपने की हैं जैसे शंखेसर स्व०, सूरत सहस्रफणा पार्श्व स्तव, ऋषभ स्तव आदि। 'अइमत्ता ऋषि संञ्झाय' (३ ढाल २७ कड़ी) मोटु संञ्झाय माला संग्रह में और शेष अधिकांश रचनाये उपाध्याय क्षमाकल्याण जी विरचित चैत्य वंदन स्तवन संग्रह में प्रकाशित हैं।[७६] आपकी एक रचना 'स्तुति चतुष्टय' महत्त्वपूर्ण है, उसका विवरण दिया जा रहा है।

आदि— "जइ-जइ नाम निरंद नंद सिद्धाचल मंडन,
जइ-जइ प्रथम जिणंद चंद भवदुक्ख विहंडन।"[७७]

इन पद्यवद्ध कृतियों के अतिरिक्त आपने कई गद्य रचनाओं द्वारा जैन हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। कुछ का विवरण प्रस्तुत है—

श्रावक विधि संग्रह प्रकाश (भाषा) सं० १८३८, इसके अंत में रचनाकाल पद्य में इस प्रकार दिया गया है—

"श्री जिनचंद सुरिंद नितु, राजत गछ राजान,
वाचक अमृतधर्म गणि, सीस क्षमाकल्याण।
सय अठार अडतीस, जेसलमेरु सुथान,
श्रावक विधि संग्रह कीयौ, मूल ग्रंथ अनुमान।

प्रश्नोत्तर सार्धशतक (भाषा) सं० १८५३ वैशाख, कृष्ण २, बुधवार,

रचनाकाल— सय अठार तेपन समय, बदि वैशाख सुमास,
बुधवार संपूरन रच्यो, बीकानेर सुपास।

यशोधर चरित बाला०—सं० १८७३ जैसलमेर, यह ग्रंथ मूलतः संस्कृत में था। इसके अलावा अखंड चरित्र (सं० १८५४ आषाढ़ शुक्ल ३, बुधवार पालीताणा

भी महत्त्व पूर्ण रचना है।[७८]

आप गद्य और पद्य विधा में रचना करने में पटु थे तथा संस्कृत, हिन्दी आदि भाषाओं तथा जैनागम के निष्णात विद्वान् थे। वस्तुतः ये खरतरगच्छ के १९वीं (वि०) शती के लेखकों में सर्वाधिक प्रसिद्ध विद्वान् लेखक थे। उपाध्याय क्षमा कल्याण बीकानेर के केसरदेसर ग्राम निवासी ओशवंशीय उत्तम परिवार में सं० १८०१ में उत्पन्न हुए थे। ११ वर्ष में आपने अमृतधर्म से दीक्षा ली। धर्म प्रचारार्थ आपने गुजरात, बिहार, बंगाल, मध्य प्रदेश आदि प्रदेशों की यात्रायें की और धर्म-प्रवचन दिए। आपकी कुछ रचनायें जैसे अष्टाह्निका, अक्षय तृतीया, होलिका, मेरुतेरस आदि संस्कृत रचनाओं का इतना व्यापक प्रचार था कि उनका राजस्थानी और हिन्दी भी अनुवाद किया गया था। स्तुति चतुष्टय में ऋषभ, शांति, नेमि और पार्श्व के बड़े मार्मिक और प्रभावशाली स्तोत्र विनतियाँ हैं। आपका रचनाकाल सं० १८२६ से १८७३ तक का दीर्घकाल है।[७९] इस लम्बी अवधि में उन्होंने पचासो उत्तम रचनायें की है। आपकी शिष्य परम्परा में कई विद्वान और सुकवि तथा लेखक हो गये है। इस प्रकार आप १९वीं शती के खरतरगच्छ के श्रेष्ट रचनाकारों में अग्रगण्य है।

क्षमाकल्याण पाठक ने सं० १८५० में जीवविचार वृत्ति और साधु प्रतिक्रमण विधि और श्रावक प्रतिक्रमण विधि आदि रचनायें की हैं।[८०] हो सकता है कि यह पाठक क्षमाकल्याण और उपाध्याय क्षमाकल्याण एक ही रचनाकार हों।

क्षमाप्रमोद–

आप रत्नसमुद्र के शिष्य थे। इन्होंने धर्मदत्त चन्द्रधौल चौ० १८२६ जैसलमेर, निगोद विचार गीत (गाथा ४८) और 'सत्यपुर महावीर स्तवन' आदि की रचना की है। प्रथम रचना धर्मदत्त चन्द्रधौल चौ० की प्रतिलिपि इन्होंने स्वयं लिखी थी जो यति वृद्धि चन्द्र संग्रह जेसलमेर में सुरक्षित है।[८१] इनके शिष्य अनोपचन्द्र ने 'गोडी पार्श्वनाथ वृहत् स्तवन सं० १८२५ में लिखा जिसका विवरण यथास्थान दिया जा चुका है।

क्षमामाणिक्य–

आप भी खरतरगच्छीय विद्वान लेखक थे। आपकी कुछ गद्य कृतियों का पता चला है जैसे सम्यकत्व भेद (गद्य) सं० १८३४ राजपुर; गणधरवाद बाला० १८३८ (स्वयं लिखित प्रति प्राप्त); क्षेत्र समास बाला० इत्यादि[८२], किन्तु इनके गद्य नमूने उपलब्ध नहीं है।

क्षेमवर्धन–

तपागच्छीय हीरविजयसूरि; नगवर्धन; कमलवर्धन; रविवर्धन; धनवर्धन; विनीतवर्धन; वृद्धिवर्धन; प्रीतिवर्धन; विद्यावर्धन; हीरवर्धन के शिष्य थे। इनकी रचना— सुरसुंदरी अमरकुमार रास (५३ ढाल, सं० १८५२, पारण) का।

आदि— "सरस वचन दे सरसती, कविजन केरी माय,
कर जोड़ी करुं वीनती, करज्यो मुझ सुपसाय।

इसके प्रारम्भ में ऋषम, शांति, नेमि और महावीर आदि तीर्थंकरो के साथ अपने गुरु की वंदना की गई है। तदोपरांत कवि कहता है—

"सुरसुंदरी सती कथा, कहिस्यूं गुरु आधार,
उत्तम नां गुण गावतां, पामीजे भवपार।

यह रचना नयनसुंदर द्वारा मूलतः लिखी गई थीं।

रचनाकाल— तेह तणी साविधे में तो पूरण कलश चढ़ाया जी;
नयण वाण नाग शशि वरषे, जीत निशाण चडाया जी।

अंत— "शील अने नवकार प्रभावें, प्रतख्य पुण्यनी शाला जी,
भणतां गुणतां सुणतां लहींइं, ज्ञान अभंग रसाला जी।

शंतिदास अने बरवतचंद शेठ रास अथवा पुण्य प्रकाश रास—(४५ ढाल, सं० १८७० आषाढ़, शुक्ल १३, गुरुवार, अहमदाबाद; आदि—

"सरस वचन रस सरसती, कविजन केरी माय,
कर जोड़ी करुं वीनती, करज्यो मुझ पसाय।

इसमें शाह शांतिदास के वंशज वरवतचंद के गुणों का गान किया गया है।

रचनाकाल— "संवत पूर्ण नाग मुनि शशि, मास असाढ़ विशाल,
शुक्ल तेरस गुरुवार दिन, सरस कथा गुणमाल।

इसमें हीरविजय सूरि द्वारा अकबर को प्रतिबोध और जजिया कर से मुक्ति का उल्लेख किया गया है। इसमें विजयसेन, राजसागर सूरि, लक्ष्मीसागर, वृद्धिसागर, कल्याणसागर, पुण्यसागर, उदयसागर, आणंदसागर और शांतिसागर की भी वंदना की गई हैं। यह रास जैन ऐ० रास माला भाग १ में प्रकाशित हैं। 'श्रीपाल रास' (सं० १८७९, पाटण)

आदि— "सरसति नवपद गुरु नमि, सिद्धचक्र गुणमाल,
आसो चैत्रि पुन्यमें, सुणज्यो बाल गोपाल।

यह कथा गौतम गणधर ने सम्राट श्रेणिक को सुनाई थी।

रचनाकाल— श्री पाल मयणां ने अे फलीओ, अेक माहरे दावो,
सहियर भोली टोली मली ने सरस सुकंठे गावो रे।
संवत अठार ओगणासीया बरसे, नयर पाटण जग चावो,
सांकला भाई नगरसेठ काजे, रास रच्यो मन भावो रे।
सागरगच्छ शोभाकर सुंदर, शांतिसागर सूरि रायो,
हीरवर्धन शिष्य खेम सुहंकर, नवपद माहे सखायो रे।[८३]

क्षेमविजय–

आप तपागच्छ को रूप विजय; माणेकविजय; जीतविजय; विनयविजय के शिष्य थे। आपकी रचना 'प्रतिमा पूजा विचार रास' अथवा कुमति ५८ प्रश्नोत्तर रास सं० १८९२ आसो कृष्ण १३, धनतेरस, मंगलवार को सूरत में लिखी गई थी। आदि की पंक्तियाँ नहीं उपलब्ध है। अंत में गुरुपरंपरा वही दी गई है जो ऊपर लिखा है।

रचनाकाल— "नयन ग्रह वसुचंद्र संवत्सर (१८९२) आश्विन कृष्ण पक्षाया;
उत्तरा ने अैंद योगे भोमवार तिथीं, धनतेरस कहाया रे।

यह रचना वृजलाल के वंशज जयचन्द्र के आग्रह पर की गई।

अंत— "जो कोई पूजा अे भणसे सुणसे, तस घर मंगल थाया,
समकित भवी जीव ने उपगारे, थापना पूजा बनाया रे।"

यह रचना प्रतिमा स्थापना के अवसर पर सविधि पूजन हेतु की गई है। जैन गुर्जर कवियों के प्रथम संस्करण में इन्हें विनयविजय, दीपविजय का शिष्य बताया गया था परन्तु प्राप्त उदाहरणों के आधार पर स्पष्ट होता है कि विनयविजय के दो शिष्य दीपविजय और क्षेमविजय थे। पुष्पिका में भी क्षेमविजय को विनयविजय का शिष्य बताया गया है अत: ये निश्चय ही विनयविजय के शिष्य थे। संबंधित पंक्तियाँ प्रमाण स्वरूप उद्धृत की जा रही है—

"तस शिष्य युगल भविक विकसंता, श्री दीपविजय वृद्ध भाया,
वयरागी त्यागी मति गुणवतां, खेमविजय गुण गाया रे।"[८४]

खुसालचंद–

यह ऋषि रायचंद के शिष्य थे। इन्होंने सं० १८७९ में 'सम्यक्त्व कौमुदी चौ०'

की रचना नागौर में की। इस रचना का अपर नाम 'अर्हद्दास चरित्र' भी है। इसमें ६४ ढाल है यह सं० १७७९ वैशाख शुक्ल १३ गुरुवार नागौर में लिखित है। इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

"अरि गंजण अरिहंत जी, वर्द्धमान जिणचंद,
हरिलक्षण कंचन वरण, समर्यां परमाणंद।

रचनाकाल— 'सम्यकत अठार वरस गुणी यासी अे,
अहिपुर सहर मजारो रे,

मास वैशाख शुक्ल पख तेरस, शुभ मूरत गुरुवारो रे।'

अंत— "अहे सांभला अरदास चरित्र, समकत राख जा रुडा रे,
समकत कौमुदी ग्रंथनि शाखा, कोई मत जाणजा रुडो रे।
समकल जोत प्रकाश ग्रंथ अे, तिमिर मिथ्या मत दे टाला रे,
जे नरनारी (हीरदें) धारज्यां, फलसी मंगलमाला रे।"[८५]

आपकी एक अन्य रचना 'त्रिलोक सार भाषा' सं० १८८४ का उल्लेख क० च० कासलीवाल ने किया है।[८६] परन्तु कोई उदाहरण आदि नहीं दिया है। देसाई ने जै० गु० क० के प्रथम संस्करण में रचनाकाल भूल से चैत्र शुक्ल ३ दिया था जिसका नवीन संस्करण में परिमार्जन हो गया है।

खुस्यालचंद–

खरतरगच्छीय जयराम आप के गुरु थे। इनकी रचना 'उपदेश छत्तीसी' सं० १८३१ सवाई गॉव में रचित है। राजस्थान के जैन साहित्य में इनकी गणना १९वीं शती के प्रमुख कवियों में की गई है पर नाहटा जी ने रचना संबंधी विवरण उदाहरण नहीं दिया है।[८७]

खुशालविजय–

रचना 'नेमिनाथ चरित्र' बाला० की हस्तप्रति सं० १८५६ की प्राप्त है इसलिए रचना कुछ पूर्व की होगी। इससे संबंधित अन्य विवरण- उदाहरण नहीं उपलब्ध है।[८८]

खेमविजय–

आपकी एक रचना का विवरण प्राप्त है—नाम रचना "आषाढ़भूति चौढालियु (सं० १८३९, सोमवी अमावस्या)

आदि— "श्री जिनवदन निवासिनी समरी शारद माय,
आषाढ़भूति गुण गावतां, सामिणी करो पसाय रे।
चतुर सनेही मोहना, सब गुण जाणी सयाणा रे,
आषाढ़भूति महामुनि, देखत लोग लुभाणा रे।"

रचनाकाल— संवत अठार गुण चालिसे, दिन सोम अमावस जगीस,
कहे खेमविजय सो विचार, श्री संघ सकल जयकार।"[८९]

(गणि) गणेशरुचि–

आप तपागच्छ के साधु थे। आपने विजयधर्म सूरि के आचार्यकाल में (सं० १८०९-१८४१) सं० १८१९ से पूर्व एक रचना 'श्रीपाल रास टवार्थ अथवा बालावबोध' नाम से की। इस टब्वा का मूल ग्रंथ 'श्री पाल रास' और उसके लेखक विनयविजय के यशस्वी शिष्य यशोविजय जी थे। इस बालावबोध के गद्य का नमूना नहीं मिला। इसकी प्रति के अंत में ग्रंथ परिचय संस्कृत में दिया हुआ है—भ० विजयधर्म सूरिश्वराणामनुज्ञां प्राप्य पं० गणेश रुचि गणिना बालावबोध कृतं यत्किंचित् पूर्व लिखित दृष्टं किंचिद् गुरु गम्यात् किंचित् बुध्यनुसारात्कृत: स च बुद्धिमदभि: विबुध: संशोधनीयं बालावबोध ग्रंथा ग्रंथ श्लोक संख्या २४०० मूल रास संख्या भिन्न ज्ञेया।"[९०]

गिरिधरलाल–

आप क्षेमशाखा के विद्वान् थे। आपने सं० १८३२ में 'पदमण रासो' जोधपुर में रचा। इसकी प्रति वृहद् ज्ञान भंडार में सुरक्षित है।[९१] श्री अगरचंद नाहटा ने १९वीं शती के प्रमुख कवियों में इन्हें भी गिनाया है परन्तु इनका कोई विवरण नहीं दिया है।[९२] डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल ने पं० गिरिधारीलाल की एक रचना 'सम्मेद शिखर यात्रा वर्णन' (सं० १८९९ भाद्र कृष्ण १२) का उल्लेख ग्रंथ सूची में किया हैं।[९३] यह निश्चित नहीं हो पाया कि गिरिधरलाल और पं० गिरधारी लाल एक ही व्यक्ति है अथवा दो भिन्न-भिन्न लेखक हैं।

साध्वी गुलाबो–

आपकी एक रचना 'नेमिनाथ के पंचकल्याणक' सं० १८२५ की सूचना उत्तमचंद कोठारी ने अपनी ग्रंथ सूची में दी है, किन्तु अन्य विवरण उदाहरण उसमें नहीं है।[९४]

गुणचंद्र–

यह सूरजमल के शिष्य थे। इन्होंने सं० १८५० में एक ग्रंथ 'चंद्रगुप्त चौढालिया' की रचना बीकानेर में की।[९५] आपकी एक अन्य रचना 'धन्ना चौढालियु' (सं० १८४३ कार्तिक शुक्ल १५, बीकानेर का नामोल्लेख देसाई जी ने किया है पर उन्होंने इसका विवरण उदाहरण नहीं दिया। जैन गुर्जर कवियों में इनकी प्रथम रचना चन्द्रगुप्त चौढालियु का विवरण-उदाहरण दिया है, उसे आगे प्रस्तुत किया जा रहा है— चन्द्रगुप्त चौढालियु (५७ गाथा सं० १८५० भाद्र शुक्ल ४, बीकानेर)। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ निम्नवत् हैं—

"विमल बोध उद्योतकर, शिवसुख वल्ली मूल,
अेहवा जिन वांदू जिणें, कीया कर्म निर्मूल।
चंद्रगुप्त राजा तणो, सोले स्वप्न विचार,
सुगुरु प्रसादे हिव कहूं, श्रोता श्रुति सुखकार।"

इसकी अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

"बीकानेरे जाणीये सा०, संवत् अठारे पचासा हो;
मंगलवार संवत्सरी सा०, कीधो अेह अभ्यास हो।
मुनिवर सूरजमल्ल जी सा०, अंतेवासी तास हो;
गुणचंद कहै जिनधर्म थी, लहीये लील विलास हो।"[९६]

गुमानचंद–

आप खुशालचंद के शिष्य थे। खुशालचंद खरतरगच्छ के सन्त नगराज के शिष्य थे। आपकी एक रचना 'केशी गौतम चौढालिया' (सं० १८६७ मार्ग० शुक्ल ५, दशपुर) का उल्लेख श्री देसाई और श्री नाहटा दोनों ने किया है किन्तु दोनों विद्वानों ने अन्य विवरण-उदाहरण नहीं दिया है। नाहटा जी ने सूचना दी है कि इसकी हस्तप्रति आचार्य शाखा भंडार में सुरक्षित है।[९७]

गुलाबराय–

आपने 'शिखिर विलास' की रचना सं० १८४२ में की।[९८]

गुलाबविजय–

आप तपागच्छीय ऋद्धिविजय, भावजिय, मानविजय के शिष्य थें आपकी कृति हैं 'समेतशिखर गिरि रास' (सं० १८४६-४७ आषाढ़ कृष्ण १०, विशाला), इसकी

प्रारंभिक पंक्तियाँ—

"सांवलिया श्री पास जी, पणमी चरण जिणंद,
थुणु रास सुरतरु समो, सीखर समेत गिरींद।
महीयल में तीरथ घणा, गिणतां लहूं न पार;
ऊर्ध्व अधोमध लोक में, समेत शिखर गिरिसार।"

रचनाकाल— संवत् अठारै सै सैतालीसें, दशमी वदि असाड प्रसीधो जी।
श्री समेतशिखर गिरि रास रुयडो, नगरी विशाला में कीधो जी।"

इसमें गुरुपरंपरान्तर्गत विजयसेन, ऋद्धिविजय आदि गुरुजनों की वंदना है। इसकी अंतिम पंक्तियाँ निम्नवत् हैं—

"तसु पद पंकज भमर तणी पर गुलाबविजै गुण गायो जी,
गायो रास शिखर गिरि केरो, सुणतां अति सुख पायो जी।
रोम रोमांचित हरख धरी सब संघ सुणी मन भायो जी;
जे भवियण अ भणस्ये गुणस्ये, तस घर नवनिधि आयो जी।"[९९]

गुलाल–

गुजराती गच्छ के नगराज की परंपरा में यह पुण्यविमल के प्रशिष्य और केसर के शिष्य थे। आपने 'तेजसार कुमार चौ०' की रचना सं० १८२१ श्रावण शुक्ल ८, रविवार को नौवा में पूर्ण की। इसकी अंतिम पंक्तियों में संबंधित सूचनायें उपलब्ध हैं।

यथा— "गछ गुजराती सहु जिन जाणैं, श्री पूज्य नगराज्य बषाणै;
पंच महाव्रत ना अनुरागी, गछनायक छै सबल सौभागी।
पुन्यविमल ऋषि महामुनि राई, तेहना शिष्य केसर सुख दाई,
ज्याकी जोड कला छै भारी, तसु शिष्य गुलाल कहै सुविचारी।
संवत् अठार अने इकवीसे, श्रावण सुदि आडिम रवि दीसै,
चोपइ जोड़ी गॉव नौवा मैं, भणतां गुणता बहु सुख पामै।"[१००]

गोपीकृष्ण–

आपकी रचना 'नेमिनाथ व्याहलो (सं० १८६३ श्रावण कृष्ण ४) का प्रारंभ इन पंक्तियों से हुआ है—

"श्री जिण चरण क़मल नमो-नमो अणगार,
नेमनाथ र ढाल वणे व्याहव थहुं सुखदाय।

द्वारामती नगरी भली सोरठदेस मझार,
इन्द्रपुरी सी ऊपमा सुंदर बहु विस्तार।
चौडा नौ जोजण तिहां लांबा बाराजाण,
साठि-कोठि घर मांहि रे, बाहर थहत्तर प्रमाण।"

अंत— "राजल नेम तणो व्याहलो जी गावसी जो नरनारी,
भण गुण सुणसी भलो जी, पावसी सुख अपार।

कलश— "प्रथम सावण चोथ सुकली बार मंगलवार ए,
संवत् अठारा वरस तरेसठि माग जुल मझार ए।
श्री नेमराजल क्रसन गोपी तास चरित बखानइ,
सु तार सीखा ताहि-ताहि भाखी कही कथा प्रमाण ए।"[१०१]

गोविंददास–

आपने चौबीस गुणस्थानों की चर्चा हेतु 'चौबीस गुणस्थान चर्चा' नामक ग्रंथ की रचना सं० १८८१ फाल्गुन कृष्ण १० को की। यह कृति टोंक (राजस्थान) के टोडा रामसिंह नेमिनाथ जैन मंदिर में उपलब्ध है।

प्रारंभ— गुण छियालिस करि सहित, देव अरहंत नमामि,
नमो आठ गुणलिये, सिद्ध सब हित के स्वामी।

रचनाकाल— अठारा सै ऊपर गनूं इक्यासी और,
फागुन सुदी दसमी सुतिथि, शशिवासर सिरमौर।

दादू जी को साधु है, नाम जो गोविंद दास,
ताने यह भाषा रची, मनमांहिधारि उल्लास।

इससे स्पष्ट है कि गोविंददास दादू पंथी साधु थे और जैनेतर कवि थे।

अंत— "संस्कृत गाथा कठिन, अरथ न समझयो जाय;
ता करण गोविंद कवि, भाषा रची बनाय।"[१०२]

यह रचना मूलतः संस्कृत में रही होगी।

चतुरविजय–

तपा० जिनविजय के प्रशिष्य और नवलविजय के शिष्य थे।

रचनायें—

बीज नुं० स्तव (सं० १८७८ आषाढ़ शुक्ल १०, सिद्धपुर)

आदि— "सरस बचन रस बरसती, सरसती कला भण्डार,
बीज तणो महिमा कहुं, जिम कह्यो शास्त्र विचार।

कलश— इम वीर जिनवर सयल सुखकर, गाइयो अति उलट भरे।
आषाढ़ ऊजल दशमी दिन, सं० १८७८ तरे।
बीज महीमा अेह ब्रणव्यो रही सिद्धपुर चोमासु अे,
जे भवीक प्राणी भणे गुणे तस घर लील विलास अे।"

यह कृति 'चैत्य आदि संज्झाय भाग ३ और जैन प्राचीन पूर्वाचार्यों विरचित स्तवने संग्रह' में प्रकाशित है।

मैत्राणा मंडन ऋषभदेव जिन (उत्पत्ति नुं) स्त० (पाँच ढाल सं० १९०१ माह शुक्ल १३ मंगलवार, मैत्राणा) का

आदि— "स्वस्ति श्री वरदायका सासननायक रीद्ध,
गुज्जर देश सोहामणो पाटणवाडो परसीध।"

रचनाकाल— 'संवत् ओगणीसेसइकासमे, श्रावण मास मझार,
वदि तिथि अेकादशी, सोमवार सुखकार।'

एक बार मैत्राणा में पर्युसण के अवसर पर स्वप्न देकर चार प्रतिमायें ऋषभ, शांति, कुंथु और पद्म की भूमि खोदने पर प्रकट हुई। उनका स्थापनोत्सव हुआ। उस उत्सव का स्मरण करके कवि चतुरविजय लिखते हैं—

चार निवारक च्यारे जिनवर, प्रगट थया तत्तसखेव रे,

कलश— "ऋषभ शांति कुंथु जिनवर पदम प्रभु ने प्रणमि अे,
धन सुधन सुवास सुंदर कनक कचोले अरची अे।
दीप धूप पुफमाल बहुविध पगर पूरीईं,
श्री जिनशासन भक्ति करतां सकल संकट चूरीईं,
श्री विजय प्रभ पाट मुनिवरा जिनविजय चित ध्याइ अे,
नवलविजय जिन सेवा करता, मन वंछित फल पाइअें।"

यह रचना जैन सत्य प्रकाश सन् १९४३ में प्रकाशित है। 'कुमति निवारक

सुमति ने उपदेश स्तव' का

आदि— "सूधां मारग जिनवर भारवें, सरस्वती पडीमा जेह
ऊर्ध्व अद्धो त्रीछें लोकें दाखें, कोडी पनरसत तेहवे।
लोका भेलवीया मत भूलो।

अंत— पंडित नवल नो इणीं परे बोले चतुर कहें सुख माणो रे लो,

जैन गुर्जर कवियों के प्रथम संस्करण में मैत्राणा मंडन ऋषभ जिन स्त० का कर्त्ता नवलविजय को बताया गया था लेकिन जैसा उद्धृत पंक्तियों से स्पष्ट है ये रचनायें नवलविजय के शिष्य चतुरविजय की हैं।[१०३]

चन्द्र-

खरतरगच्छीय लेखक थे। इन्होंने 'बूढ़ा चरित्र रास' (सं० १८२६ मागसर) की रचना वृद्धविवाह जैसी सामाजिक कुरीति पर व्यंग्य करते हुए लिखा है।

आदि— "दयाज माता वीनवुं, गणधर लागूं पाय,
वर्धमान चोबीसमा बांदु सीस नमाय।
कन्या ने जमी तणो, पइसो न लीजो कोय।
बूढ़ा ने परणावतां गुण बूढारा जोय।

अंत— "संवत् १८३६ सं० आणी मृगसिर मास अे जांणी,
'चंद' परतिख देख बखाणी सुणो कलजुग री निसांणी।

इसकी भाषा पर राजस्थानी का अधिक प्रभाव दिखाई पड़ता है। जै० गु० क० प्रथम संस्करण में पहले तो इस रचना का कर्त्ता अज्ञात कवि को बताया गया था किन्तु उसी में आगे इसे चंद्र की रचना कहा गया था।[१०४] इसके नवीन संस्करण में इस कवि और रचना का उल्लेख नहीं मिला।

चंपाराम (दीवान)-

आप जयपुर राज्य के दीवान थे। इनकी रचना 'जैन चैत्य स्तव' (सं० १८८२) छोटी किन्तु महत्त्वपूर्ण है। इसमें जैन चैत्यों का स्तवन और वर्णन ही नहीं बल्कि मूर्तिपूजा का पोषण किया गया है। लगता है कि मूर्ति के प्रति कम होते विश्वास को जगाने का इसमें प्रयत्न किया गया है। यह रचना दीवान जी ने साधु आसकरन के लिए लिखी थी। इसकी प्रतिलिपि दीवान जी ने सं० १८८३ में वृन्दावन के श्री खरगराय जी से लिखवाई थी। लेखक का जिन प्रतिमा में कितना दृढ़ विश्वास है, यह अग्राङ्कित

पंक्तियों से स्पष्ट है—

महिमा श्री जिन चैत्य की श्री जिन तें अधिकाइ,
चंपाराम दीवान कूं सतगुरु दई दिखाइ।
में भाषा में कहत हौ, मन में ठानि विवेक,
ज्ञानी समझै ज्ञानतैं सगमय देषि अनेक।
श्री जिन करैं विहार नित भव जल तारण हेत,
पीछे भविक जनन कूं, विरह महा दुष देत।
श्री जिन बिंब प्रभाव जुत, वसे जिनालय नित्त;
विरह रहित सेवक सदा सेवा करैं सुचित्त।
बिन बोले खोलै हिए श्री जिनेन्द्र को ध्यान,
करै पुष्टता धर्म की सोधै सम्यक् ज्ञान।
बिन अकार ते ध्यान किमि करै भव्य मन लाइ
सिद्धन हूं ते अधिकता बिंब सु देत दिखाइ।''[१०५]

इसकी प्रति जैन सिद्धांत भवन आरा में सुरक्षित है।

आपकी दूसरी रचना 'धर्म प्रश्नोत्तर श्रावकाचार भाषा सं० १८६९ में श्रावकों के आचार का वर्णन किया गया है।[१०६]

चंद्रसागर–

भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति के प्रशिष्य एवं भट्टा० सकल कीर्ति के शिष्य थे। आपने सं० १८२३ में 'श्रीपाल चरित' की रचना सोजत में की। इसके अंत में काष्ठासंघ के रामसेन आम्नाय के भ० विद्याभूषण, चन्द्र कीर्ति और सुरेन्द्र कीर्ति आदि गुरुओं की वंदना विस्तारपूर्वक त्रोटक, चाल आदि विविध छंदो में की गई है।

आदि— ''सकल शिरोमणि जिननमूं तीर्थंकर चौबीस,
पंचकल्याणक जेहलह्या पाम्या शिवपद ईस।
वृषभसेन आदेकरि गौतम अंतिम स्वामि,
चउदसे बावन ऊपरि सद् गुरु परिणाम।

चाल— (न) व्या वेह पद कमल सोहामणुं मधुकर समते जाणि,
ब्रह्म चंद्रसागर कहे बाल ख्याल मन आणि।

व्याकर्ण तर्क पुराणन तेन्ही जाणूं भेद,

मुझ मति अल्प ज्युं कहत हुं,-कवि गुण अगम अभेद।

त्रोटक— श्रीपाल गुण ते अति घणा मुझमति अल्प अपार,
कविता जन हौंसि न कीजै, तुम्हें गुण तणी भंडार।
सोजन्या नयर सोहामणु दीसे ते मनोहार,
सासन देवी ने देहरे परतापुरे अपार।
सकलकीर्ति तिहां राजता छाजता गुण भंडार,
ब्रह्म चंद्रसागर रचना रची, तिहां कवी मनोहार।

चाल— ग्रंथ संख्या तुम्हें जाणज्यो पंचदस शत् प्रमाण,
तेह ऊपर बलि शोभता साठ वत्तीस ते जाणि।
ढाल वत्रीस ते सोभती मोहनी भवियण लोक,
सांभलता सुख ऊपजै नासै विघन औ सोक।

रचनाकाल— संवत् शत अष्टादश त्रयविंशति अवधार,
तेह दिवसा पूरण भयो, अे ग्रंथ शुभसार।
माघ मास सोहामणो धवल पख मनोहार,
त्रीज तिथि अति सोभनी शुभ तिथि रविवार।[१०७]

रचना के अंत में लिखा है "इति श्री श्रीपाल चरित्रे भट्टारक श्री सकलकीर्ति तत् शिष्य श्री ब्रह्म चन्द्रसागर विरचित श्रीपाल चरित।"

आपकी एक अन्य रचना 'पंच परमेष्ठी स्तुति' का भी उल्लेख मिलता है।

चारित्रनंदन-

आप खरतरगच्छीय जिनचंद्र के शिष्य थे। ये जिनचंद्र जिनलाभ के शिष्य थे। इनका एक गीत ऐ० जैन काव्य संग्रह में 'जिनलाभ सूरि पट्टधर जिनचंद्र सूरि गीत' शीर्षक के अन्तर्गत जिनचन्द्र की वंदना में लिखित प्राप्त है जिसका रचनाकाल सं० १८५० वैशाख कृष्ण अष्टमी है। रचनाकाल से संबंधित पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं—

"बरस अठारह पचास में जी राज, वद वैशाख मझार,
चरित्रनंदन वीनवै जी राज, आठम तिथि गुरुवार।

जिनचंद की वंदना में कवि कहता है—

"जिनचंद सूरि गुरुवंदियै जी राज, वंदियै वंदियै वंदिये जी-राज;
सहु गच्छपति सिर सेहरो जी राज, खरतरगच्छ सिणगार।"[१०८]

चारित्रनंदी–

खर० महिमातिलक; लब्धिकुमार; निधिउदय के शिष्य। इन्होंने भिन्न-भिन्न जिनागमों में से १५१ बोल का एक संग्रह 'रत्नसार्द्धशतक' नाम से किया जिसमें गुरुपरम्परान्तर्गत जिनसिंह, जिनराज, रामविजय, उपा० पद्महर्ष, वाचक सुखनंदन, वा० कनकसागर, वा० महिमातिलक की वंदना की गई है। इनकी 'पंचकल्याणक पूजा (सं० १८८९ फाल्गुन कृष्ण अष्टमी, कलकत्ता) का प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है—

पंचकल्याणक जिन तणां पूजे जे मन भाव,

अंत— "भवि जन पंचकल्याणक नमिये रे भवि,
चवन, जनम दीक्षा वर नाण, परमानंद पद पंचम जणि।"

रचनाकाल— "नंद वसु प्रवचन शशि रूप, संभव चवन दिवस दिन भूप;
भणस्ये गुणस्ये जेनर भाव, तस घर थास्यै निधि सद्भाव।

इसमें भी उपरोक्त गुरुपरम्परा बताई गई है। इन रचनाओं के अलावा 'नवपद पूजा' और '२१ प्रकारी पूजा' नामक दो पूजाओं का भी इन्हें कर्त्ता बताया गया है परन्तु उनका विवरण नहीं उपलब्ध है।[१०९]

चारित्रसुंदर–

श्री अगरचंद नाहटा ने इनका नाम चरित्रसुंदर बताया है। यह कीर्तिरत्न सूरि शाखा के कवि थे। इनकी इन एक रचना 'संप्रति चौ०' की अपूर्ण प्रति और दूसरी रचना 'स्थूलिभद्र चौ०' (सं० १८२४ अजीम गंज) की स्वयं कवि लिखित प्रति जयचंद भण्डार में उपलब्ध है। श्री नाहटा और देसाई ने इन दोनों ग्रंथो के संबंध में अन्य कोई सूचना नहीं दी।[११०]

चेतन कवि–

आपकी कृति 'अध्यात्म बारहखड़ी सं० १८५३ की प्रति जैन सिद्धांत भवन आरा में सुरक्षित है। उसका रचनाकाल इन पंक्तियों में दिया गया है—

"संवत् अठात्रेपने, सुकुल तीज गुरुवार,
जेठ मास को ज्ञान हइ, चेतन कियो विचार।"

अर्थात् यह ग्रंथ सं० १८५३, ज्येष्ठ, शुक्ल तृतीय, गुरुवार को पूर्ण हुआ था। इसकी कुछ पंक्तियाँ नमूने के तौर पर प्रस्तुत है—

"गरब ने कीजै प्राणियां, तन धन जोबन पाय,
आखिर ये चिर नां रहै, थित पूरे सब जाय।
गाढ़े रहिये धरम मैं, करम न आवै कोय,
अनहोनी होनी नहीं, होनी होय सो होय।
गिर पर चढ़ते जाय कै, जिहा तीरथ तिहां जांहि,
तेरो प्रभु तुझ पास है, पै तुझ सूझत नाहि।
गेह छोड़ बन में गये सरै न एको काम,
आसा तिसना ना मिटी, कैसे मिलिहैं राम।"[१११]

ये पंक्तियाँ कबीर की बानियों का स्मरण दिलाती है। जोहो, कवि पर निर्गुण पंथी संत साहित्य का पर्याप्त प्रभाव स्पष्ट है, यह भी अनिश्चित है कि कवि जैन है या जैनेतर।

चेतनविजय—

आप तपागच्छीय आचार्य विजयजिनेन्द्र सूरि के प्रशिष्य और ऋद्धिविजय के शिष्य थे। आपकी सीता चौपाई, जंबू स्वामी चरित और श्रीपाल रास नामक तीन रचनाओं के विवरण मिले है जिनका संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है। जंबू स्वामी चरित (सं० १८५२ श्रावण शुक्ल ३, रविवार, अजीमगंज)।

आदि— "जंबू सुनो साध आचारु, जे निग्रंथ होय अणगार।
ते चौबीस बोल मन धरे, जीव-जीव जगते भव तरे।"

गुरुपरम्परा का उल्लेख करके कवि ने ऋद्धिविजय को अपना गुरु बताकर वंदन किया है। रचनाकाल और रचनास्थान संबंधी पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

"संवत् अठारे बावने श्रावण को हे मास,
शुक्ल तीन रविवार को, पूरौ ग्रंथ विलास
बंगदेश गंगा निकट गंज अजीम पवित्र,
श्री चिंतामणि पास को, देवल रचा विचित्र।"

इसका रचनाकाल जै० गु० क० के प्रथम संस्करण में १८०५ भ्रमवश देसाई जी ने लिख दिया था। पाठभेद और अर्थ भ्रम के कारण ऐसा संभव हुआ होगा। इनकी अन्य दो कृतियाँ भी प्राप्त है जिनके रचनाकाल की संगति में विचार करने पर इसका रचनाकाल सं० १८५२ ही उचित प्रतीत होता है। आपकी पहिली रचना 'सीता चौपाई' का रचनाकाल सं० १८५१ वैशाख शुक्ल १३ अजीमगंज है और तीसरी का रचनाकाल

सं० १८५३ कार्तिक शुक्ल २, अजीमगंज है। इस दृष्टि से देखने पर बीच की दूसरी रचना जंबू चरित का रचनाकाल सं० १८५२ होना चाहिए न कि सं० १८०५। इसलिए नवीन संस्करण के संपादक श्री जयंत कोठारी ने भी इसका रचनाकाल सं० १८५२ ही दिया है।[११२]

(ऋषि) चौथमल-

इनका जन्म सं० १८०० में मंवाल गांव में हुआ था। झागड़ गोत्रीय श्री रामचन्द्र इनके पिता थे और श्रीमती गुमान बाई माता थी। इन्होंने सं० १८१० में मुनि अमीचंद से दीक्षा ली। आपने काफी साहित्य की रचना की जिसकी सूची आगे दी जा रही है। आप मरुगुर्जर के महत्त्वपूर्ण कवि थे। आपने रामायण और महाभारत जैसे बृहद् काव्य ग्रंथ रचे। रचनायें—रामायण १८६३ जोधपुर, महाभारत (ढालसागर) १६३ ढाल सं० १८५६ नागौर, श्री पाल चरित्र सं० १८६२, पीपाड़, जंबू चरित्र सं० १८६२ जोधपुर, ऋषिदत्ता (ढाल ५७, सं० १८८४ मेवाड़, सेठ की ढाल जैतारण, रहनेमी राजेमती ढाल, सं० १८६२ पीपाड़, चौदह श्रोताओं की ढाल १८५२ पीपाड़, तामली तापस चरित्र, जैतारण, जिनरिख जिनपाल च०, सेठ सुदर्शन, नंदन मणियार, मिश्र पंथि चर्चा, दयादान की चर्चा, सनत्कुमार चौढालिया, पीपाड़, दमघोष चौ० १८६२, चण्डावल स्तुति और स्फुट पद इत्यादि।[११३]

रचनाओं के नमूने के लिए एक कृति 'ऋषिदत्ता' चौ० का विवरण-उदाहरण भी दिया जा रहा है- ऋषिदत्ता चौ० (५७ ढाल, १८६४ कार्तिक शुक्ल १३ देवगढ़)।

आदि— "सासण नायक सिमरता पामीजै नवनिध,
सुभ वले पामे सासता, कारज थाये सिद्ध।
रिषदत्ता मोटी सती, पाल्यो सील उदार,
तेह तणो संबंध कहुं, सांभलज्यो नरनार।"

रचनाकाल— संवत् १८ से चौसठे, सुद काती तेरस जाणो जी,
देस मेवाड़ में देवगढ़ चावों, जितां अे ग्रंथ रचाणो जी।
ऋष चौथमल कही ढाल सत्तावन, अेरिषदत्ता अधिकारो जी,
अेकचित्त करने सुणनै सरधै, ज्यारे वरते जय जयकारी जी।"

अंत— उपदेशमाला में अे कथन चाल्यो, ग्यानी देवा धाल्यो जी।"[११४]

जगजीवन (गणि)-

आप लोकागच्छीय रूप ऋषि की परम्परा में जगरूप के शिष्य थें; आपने अनेक

स्तवन लिखे है। संभव जिन स्तव— (७ कडी सं० १८०७ आसो) का

आदि— "सकल सुरासुर सेवित शंकर किंकर जस नरराया जी।"

अंत— "संवत् अठार मुनि आसु मासे,
गणी जग-जग जीवन जयकारी संभव।"

रचनायें प्राय: छोटी हैं। दूसरा स्तव है 'मल्ली स्तव' (७ कड़ी सं० १८१४) इसकी प्रारम्भिक पंक्ति है—

"मल्ली जिणेसर साहिबा रे, सिद्ध साध्य करण जग स्वामि रे, जी।"

अंत— "सं० १८१४ समे रे लो, गुण गाया मल्लि जिणंद रे।
गणि जगजीवन गुण स्तवे रे, देव आयो अधिक आणंदरे।"

इनकी रचनाओं में भर्ती के शब्द रे, लो, जो आदि अधिक मिले है। ऋषभ स्तव (११ कड़ी सं० १८१५, आसो)।

आदि— "विमल नयर वनिता वर वदीओ।

अंत— "पोरबंदर संघ कर सोहे, गुरु भक्ति करे मान भावे;
संवत् अठार सिद्ध श्रावण मासे, जगजीवन गुण गावे।"

नेम स्तव (८ कड़ी, सं० १८२५, आसो) का

आदि— "नेमीकुंवर जिनवर गाऊं, आतमरमण पूरण पाऊं।"

अंत— "सं० १८२५ से वरसें, जिनगुण स्तव्या आसू मासे;
गणि जगजीवन उल्लासे रे, नेमि।"[११५]

जगन्नाथ–

यह कीर्तिरत्न सूरि शाखा के संत इलासुंदर के शिष्य थे। इन्होंने 'चंपकमाला चौ०' की रचना सं० १८२२ सांचौर में ४७ ढालों में की। इसकी ७० पन्नों की प्रति घेपर पुस्तकालय सुजागनढ़ में उपलब्ध है, उदाहरण अनुपलब्ध है।[११६]

जड़ाव जी–

इनका जन्म १८९८ में सेठों की रीयां में हुआ। किशोरावस्था में विधवा हो गई और चौबीस वर्ष की वय में सं० १९२२ में इन्होंने आचार्य रत्नचंद्र के संप्रदाय

की प्रमुख साध्वी रंभा जी से दीक्षा ली। सं० १९७२ में इनका स्वर्गवास हुआ। इसलिए इनका रचनाकाल बीसवी शताब्दी है। यद्यपि ये अधिक पढी लिखी नहीं थी पर कविता का इन्हें स्वाभाविक गुण प्राप्त था। इनकी रचनाओं का एक संकलन जैन स्तवनावली जयपुर से प्रकाशित है। उसमें स्तवन, कथा उपदेश आदि संकलित हैं। सुमति कुमति चौढालिया, अनाथी मुनि री सतढालियों, जंबू स्वामी की सतढालियों आदि आपकी रचनायें है जिनका विवरण देना २०वीं शती में उपर्युक्त होगा। चूंकि इनका जन्म १९वीं शती में हो गया था इसलिए उल्लेख कर दिया गया है।[११७]

जयकर्ण–

इन्होंने सं० १८१२ में 'चौबीस जिन स्तवन' की रचना सारसा में की।[११८]

जयचंद–

ये खरतरगच्छीय कपूरचंद के शिष्य थे। इन्होंने 'प्रतिमारास' नामक एक प्रतिमापूजन संबंधी रचना सं० १८७८ में ३ ढालों में आगोढाई में लिखी। इनकी एक अन्य रचना 'संवेगी मुखपटाचर्चा, मुखपत्ती पर आधारित शुद्ध सांप्रदायिक है। प्रतिमारास सं० १८७८ भाद्र कृष्ण २ आगोढाई में लिखित का उदाहरण नहीं मिला यद्यपि इसका उल्लेख नाहटा और देसाई दोनों ने किया है।[११९]

जयचंद छावड़ा–

श्री नाथूराम प्रेमी इन्हें १९वीं शताब्दि के लेखकों में द्वितीय स्थान का अधिकारी विद्वान् बताते है।[१२०] आप जयपुर निवासी छावड़ा गोत्रीय खंडेलवाल वैश्य थे। इनके ग्रंथों की लंबी सूची प्रेमी जी के कथन को पुष्ट करती है। इन्होंने अधिकतर वचनिकाये लिखी हैं। सर्वार्थ सिद्धि १८६१, परीक्षा मुख (नाट्यशास्त्र) १८६३, द्रव्यसंग्रह १८६३, स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षा १८६६, आत्मख्याति समयसार १८६४, देवागम न्याय १८८६, अष्टपाहुड़ १८६७, ज्ञानार्णव १८६९, भक्तामर चरित्र वच० १८७०, सामायिक पाठ वच०, चन्द्रप्रभ काव्य द्वितीय सर्ग का न्याय माग, मत समुच्चय (न्याय), पत्र परीक्षा (न्याय)। ये सभी वचनिकाये संस्कृत और प्राकृत के कठिन ग्रंथों की हैं। इनमें से पाँच तो न्याय विषयक हैं।[१२१] अन्य तत्त्वचिंतन संबंधी ग्रंथों की वचनिकायें हैं। केवल भक्तामर चरित्र कथा ग्रंथ है जिसका विवरण उदाहरण आगे दिया जा रहा है। भक्तामर स्तोत्र भाषा १८७० कार्तिक कृष्ण १२ का।

आदि— "अमर मुकुट मणि उद्योत, दुरित हरण जिन चरणह ज्योत।
नमहु त्रिविध युग आदि अपार, भव जल निधि परु तह आधार।"

अंत— "भक्तामर की भाषा भली, जानिपयो विचि सत्ता मिली,
मन समाध जपि करहि विचार, ते नर होत जय श्री सार।"[१२२]

इन्होने द्रव्य संग्रह का पद्यानुवाद भी किया था। सं० १८५९ में लिखित तत्त्वार्थ का पद्यानुवाद भी किया था। सं० १८५९ मे लिखित तत्त्वार्थ सूत्र वचनिका इनकी प्रथम वचनिका है। इनके अलावा 'प्रमेय रत्नमाला वचनिका, धन्यकुमार चरित वचनिका आदि इनकी अनेक गद्य रचनायें उपलब्ध है जिनके आधार पर इन्हें १९वीं शती का श्रेष्ठ गद्य लेखक मानना उचित है।

गद्य के अलावा आपने पद्य में अनेक विनतियाँ और गेय पद रचे हैं। इस प्रकार ये गद्य और पद्य दोनों विधाओं में रचना करने में कुशल थे तथा जैन तत्वदर्शन के पारंगत विद्वान् थे।

इनकी एक पद्य वद्ध चिट्ठी प्रेमी जी ने प्रकाशित की है। यह चिट्ठी सं० १८७० की है। कामता प्र० जैन ने उस चिट्ठी का लेखक छाबड़ा जी को बताया है किन्तु वह उद्धरण और अन्तर्साक्ष्य के आधार पर वृंदावन की प्रतीत होती है।

"जैसे वृंदावन मांहि नारायन केलिकरी,
तैसे वृंदावन मित्र केरे है बनारसी।
वंशरीति रागरंग ताल-ताल आये गये,
मानठान आनि-आनि धरेगा बनारसी।"

इससे तो यह पत्र वृंदावन द्वारा बनारसी को लिखा प्रतीत होता है न कि छाबड़ा का लिखा लगता है।[१२३]

पंडित टोडरमल के पश्चात् गद्य के प्रमुख लेखकों में छाबड़ा निस्संदेह श्रेष्ठ गद्य लेखक हैं; इनके गद्य का नमूना देखिये—

"जैसे इस लोक विषै सुवर्ण अरु रूपा कू गालि एक किये एक पिण्ड का व्यवहार होय है तैसे आत्मा के अर शरीर के परस्पर एक क्षेत्र की अवस्था ही ते एकपणा का व्यवहार है। ऐसे व्यवहार मात्र ही करि आत्मा अर शरीर का एकपणा है। बहुरि निश्चय तै एकपणा नाती हैं जात पीला अर पांडुर है स्वभाव जिनिका ऐसा सुवर्ण अर रुया है तिनकै जैसे निश्चय विचारिये तब अत्यन्त मित्रपणा करि एक-एक पदार्थपणा की अनुपपत्ति है। तातै नानापणा ही है।"[१२४] आपकी गद्य भाषा पर ढूढारी (राजस्थानी) का प्रभाव अधिक है। आपकी अनेक रचनाओं का वर्णन डॉ० कासलीवाल ने ग्रंथ सूची भाग ४ और ५ में किया है। जैसे भाग ४ में सर्वार्थ सिद्धि भाषा १८६१ चैत्र सुदी ५, अष्टपाहुड़ भाषा

१८६७ भाद्र शुक्ल १३, कार्तिकेयानुप्रेक्षा भाषा १८६३ श्रावण कृष्ण ३, समयसार भाषा १८६४ कार्तिक कृष्ण १०, आदि के अलावा पद संग्रह (लगभग २०० पद) सं० १८७४ आषाढ़ शुक्ल १० का भी उल्लेख हैं। ग्रंथ सूची ५ में (भक्तामर) स्तोत्र भाषा १८७० कार्तिक कृष्ण १२, परीक्षामुख १८६० इत्यादि।[१२५]

जयमल्ल–

सं० १७६६ में इनका जन्म हुआ था। लांबिया ग्रामवासी समदडिया मोहता मोहणदास इनके पिता थे और मेहमादे इनकी माँ थी। विद्याध्ययनोपरांत इनका विवाह हुआ। मेड़ता में इन्हें भूधर ऋषि का दर्शन मिला और उनके उपदेश से प्रभावित होकर २२ वर्ष की वय में सं० १७८८ में इन्होंने दीक्षा ले ली। दीक्षा के पश्चात् इन्होंने जैन सिद्धान्तों का गहन अध्ययन किया। सोलह वर्ष तक एकांतर तप किया, तत्पश्चात् ग्यारह वर्ष पर्यंत गुरु के साथ जोधपुर, जयपुर, दिल्ली, आगरा, फतहपुर आदि स्थानों में विहार करते रहे। सं० १८४० में आप नागौर आये और कुछ काल पश्चात् बीमार पड़े तथा सं० १८५३ में शरीर त्याग किया। कहा जाता है कि अपने गुरु के स्वर्गवास के पश्चात् पचास वर्ष ये लेट कर नहीं सोये। सं० १८०२ से लेकर १८२७ के बीच की लिखी इनकी अनेक स्तुति, संज्झाय, पचीसी, बत्तीसी, छत्तीसी, चरित्र, संवाद आदि—७१ रचनाओं का संग्रह 'जयवाणी' शीर्षक से ज्ञानपीठ आगरा ने प्रकाशित किया है। इनकी कुछ रचनाओं की सूची अग्रलिखित है—सुबाहु कुमार रास सं० १८०२, आठढाल, विलाड़ा, नेमिनाथ चौ० ढाल ३३, गाथा १०४७, धर्म महिमा सं० १८०५, साधुवंदना सं० १८०७ जालौर; परदेशी चौ० १८०७, ३१ ढाल, खंधक ऋषि चौ० सं० १८११ लाडनूं, बीस विहरमान स्तवन सं० १८२४ मेड़ता, देवदत्ता चौ० १८२५, नागौर, तेतलीपुत्र चौ० सं० १८२५ नागौर, शब्दालपुत्र चौ० १८२५, नागौर; अर्जुनमाली चौ० १८२७, मृगलोढ़ा अधिकार सं० १८१२; अयवंति सुकमाल चौढालिया सं० १८२५ नागौर, नेमिस्तवन १८४४; इत्यादि। इनके, अलावा मृग पुरोहित छह ढालिया, देवकी चौ०, उदयराज चौ०, मेघकुमार चौ०, कार्तिक सेठ, सती द्रौपदी, महाशतक श्रावक, अम्बड चौढालिया, दरिद्र लक्ष्मी संवाद, मूर्ख पच्चीसी, नींद पच्चीसी, पर्यटन सप्तविंशिका, उपदेश तीसी, उपदेश बत्तीसी, वैराग्य बत्तीसी, बाल प्रतिबोध चौतीसी, पुण्य छत्तीसी, आत्मिक छत्तीसी, जीवा बयालिसी और चारमंगल सिद्धांत बावनी आदि रचनायें जयवाणी में संकलित रचनायें हैं।[१२६] इनके संबंध में विवरण 'जयवाणी' में उपलब्ध है। अत: यहाँ विस्तारभय से नहीं दे रहा हूँ।

ढालसंग्रह नाम से इनकी तीन रचनाओं—परदेशी नी ढाल, मृगा लोढ़ा चरित्र और सुबाहुचरित्र—की एक प्रति जैन संभवनाथ मंदिर, उदयपुर में रखी है। इसमें परदेशी

नी ढाल का रचनाकाल डॉ० कासलीवाल ने सं० १८७७ दिया है जो अशुद्ध है क्योंकि जयमल्ल जी का सं० १८५३ में ही स्वर्गवास हो चुका था। रचनाकाल संबंधी पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

संवत अठारे सै सत्तोत्तरे रे बुद तेरस मास अषाढ़,
सिंध प्रदेशी राय नी एक हीय सूत्र थी काढो रे।
पुज धना जी प्रसाद थी रे, तत् शिल भूधर दास,
तास सीस जेमल कहै रे, छोड़े सलार नायसो रे।

इसमें रचनाकाल 'सत्तोत्तरे' का अर्थ ७७ नही बल्कि ०७ होना चाहिये अर्थात् रचनाकाल १८०७ है। यही समय नाहटा जी ने भी लिखा है। डॉ० क० च० कासलीवाल की ग्रंथ सूचियों में पाठ, रचना तिथि आदि कई जगह भ्रामक और अशुद्ध हैं। मृगलोढ़ा ढाल का समय १८१५ दिया गया है परंतु नाहटा ने सं० १८१२ बताया है और दोनों विद्वानों ने रचनाकाल निश्चित करने के लिए कोई अन्तर्साक्ष्य या बाह्यसाक्ष्य नहीं दिया है।[१२७]

नेमिनाथ के काव्योपयुक्त सरस व्यक्तित्व पर आधारित रचना 'नेमचरित्र' का रचनाकाल उत्तमचंद कोठारी ने अपनी सूची में सं० १८७४ दिया है; यह भी अशुद्ध है क्योंकि कवि ने मरणोपरांत तो रचना नहीं की होगी।[१२८]

आपके रचनाओं का विपुल परिमाण और उनकी विविधता से आपके गहन अध्ययन और रचना शक्ति का अनुमान किया जा सकता है। आपने न केवल नाना विषयों को अपनी रचनाओं का विषय बनाया अपितु नाना काव्य रूपों में उन्हें अभिव्यक्त किया। इसलिए विषय, व्यंजना, विविधता और तत्वदर्शन आदि अनेक दृष्टियों से विचार करने पर आचार्य जयमल जी १९वीं शताब्दी के महान विद्वान साधक और लेखक सिद्ध होते हैं। इनकी भाषा शैली अन्य जैन लेखकों की तरह रूढ़ मरुगुर्जर ही कही जायेगी, यद्यपि १९वीं शती तक आते-आते प्रादेशिक भाषाओं का पर्याप्त विकास हो चुका था पर कविजन तब भी प्राचीन परिपाटी से पुरानी भाषा शैली में ही लिखते रहे। हिन्दी मे भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद ब्रज भाषा के स्थान पर खड़ी बोली हिन्दी का काव्य में प्रयोग करने के लिए एक प्रबल आंदोलन हुआ था और अनेक पुराने खेवे के कवियों ने प्राचीन भाषा शैली का ही पक्ष लिया था। अत: यह स्वाभाविक रीति थी जिस पर अन्य जैन कवियों की तरह १९वीं शती के अग्रगण्य कवि जयमल्ल ने भी विपुल साहित्य का सृजन किया।

जयरंग–

आप नयनचंद्र के शिष्य थे। सं० १८७२ में इन्होंने लखनऊ में 'मृग प्रोहित चौ०' की रचना २३ ढालों में की। इसकी प्रति नाहटा संग्रह में है।[१२९] श्री देसाई ने

इनकी गुरु परम्परा बताते हुए खरतरगच्छ के प्रसिद्ध आचार्य जिनचन्द्र सूरि से प्रारम्भ करके क्षमासमुद्र > भावकीर्ति > रत्नकुशल > लालचंद के शिष्य नयनचंद को इनका गुरु बताया है। 'मृग प्रोहित चौ०' का विवरण—उद्धरण आगे प्रस्तुत है—मृग प्रोहित चौ० (२३ ढाल, सं० १८७२, मधुमास कृष्ण नवमी, लखनऊ) का आदि—

वर्धमान जिनवर चरण, नमुं सदा चितलाय,
श्रुत देवी मन धारकै, गुरु कूं सीस नमाय।
X X X X X
उत्तराध्ययन नैं जिम कह्यो, चौदम अध्ययन जांण;
मृगु पिरोहित संजम लीयो, तेह कहूं गुण खांण।

रचनाकाल— संवत अठारे वहोत्तर जाणो, मधुमास तु बषाणो जी;
कृष्णपक्ष छे अतिसुखदाई, नौमी तिथि वरदाई जी।
ढाल कही तेतीसवीं मन लाई, वांचेज्यो मन भाई जी।
पंडितजन अेने सुध करज्यो, मुझ पर महर धरज्यो जी।
X X X X X X
कहइ जयरंग मन वचन काया यें, मिच्छामी दुक्कड़ थासी जी,
आतम निरमल मुझ हिस थासी, पाप तिम सहु जासी जी।

यह रचना अगरमल्ल के पुत्र मनुलाल की प्रेरणा से की गई थी। इसकी अंतिम पंक्तियाँ निम्नांकित है—

तास प्रेरणा सुं मे कीधी, चोपी रंग रस भीनीजी,
श्री जिनधर्म पसायें लहस्यां ऋद्ध समृद्ध में रहस्या जी।[१३०]

जयसागर–

तपागच्छ के न्यायसागर आपके गुरु थे। इन्होंने सं० १८०१ में 'तीर्थमाला' की रचना की। विवरण निम्नवत् है—

तीर्थमाला (५५ कड़ी सं० १८०१ आषाढ़ कृष्ण पंचमी, बुधवार, अहमदाबाद।

आदि— सरस्वती मात नमी कहूं, मुझ मुख करो निवास,
तीरथ ना गुण गायवा, देयो वचन विलास।

गुरु— न्यायसागर प्रभु मुझ गुरु, गुरु गुण नो भंडार,
जय कहे चरणकमल नमी, कर सुं तीरथमल।

रचनाकाल— संवत अठार अेक मां, रही राजनगर चोमास,
जमालपुर ना पाडा माँ मुझ ऊपनो हरष उलास।
कृष्णपक्षे आषाढ़ नो बलि पंचम ने बुधवार,
तीरथमाल पूरी करी पामेंवा भव नो पार।
तपगच्छ मांहि शिरोमणि श्री न्यायसागर गुरुराज,
चरण सेवी जय इम भणे, मुझ सीधा वंछित काज।
भवियण तीरथमाला तुम करो।[१३१]

इसके कलश में भी इन्ही सूचनाओं को दुहराया गया है इसलिए उसे नहीं दिया जा रहा है। यह रचना 'जैनयुग' (आषाढ-श्रावण सं० १९८५) में चतुरविजय द्वारा संपादित होकर प्रकाशित हो चुकी है।

जिनकीर्ति सूरि–

आप खरतरगच्छ के संत जिनविजय सूरि के शिष्य थे। आपके पिता शाह उग्रसेन मारवाड़ निवासी खीवसरा गोत्रीय वैश्य थे। इनकी माता का नाम उच्छरंग देवी था। इनका जन्म सं० १७७२ वैशाख शुक्ल सप्तमी को फलवर्धी में हुआ था। इनका मूलनाम किशनचंद था। सं० १७९७ में इन्हें जैसलमेर में भट्टारक पद पर प्रतिष्ठित किया गया था। इन्होंने अनेक स्थानों में विहार किया, उपदेश-प्रवचन किया और साहित्य सृजन किया। सं० १८१९ में आपका विक्रमपुर में स्वर्गवास हुआ। आपकी रचना 'चौबीसी' (सं० १८०८ फाल्गुन १०, बीकानेर) का आदि—

साहिब नै भेटियौ, तब अैसों मुझ नेह,
मीजा माहरी मन तणी, तिहां जाय लागा नेह।

रचनाकाल— संवत् वसु शिव शशी, तिथि इग्यारस अधिकाई,
चित हरषित, फाल्गुण चौमासे, गुणीयण हिलमिल गाई रे।

गुरुपरम्परा— श्री जिनसागर सूरि पटोधर, श्री जिनधम्म सहाई,
श्री जिनचन्द्र सूरि सूरीश्वर, श्री जिनविजय सवाई रे।
पदपंकज तेहने परसादे या उत्तम मति आई,
श्री जिन की रति जिनगुण जपतां सफल भइ कविताई रे।
सुख कारण जिनवरनी स्तवना चौबीसी स्तवन चौबीसी चितलाई,
अधिक विनोद घणें आणंदे, चतुर नरां चतुराई रे।

यह स्तवन जैन गुर्जर साहित्य रत्न भाग दो में प्रकाशित है। आपकी दूसरी

प्राप्त रचना है—पार्श्वनाथ वृद्ध स्तवन (ढाल ४)।

आदि— सखी लोद्रपुरो सलेयामणो, चालो-चालो हो जाय भेटां जिणंद की,
तीरथ अे तिहुअण तिलो, मुझ दीठा हो ऊपजे आणंद कि।

अंत कलश— इम लोद्रपुर वर महीय मंडण, जगन्न सुखदायक जयो;
प्रभु दरस परसण शुद्धि समकित अधिक मति उज्वल भयो।
जिनविजय सूरि सुसीस युगते जोड़ि जिनकीरति कहै;
श्री पास चिंतामणि पसायै, लाभ मनवंछित लहै।[१३२]

जिनचंद सूरि–

खरतरगच्छीय जिनलाभ सूरि के शिष्य थे। इनके पिता का नाम रुपचन्द और माता का केसर दे था। आपका परिवार वच्छावत मुहतां गोत्र का था। आपका जन्म कल्याण सार ग्राम (बीकानेर) में सं० १८०९ में हुआ था। आपका मूलनाम अनूपचंद था। आपकी दीक्षा मंडोवर में उत्साह पूर्वक सं० १८२२ में संपन्न हुई थी। आपका दीक्षोपरांत 'उदयसार' नाम पड़ा था। आपको सं० १८३४ में गूढ़ा में सूरि पट्ट पर प्रतिष्ठित किया गया। आपकी मृत्यु सं० १८५६ ज्येष्ठ शुक्ल तृतीया को सूरत में हुई।[१३३] आपकी रचना- 'जिनबिंब' स्थापना अथवा पूजा स्त० कई स्थानों से प्रकाशित है। यह संज्झायमाला और चैत्यवंदन स्तुति स्तवनादि संग्रह, भाग २ में प्रकाशित है।[१३४]

जिनदास गोधा–

आपकी एक रचना 'सुगुरु शतक' का विषय है सुभाषितों में सदुपदेश; हिन्दी पद्य में यह रचना सं० १८५२ चैत्र कृष्ण अष्टमी को पूर्ण की गई थी।[१३५]

जिनदास गंगवाल–

आपने 'आराधनासार टीका' की रचना सं० १८३० से कुछ पूर्व की क्योंकि प्राप्त प्रति का लेखन काल १८३० चैत्र शुक्ल १ बताया गया है। प्रति जैन मंदिर दबनाला, बूंदी में सुरक्षित है। इसका विषय आचार शास्त्र है।[१३६] यह भी बहुत निश्चित नहीं है कि जिनदास गोधा और जिनदास गंगवाल एक ही व्यक्ति हैं अथवा भिन्न-भिन्न हैं।

जिनलाभ सूरि–

आपका जन्म सं० १७८४ में बीकानेर निवासी साह पंचायन दास की पत्नी पद्मा देवी की कुक्षि से बायेऊ गॉव में हुआ था। आपका जन्म नाम लालचंद था। सं०

१७९६ में दीक्षा और नाम लक्ष्मीलाभ रखा गया। सं० १८०४ में आपको आचार्य पद पर माण्डवी में प्रतिष्ठित किया गया। आप अच्छे विद्वान और कवि थे। आपने आबू, राणकपुर, वरकाणा, लोद्रवा, जैसलमेर और शंखेसर आदि तीर्थों के स्तवन के अलावा सूरत के सहस्त्र फणा और शीतलनाथ आदि की प्रतिष्ठा का स्तवन तथा पार्श्वस्तवन सं० १८१८, नवपदस्तवन, दादाजीस्तवन और दो चौबीसियाँ लिखी हैं।[१३७] नवपद स्तव का अपरनाम सिद्धचक्रस्तव है और यह प्रकाशित है। वरकाणा स्तव (१८२१ सं०, चैत्र, शुक्ल १५) यह सूरत नो जैन इतिहास में प्रकाशित है। इनकी चौबीसी का आदि इस प्रकार है—

ऋषभ पद— ऋषभ जिणंद सुखकंद आनंद भरि, भेट्यो श्री ऋषभ जिणंद,
विक्रमपुर मंडन दुखखंडन, छंडन भव-भय छंद।
शिवसंपति कारन जगतारन, वंदिर सुरनर वृंद,
मिथ्या मोहत मोहनी वारन अद्भुत ज्योति दिनंद।
भविक कुमुद परमोद प्रकाशन शरद पूनिम निस चंद,
चरण कमल सेवत मधुकर सम, श्री जिनलाभ सुरिंद।

अंतिम पंक्ति—श्री जिनलाभ अहोनिस सांची अेहिज मो मन टेवा री।

यह ११५१ स्तवन मंजूषा में प्रकाशित है।[१३८]

आपकी एक अन्य रचना चिंतामणिस्तवन (७ कड़ी राग काफी) का प्रारंभ इन पंक्तियों से हुआ है—

जिनमंदिर जयकार अइसइ खेलियइ होरी,
कुमति कवाग्रह सरियइ आतमहित चित धारियइ।

वीर स्तवन (११ कड़ी सं० १८२८ फाल्गुन शुक्ल ८, सोमवार) का आदि—
कर जोड़ी वीनति करूं साहिब जी,
सांभलि सुगुण समंद हो जिनवर जी,
दरस मुझ दीजियइ साहब जी।

चावउ चरम जिनेसरू साठ, नायक त्रिशलानंद हो, जि०

रचनाकाल— रस दृग वसु प्रथिवी समइ सा०, फागुण मास उदार हो,
सुदि आठम शशिवासरे सा पुहचउ मुझ मन वास हो, जि०
श्री जिनलाभ सुरीश की सा०, अे उत्तम अरदास हो, जि०।[१३९]

जिन सौभाग्य सूरि–

खरतरगच्छ के आचार्य और कवि, आपने 'समेत शिखर स्तव, सं० १८९५ माघ कृष्ण १३ और नवपद स्तव, सं० १८९५ आषाढ़ शुक्ल १५, बालूचर तथा १४ पूर्व स्तव, सं० १८९६ बालूचर में लिखा। इन रचनाओं के उद्धरण नहीं मिल पाये।[१४०]

जिनहर्षसूरि–

आप खरतरगच्छ के जिनचंद्र सूरि के पट्टधर थे। आपको सूरिपद सं० १८५६ में मिला था; इन्होंने विंशति स्थानक पूजा सं० १८७८ (५८१) (भाद्र शुक्ल ५, रवि, अजीमगंज, बालूचर में) पूर्ण की। रचना का आदि—

> सुख संपति दायक सदा, जगनायक जिनचंद।
> विघन हरण मंगलकरण, नमो नाभि नृपचंद॥
>
> लोकालोक प्रकाशिका जिनवाणी चित्तधार,
> विंशति पद पूजन तणो, कहिस्यु विधि विस्तार।

इसमें विंशति पद पूजन की विधि का वर्णन किया गया है, पद पूजा का महत्त्व बताते हुए सूरि जी कहते हैं—

> जिनवर अंगे भाखिया, जप तप बहु प्रकार;
> विंशति पद तप सारिखां, अवर न कोई उदार।
> दान शील तप जप क्रिया, भाव बिना फलहीन,
> जैसे भोजन लवण बिन, नहीं सरस गुणपीन,

गुरुपरम्परा का वर्णन करते हुए कवि ने जिनलाभ सूरि और जिनचंद्र सूरि का वंदन किया है। रचनाकाल संबंधित पंक्तियाँ आगे उद्धृत की जा रही है—

> इह वरस चन्द्र दिनें (पेन्द्र) हरि (२१) मुख विधिनयन स्थिति मितिधरू,
> तिहमास भाद्रव धवल दस तिथ पंचमी रविवासरू।
> बंगाल जनपद जिहां विराजत शिखर तीरथ गिरिवरू,
> सहु नगर सोभित अजीमगंज पुर दुतीय बालूचर पुरूं।

यह रचनाकाल भ्रामक है। यह रचना जिनहर्ष सूरि की है अर्थात् रचना सूरिपद प्रतिष्ठा सं० १८५६ के बाद की है। हरिमुख का अर्थ सात और हरमुख का अर्थ पॉच समझने के कारण बीस वर्ष का अंतर आ जाता है अर्थात् १८७८

या १८५८ हो सकता है क्योंकि चन्द्र बराबर १ और विधिनयन बराबर आठ तो निश्चित है। रचना स्थान भी अजीमगंज और बालूचर दोनों दिया है। इसलिए इसका एकदम सही रचनाकाल और रचना स्थान अर्न्तसाक्ष्य और प्राप्त उद्धरण के आधार पर निश्चित करना नामुमकिन है।

कलश— अे बीस थानक भुवनवंदन अघ निकंदन जानीये,
बिवुधेन्द्र चन्द्र नरेन्द्र वंदि॥ पद जिनेन्द्र बषाणिये।
अे बीस पद भवजलधि तारण, तरण गुण पहिचानिये,
इम जान भविजन कुशल कारण बीस पदं उर आनीये।

अंत— गणधार श्री जिनहर्ष सूरी हर्ष धरी धन अघ हरी,
या बीस पद की विविध पूजन विधि तणी रचना करी।[१४१]

जिनेन्द्र भूषण–

आप दिगंबर भट्टा० सुरेन्द्रभूषण के शिष्य थे। आपने 'चन्द्र प्रभ पुराण भाषा' की रचना सं० १८४१, इटावा में की। इसके आदि और अंत और अन्य संबंधित पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं—

आदि— चिदानंद भगवान सब शिव सुख के दातार,
श्री चंद्रप्रभ नाम है, तिन पुराण सुखसार।

अंतिम पंक्तियों में गुरुपरम्परा विस्तार से दी गई है यथा—

मूलसंघ है मै सरस्वति गच्छज्यूं,
बलात्कारगण कह्यो महाराज परतच्छ ज्यूं।
आमनाय कहै बीच कुंद-कुंद ज्यूं,
कुंद-कुंद मुनिराज ज्ञानवर आपज्यूं।

भट्टारक गुनकार जयतभूषण भये----इत्यादि। आगे विश्वभूषण, देवेन्द्र भूषण और सुरेन्द्र भूषण की वंदना है, यथा—

तिनके पद उद्धार देवेन्द्र भूषण कहे,
सुरेन्द्रभूषण मुनिराज भट्टारक पद कहे।
जिनेन्द्रभूषण लघु शिष्य बुद्धिवर हीन ज्यूं,
कह्यों पुराण सुज्ञान पूरण पद जान ज्यूं।

रचनाकाल और स्थान—

संवत ठारासै इकतालीस साभले, सावन मास पवित्र पाप भक्तिको गलैं।
सुदि है द्वैज पुनीत चन्द्र रविवार हैं, पुरण पुन्य पुराण महासुखदाई है।
शहर इटावौ भलो तहां बैठक भई, श्रावक गुन संजुक्त बुद्धि पूरन लई।''

इसकी भाषा शैली और रचनावन्ध का उदाहरण देने के लिए एक छंद और प्रस्तुत है—

सब रितु के फल ले आया, तिन भेंट करी सुखदायी,
राजा सुनि मनि हरलावै तव आनंद भेरि बजावै।
सब नगर नारि नर आये, वंदन चाले सुख पाये,
चन्द्री सब परिजन लेई, जिनवर चरनन चित देई।[१४२]

प्रति के अंत में लिखा है-

इति श्री हर्षसागरस्याबज भट्टारक जिनेन्द्रभूषण विरचितै
चन्द्रप्रभ पुराणे चन्द्रप्रभु स्वामी निर्वाण गमनो नाम षष्टम् सर्गः।

जिनोदयसूरि-

आप खरतरगच्छीय जिनतिलक सूरि के शिष्य थे। आपने 'चतुरखण्ड चौपाई' की रचना की है जिसमें हंसराज वच्छराज की कथा का पद्यबद्ध वर्णन है। गुरू परंपरा से संबंधित पंक्तियाँ-

तसु पाटैं महिमानिलो रे,
श्री जिनतिलक सूरि पसाय मोटा-मोटा भूपति रे,
प्रण में तेहना पाय।

एह प्रबंध सुहामणो रे, कहै श्री जिनोदय सूरि,
भणौं गुणौं श्रवणें सुणौ रे, तस घर आनंद पूरि।

इसकी प्रारंभिक पंक्तियां इस प्रकार है—

आदीश्वर आदै करी चौबीसो जिणचंद,
सरसति मन समरौं सदा श्री जयतिलक सुरिंद।
पुन्यें उत्तम कुल हुवै, पुन्यें रूप प्रधान,
पुन्यें पूरो आउषो, पुन्यें बुद्धि निधान।

पुण्य उपर सुणज्यो कथा सुणता अचिरज थाइ।
हंसराज बछराज नृप, हुआ पुन्य पसाइ।[१४३]

इसकी भाषा गुर्जर प्रधान मरुगुर्जर है। कथा का लालित्य है पर काव्य लालित्य ढूढ़ना पडता है।

जीतमल I –

आप अमरसिंह जी म० की परंपराके प्रभावशाली आचार्य थे। इनका जन्म सं० १८२६ में सुजानमल की पत्नी सुभद्रा देवी की कुक्षि से रामपुरा (कोटा) में हुआ था। आपने सं० १८३४ में दीक्षा ली और विद्याभ्यास किया। आप कवि और चित्रकार के साथ ही सुंदर और निपुण लिपिकर्ता थे। आप हाथ (दोनों) और पैरों से भी लिखते थे। कहा जाता है कि इन्होंने तेरह हजार ग्रंथों की लिपि की थी। अढ़ाईद्वीप,मासनाडो, स्वर्ग, नरक, परदेशी राजा का स्वर्गीय दृश्य आदि चित्र आपकी बारीक चित्रकला के सुंदर नमूने हैं। 'अणविधियांमोती' इनकी कविताओं का सुंदर संग्रह है जिसका संपादन देवेन्द्र मुनि शास्त्री ने किया है।

जीतमल II –

यह तेरापंथी भीषम जी > भारीमल्ल जी > रायचंद के शिष्य थे। इनका जन्म सं० १८६० में और मृत्यु सं० १९३८ में जयपुर मे हुई। आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने के बाद जयाचार्य आपका नाम हो गया था, आपकी रचना 'चौबीसी, (१९००सं०, आसो कृष्ण ४) का आदि—

बलि प्रणमुं गुणवंत गुरू, भिक्षु भरत मझार,
दान दया न्याय झाण ने, लीधो मारग सार।

गुरूपरंपरा— भारोमल पट झलकता, तीजे पट ऋषि राय,
प्रणमुं मन वस काय करी पांचू अंग नमाय।
ईस सिद्ध साधु प्रणमी करी, ऋषभादिक चौबीस,
स्तवन करूं प्रमोद करी, जय जशकर जगदीस।

इसके अंत में महावीर का स्तवन है। यथा—

चरम जिनेन्द्र चौबीसमा जिन अघ हणवा महावीर,
निकट तप वरध्यान कर प्रभु, पाया भवजल तीर।

रचनाकाल— इम बहुजन नारिया रे प्रणमूं चरम जिनेन्द्र,
उगणीसै आसो ज चौथ बदी, हुओ अधिक आनंद।[१४४]

आपने भगवतीसूत्र ढालबंध उत्तराध्ययनसूत्र ढालबंध, दशवैकालिक सूत्र ढालबंध, प्रश्नोत्तर तत्त्वबोध, भिक्षुजस रसायन (प्रकाशित), हेमनवरसा, दीपजस, जयजस और श्रावकाराधना इत्यादि अनेक ग्रंथ रचे हैं किन्तु अधिकतर रचनायें बीसवी शती की है इसलिए इस ग्रंथ की सीमा से परे हैं और उनका विवरण-उद्धरण नहीं दिया जा रहा है।

जीव जी–

आपकी एक रचना 'मयणरेहारास' की हस्तप्रति सं० १९०४ की प्राप्त है। अत: यह रचना १९ वीं वि० के अंतिम चरण की होगी, ऐसा अनुमान करके यहाँ इसका उल्लेख किया जा रहा है-

आदि— जोवो मांस दारू थकी, करे वेश्या सो जोख,
जीवहिंसा चोरी करै, परनारी रे दोष (सप्रव्यसन)

अंत— विसन सात को परनारी रे, जीवघात धर हांणी,
मणारथ राजा नरकें पोहतो, कुजस बांध नै प्राणी।
X X X X X X
विषयारस तो विषम जाणीनै, सद्गुरू सेवा कीजै,
मणारथ राजा नी बात सुणीनै, परनारी संग न कीजै।
दान सील तप संजम पालों, दोषण सगला टालौ,
दयाधरम री समता आणो, दूर करो आचारो।
जपतप संजम पालो रे भाई विषय विकार गमाई,
जीवजी केतो महासुखपाई, वीर वचन मनलाई।[१४५]

ऋषि जेमल (लोकागच्छ)–

आपने सं० १८०७ में 'साधुवंदना' नामक कृति की रचना (१११ कड़ी में) जालौर में किया।

आदि— नमुं अनंत चौबीसी, रिषभादिक महावीर;
आर्य क्षेत्र मां, घाली धर्म नी सीर।

महा अतुल्य बली नर, शूरवीर ने धीर,

तीर्थ प्रर्वत्तावी, पहोत्या भवजलतीर।

रचनाकाल— संवत् अठार ने वरसे सातो सिरदार,
गढ़ जालोर मां अेह कहयो अधिकार।

अंत— अे जतियों सतियों शुं राखो उज्वल भाव,
अेम कहे ऋषि जेमल जी, अेह ज तरणा नो दाव।

यह रचना विविध पुष्प वाटिका भाग २ पृ० ५४६-५५ और जैन स्वाध्याय मंगल माला भाग २ पृ० ६९-७० पर प्रकाशित है।

नेमचरित्र चोपाई अथवा नेमरास (सं० १८०४ भाद्र शुक्ल ५);

खंधक चोढालियुं अथवा चौपाई (६७ कड़ी सं० १८११ चैत्र ७ लांडूया) आदि—

सावथी नगरी सोहामणी जी कनककेतु तिहांराय,
खंधक कुमार सोभागीयो जी, मल्ली कुमारी माय।
क्षमावंत जोग भगवत रो ज्ञान।

रचनाकाल— संवत् अठारै इग्यारोत्तरे चैत्र मासा हो सातम वार,
लाडुअै जेमल जी कहे ऊछो अधिको हो मिच्छामि दुक्कड़ जोय।

अंत— करम खपावी भुगते गया, वधार्यो हो जयो धरम नी सेन।
अर्जुनमाली नी ढाल (६ढाल सं० १८२० कार्तिक शुक्ल १५)

अंत— अंतगड मांह काढो निचोड़ी, तिण अणुसारे रिष जेमल जोड़ी।
अठार से ने बीस माया काती सुद पूनम सुभ ठाया।

अवंति सुकमाल चौढालियुं (सं० १८२५ आसो शुक्ल ७, नागौर);

परदेशी राजा जो ढाल अथवा संधि, चौपाई, चरित्र (२२ ढाल) का आदि—

रायपसेणी सूत्र मधे, राय प्रदेशी ना भाव,
सूरीयाभ देव भरनै हुवौ, धरम भणी प्रभाव।
आलमकंपानगरी समोसर्या महावीर,
सूरीयाभ दैव तिहां आवीयो, नाटक करवा तीर।

पाठांतर— अरिहंत सिद्ध वलि आपरीया, उबझाय सधना साध,

मुगति नगर ना दायका अे पांच पद आराध।
नमुं वीर सासनधणी, गणधर गौतम स्वामी,
मांथे हाथ देई करी, सार्या धणानां काम।

अंत— रायप्रसेणी सूत्र में रे, अे कहो अधिकार,
भणे गुणे श्रवणे सुणे रे, पामे भवमल पारो रे।
सूत्र विरूद्ध जे मे कहो रे, अधिको ओछो कोय;
रिषि जेमलं कहि जिसो रे, मिछामि दुकड मोयो रे।
दीवाली संज्झाय का आदि—

भजन करो भगवान नो, गणधर गोतम स्वामी
तरण तारण जग प्रगटा, लयो नित पूनिम नाम।
दीवाली दिन आवीयो।

चन्द्रगुप्त सोल सुपना संज्झाय (३५ कड़ी) का आदि—

पडलीपुर नामै नगर, चंद्रगुप्त तिहां राय;
सोले सुपणां देखिया, पाखी पोसा मांह।

अंत— "विवहार सूत्रनी चूलका, कह्यो भद्रबाहु स्वामी रे;
तिण अणसारै जांण जो, ऋष जेमल जी जोड़ो रे। चंद्रगुप्त राजा सुणो।"

इसके अलावा कमलावती संज्झाय और स्थूलिभद्र संज्झाय नामक दो रचनाओं के भी आप रचयिता थे।[१४६]

जैनचंद–

खरतरगच्छीय कवि थे। आपने नंदीश्वर द्वीप पूजा की रचना की है। इसका विवरण और उद्धरण नहीं उपलब्ध हुआ।[१४७]

जोगीदास–

आपकी एक पुस्तक 'अष्टमी कथा' की प्रति दिगंबर जैन पंचायती मंदिर दिल्ली के भण्डार में मिली है, इससे कवि का संबंध दिगम्बर संप्रदाय से मालूम पड़ता है। कवि ने अपने संबंध में कुछ जानकारी इन पंक्तियों में दी है—

सब साहन प्रति गटमल साह, ता तन सागर कियो भवलाह।
पोहकरदास पुत्र ता तरनो, नंदो जब लग ससि सूर गनो।

गुरु उपदेश करी यह कथा, जीवो चिर जो इदह (१) सदा।
अग्रवाल रहे गढ़ सलेम, जिनवाणी यह है नित तेम।
सुणि कह्या गुण पुव्वह आस, कथा कही पंडित जोगीदास।[१४८]

जोधराज कासलीवाल--

आप प्रसिद्ध जैन हिन्दी कवि दौलतराम कासलीवाल के सुपुत्र थे। भरतपुर राज्य (राजस्थान) में कामानगर १८-१९वीं शताब्दी में साहित्यिक गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र था। यहाँ के ग्रंथ भण्डार में पर्याप्त महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की प्रतियाँ है। जोधराज जी वहीं जाकर रहने लगे थे। इन्होंने सं० १८८४ में 'सुखविलास' नामक ग्रंथ लिखा। इसका रचनाकाल सं० १८८४ मगसिर सुदी १४ है।

आदि— णमो देव अरहंत कौ नमौ सिद्ध महराज,
श्रुत नमि गुरु को नमत हौं, सुखविलास के काज।

आत्मपरिचय—दौलत सुत कामा बसै, जोध कासलीवाल,
निज सुख कारण यह कियौ, सुखविलास गुणमाल।

उस समय रियासत भरतपुर में राजा बलवंत सिंह राज करते थे। वहाँ चार सुंदर जिन मंदिर थे और मंदिरों में समृद्ध ग्रंथ भंडार थे। इसका रचनाकाल इन पंक्तियों में बताया गया है—

एक सहस्त्र अरू आठ सत असी ऊपर चार,
सो संमत शुभ जानियो, शुक्ल पक्ष भृगुवार।
ता दिन यह पूरण कियो शिव सुख की करतार।
सुख विलास इह नाम है सब जीवन सुखकार।

कवि अपनी विनयशीलता का परिचय देता हुआ लिखता है—

व्याकरणादिक पढ्यो नहीं भाषा हू नहि ज्ञान,
जिनमत ग्रंथन ते कियो केवल भक्ति जु आन।
भूल चूक अक्षर अरथ जो कछु यामे होय।
पंडित सोध सुधारियो, धर्मबुद्धि धरि जोग।

उनके गद्य का भी नमूना देखिये—

"जो यामैं अलप बुद्धि के जोगते कहीं अक्षर अर्थ मात्रा की मूल होय तौ विशेष ज्ञानी धर्म बुद्धि मोकूं अल्प बुद्धि जानि क्षमा करि धर्म जानि याकों सोध के शुद्ध करि

लीजो।''[१४९]

आपकी एक रचना 'सुगुरु शतक' का रचनाकाल सं० १८५२ बताया गया है जिसकी प्रति दिगंबर जैन तेरहपंथी, मालपुरा (टोंक) में उपलब्ध है।[१५०] आपकी प्राय: सभी रचनायें 'सुखविलास' में संकलित हैं। यह संकलन सं० १८८४ में पूर्ण हुआ था। यह कवि की अंतिम अवस्था थी। इसलिए यह प्रतीत होता है कि सुखविलास में इनकी गद्य-पद्य दोनों प्रकार की रचनायें संकलित हो गई थी।[१५१]

जोरावरमल–

आपकी एक रचना 'पार्श्वनाथ श्लोको' सं० १८५१ पौस की प्रति बहादुरमल बांठिया संग्रह मीनासर से प्राप्त हुई है जिसका उल्लेख देसाई ने किया है किन्तु विवरण-उद्धरण नहीं दिया है।[१५२]

ज्ञानउद्योत या उद्योतसागर (गणि)–

आप तपागच्छीय पुण्यसागर के प्रशिष्य और ज्ञानसागर के शिष्य थे। आपकी रचनाओं का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है—

'२१ प्रकारी पूजा' (सं० १८२३) का आदि—

स्वस्ति श्री सुख पूरवा, कल्पवेली अनुहार,
पूजा भक्ति जिन नी करो, अेकबीस भेद विस्तार।
स्नान विलेपन भूषणं, पुष्पवास धूप दीव,
फल अक्षत तेम पत्रनी, पूग नैवेद्य अतीव।
गंगा मागध क्षीरनिधि औषधि मिश्रित सार,
कुसुमेवासित शुचि जलें करो जिन स्नात्र उदार।

रचनाकाल— संवत् गुण युग अचल इंदु हर्ष भरि गाइयो श्री जिनेंदु।
तास फल सुकृत थी सकल प्राणी, लहे ज्ञान उद्योत धन शिव निशानी।

अंत— अगणित गुण मणि आगर नागर वंदित पाय,
श्रुतधारी उपगारी ज्ञानसागर उबझाय।

यह रचना श्रीमद् देवचंद भाग २ पृ० ८७३-८३ पर भ्रमवश देवचंद के नाम से छप गई है।

अष्टप्रकारी पूजा (श्रावक गुणोपरि) विधि सं० १८२३ (४३)!

इसका प्रारम्भ गद्य से हुआ है, तत्पश्चात् यह दोहा है—

शुचि सुगंधवर कुसुमयुत जलसूं श्री जिनराय,
भाव शुद्ध पूजन भव कषाय पंक मल जाय।

रचनाकाल— संवत् गुण युग अचल इंदु हरषभर गाइये श्री जिनेदु

ठीक यही रचनाकाल २१ प्रकारी पूजा का भी बताया गया था और यह भी श्रीमद् देवचंद के नाम से प्रथम रचना के आगे छपी है। भीमसिंह माणेक द्वारा प्रकाशित 'विविध पूजा संग्रह' में भी यह देवचंद के नाम से ही छपी है।

आराधना ३२ द्वार नो रास का आदि—

शासन नायक जिन नमी आराहण पडाग,
द्वार बत्रीस अतिदेश थी कहुं विधि शिव सुखभाग।

इसमें नवकार आदि से लेकर संलेखना तक आराधन के ३२ द्वार गिनाये गये हैं। वीरचरित्र वेली (गाथा १७) यह पद्यवद्ध है।

गद्य में इन्होंने सम्यकत्वमूल वारव्रत विवरण अथवा बारव्रत नी टीप (सं० १८२६ मागसर शुक्ल ५, गुरुवार, पाटण) लिखा है इसके प्रारम्भ में पद्यबद्ध पाँच दोहों के पश्चात् गद्य प्रारम्भ होता है, यथा "श्री गुरुभ्यो नमः महोपाध्याय श्री ज्ञानसागर गणि चरण कमलेभ्यो नमः संवत् १८२६ वर्षे शाके १६९२ प्रवर्तमाने श्री माघ सुदी दिनें श्री पाडलीपुर वासतव्य बाबू श्री हेमचंद जी ने अपना मनुष्य भव सफल करें कुं श्री जिनोक्त सिद्धांत शैलि प्रमाणे श्री सम्यकत्व मूल बारेव्रत की धारणा कीनी---।"

इसमें स्थूलिभद्र कोशा और पाटलीपुत्र का उल्लेख करके वहाँ के निवासी सोमचंद के पुत्र हेमचन्द्र का स्मरण किया गया है जिनके लिये यह रचना की गई थी। इसमें ज्ञानसागर और उनके गुरु तपा० पुण्यसागर की भी वंदना की गई है। कवि ने रचनाओं में प्रायः अपना नाम उद्योतसागर ही दिया है, यथा—

इह विधि जो व्रत धारस्यें, बारसें विषय कषाय,
विलसे ज्ञान उद्योत मय, आनंद धन सुखदाय।

जै० गु० क० के प्रथम संस्करण में इनका नाम ज्ञानसागर शिष्य ज्ञानउद्योत, उद्योतसागर आदि कई प्रकार से छपा है किन्तु नवीन संस्करण में इनका नाम उद्योतसागर ही दिया गया है।[१५३]

ज्ञानचंद I –

आप उदयपुर रियासत स्थित मांडलगढ़ ग्राम के निवासी थे। ये राजस्थान के इतिहास के ज्ञाता तथा संकलन कर्त्ता थे। इन्होंने कर्नल टांड की प्रसिद्ध पुस्तक 'राजस्थान का इतिहास' लिखने में बड़ी सहायता की थी। टाड साहब इन्हें गुरुवत् सम्मान देते थे। यह इतिहासज्ञ के अलावा कवि भी थे। इनकी कुछ स्फुट रचनाओं का उल्लेख मिश्र बन्धुओं ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ में किया है और रचनाकाल सं० १८४० दिया है। नाथूराम प्रेमी ने भी इन्हें १९वीं (वि०) शती का कवि बताया है।[१५४]

ज्ञानचंद II –

आपने आचार्य शुभचंद्र कृत ज्ञानार्णव पर संस्कृत एवं हिन्दी गद्य में उत्तम टीका की है। ज्ञानार्णव हिन्दी टीका का रचनाकाल सं० १८६० माघ शुक्ल २ है। इसकी गद्य भाषा मरु गुर्जर या पुरानी हिन्दी है। इसकी प्रति दिगम्बर जैन मंदिर कोटडियाल डूंगरपुर में उपलब्ध है।[१५५]

ज्ञानसागर -

इनका जन्म जांगलू निवासी उदयकरण के यहाँ सं० १८०१ में हुआ था। इनका मूलनाम नारायण था। दीक्षानाम ज्ञानसार सं० १८२१ में दीक्षोपरांत् रखा गया। आप जिनलाभ सूरि के शिष्य रत्नराज गणि के शिष्य थे। तमाम स्थानों में विहार करके सं० १८७० में ये बीकानेर गये। और १८९८ में मृत्युपर्यंत वहीं रहे। आप राजमान्य आध्यात्मिक साधु और जैन दर्शन के गहन विद्वान् थे। जयपुर के राजा प्रतापसिंह, उदयपुर के महाराणा तथा जैसलमेर के रावल और किशनगढ़ के नरेश आपको आदर देते थे। बीकानेर नरेश सूरतसिंह तो इन्हें नारायण का अवतार ही मानते थे। इनकी रचनाओं का संकलन-संपादन दो भागों में अगरचंद नाहटा ने किया है। प्रथम भाग में इनका विस्तृत जीवन चरित्र भी दिया गया है और यह काफी पहले प्रकाशित भी हो गया था। मालापिंगल, चन्द्र चौपई, समालोचना सिंगार, कामोद्दीपन, पूर्व देश छंद और कई छत्तीसियाँ तथा अन्य रचनायें हिन्दी मरु गुर्जर में प्राप्त और संकलित हैं। आनंदघन की चौबीसी और पदों पर सैंतीस वर्ष तक गंभीर चिंतनोपरांत आपने लोकभाषा में उत्तम टीका लिखी है। गद्य ग्रंथों में अध्यात्म गीता टीका, जिन प्रतिमा स्थापना विधि आदि उल्लेखनीय रचनायें हैं। चौबीसी १८७५ बीकानेर, बीसी १८७८ बीकानेर, ४७ बोल गर्भित चौबीसी १८५८, संबोध अठत्तरी १८५८, नवपद पूजा एवं कई स्वतन इत्यादि उपलब्ध है।[१५६]

जयपुर के राजा प्रतापसिंह की इच्छानुसार 'कामोद्दीपन' ग्रंथ रचा गया था।

मालापिंगल छंद शास्त्र संबंधी ग्रंथ है। जब आपने मुर्शिदाबाद में चौमासा किया था तब के बंगला समाज की अवस्था का इसमें अच्छा वर्णन है। आपने मोहनविजय की प्रसिद्ध रचना चंद चौपाई की समालोचना दोहे छंद में की है और 'समालोचना-सिंगार' लिखा है। आनंद धन के प्रति इन्हें बड़ी श्रद्धा थी और उनके पदों का अनुसरण करके आपने भी बहुत से पद रचे है, उदाहरणार्थ 'पद बहुत्तरी' से एक पद की पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

भोर भयो अब जाग बावरे।
कौन पुण्य ते नरभव पायो, क्यूं सूता अब पाय दाँव रे।
धन वनिता सुत भ्रात तात को मोह मगन इत विकल भाव रे।
कोई न तेरो तू नहीं काकऊं, इस संयोग अनादि सुभाव रे।
आरज देस उत्तम गुरु संगत, पाई पूरब पुण्य प्रभाव रे।
ज्ञानसार जिनमारग लाधो, क्यों डूबे अब पाई नाव रे।

चंद चौपाई समालोचना का एक उदाहरण—

ए निच्चे-निच्चे करो, लखि रचना को मांझ,
छंद अलंकार निपुण नहि मोहन कविराज।[१५७]

पूर्व देश वर्णन छंद (१३३ कड़ी सं० १८५२ के लगभग); ज्ञानसार ने सं० १८४९ से १८५२ में चौमासा पूर्व देश में किया था अत: रचना इसी अवधि या इसके कुछ बाद की होगी।

केइ में देख्या देश विशेखा नहि रे अथका सवही में,
जिह रूप न रेखा नारी पुरुषा फिर-फिर देखा नगरी में।
जिह कांणी चुचरी अंधरी बहरी लंगरी पंगुरी हवै काई,
पूरब मति जाज्यों पश्चिम जाज्यौ दक्षिण उत्तर हो भाई।

अंत— जाणी जेती बात तिती मैं प्रगट बषाणी,
झूठी कथ नहीं कथी कही है सांच कहानी।

पिण रति सहू इक बातनों, तन सुख चाहै देह धर,
नारण धरी अरु क्या पहुर, रहै नहीं सो सुघर नर।

माधवसिंह वर्णन (२१ कड़ी) इसमें जयपुर नरेश माधवसिंह का वर्णन है।

अंत— अे नरिंद विधि कै वरष जयपुर धारै राज,
आपद झगरि सगत्ति इणि अैसो शुभ सिरत्ताज।

समुद्रवद्ध चित्र कवित्त (लगभग सं० १८५३) माधवसिंह का पुत्र प्रतापसिंह जयपुर का राजा हुआ तो उसे भी ज्ञानसार ने आशीर्वाद दिया और गुणवर्णन किया। 'कामोद्दीपन' ग्रंथ (१७७ कड़ी सं० १८५९ वैशाख शुक्ल ३, जयपुर) उसे ही संबोधित करके लिखा गया है। एक उदाहरण—

मदन उद्दीपन ग्रंथ यह रच्यो रुच्यौ श्रीकार,
जग करता करतार है यह कवि वचन विलास।

प्राय: लोगों की यह धारणा है कि जैन कवि सरस शृंगारी रचनायें नही करते, श्रीसार का कामोद्दीपन ग्रंथ इस आरोप को निराधार सिद्ध करता है। संबोध अष्टोत्तरी (१०८ सोरठा, सं० १८५८ ज्येष्ठ शुक्ल ३)

आदि— अरिहंत सिद्ध अनंत आचारिज उबझाय वलि,
साधु सकल समरंत, नित का मंगल नारणा।

'४७ बोल गर्भित २४ जिनं स्तव अथवा चौबीसी'— यह ११५१ स्तवन मंजूषा में प्रकाशित है।

रचनाकाल— संवत् प्रवचनमाय मुणिवय सिद्ध (सिद्धि) सिवपय सूं गुणी,
जिन वीर मोक्ष कल्याण दिवसै ज्ञानसार थुय थुणी।

दंडक भाषा गर्भित स्त० (२६ कड़ी सं० १८६१ पोष शुक्ल ७, सोम जयपुर) का।

आदि— ऋषभादिक चौबीस नमि तेहनो सूत्रविचार
दंडक रचनायै तवुं, संखेपै निरधार।

यह रत्नसमुच्चय पृ० २०३-०६ और अभयरत्नसार में प्रकाशित है। जीवविचार भाषा गर्भित स्त० (२९ कड़ी सं० १८६१, माघ कृष्ण ४)।

रचनाकाल— संवत् ससी रस वारण ससिहर धर निरधार,
माघ चोथ दिन कीनो जैपुर नगर मझार।

यह रत्नसमुच्चय पृ० २०६-०९ और अभयरत्नसार में प्रकाशित है।

नवतत्त्वभाषा गर्भित स्त० (३३ कड़ी सं० १८६१ माघ बद ५, मेरुतिथि, सोमवार) का प्रारम्भ—

नमस्कार अरिहंत ने सिद्ध सूरि उबझाय;
साधु सकल प्रणमी करी, प्रणमी श्री गुरुपाय।

यह भी रत्न समुच्चय पृ० १९९ और अभयरत्नसार में प्रकाशित है। हेमदंडक (१०८ कड़ी सं० १८६२ भाग वद १४ जयपुर) का आदि—

> जे ध्रुव अलख अमूरती अनाहारी चिद्रूप;
> अज अविन्यासी अमरपद, पूर्णानंद सरुप।

आपने कई छत्तीसियाँ लिखी है जैसे भाव छत्तीसी (३६ दोहे, सं० १८६५ कार्तिक शुक्ल १, किसनगढ़), कहा जाता है कि जैसलमेर के नंदलाल की पत्नी मोतू उनके पास दीक्षा लेने गई पर उसे अपात्र समझ कर मना कर दिया। उसी को समझाने के लिए आपने 'चारित्र छत्तीसी' लिखी थी। बहुत्तरी अथवा पद संग्रह सं० १८६६ के पूर्व की रचना है। सिद्धाचल जिन स्त० (शत्रुंजय स्तव) २१ कड़ी १८६९ फाल्गुन कृष्ण १४ का रचनाकाल—

> निध रस वारण ससि फागण वदि चवदसै;
> सिद्ध गिरि फरस्यै मन वच तन उल्लसै।

जिनमत धारक व्यवस्था वर्णन स्त० १२ कड़ी की छोटी रचना है।

नवपद पूजा (सं० १८७१ भाद्र वदी १३ बीकानेर) का रचनाकाल—

> संवत् निश्चयनय भयतिम वलि प्रवचनमाय,
> परम सिद्ध पद वाम गतै, अे अंक गिणाय।
> भाद्रवा वदि तेरस-तेरस सुं नव पद लीन
> बीकानेर ज्ञानसार मुनि तवना कीन।

चौबीसी (सं० १८७५ भाग० शु० १५ बीकानेर)

अंत—
> गोडेया जी तै मुहि सुधि बुधि दीधी,
> तुम्ह सहाये बुद्धि पंगुर थी, जिनगुण नग गति कीधी।
> अक्षर घटना स्वपद लाटनी भाव वेध रस वीधी।
> अंध बधिर आसय नहि समझूं सी श्रुत उधी सीधी।
> कालावाला सहूथीं करनैं, भक्ति वृत्ति रस पीधी।
> सुमति समय तिम प्रवचन माता, सिद्ध बाम गति लीधी।
> वर खरतरगच्छ रत्नराज गणि ज्ञानसार गुणवेधी।
> विक्रमपुर मृगसर सुदी पूनम चौवीसुं स्तुति कीधी।

मालापिंगला (१५२ कड़ी, सं० १८७६ फाल्गुन शुक्ल ९) के प्रारम्भ में कहा है—

प्राकृत ते भाषा करुं मालापिंगल नाम,
सुखैबोध बालक गहै, पर समको नहि काम।

यह पिंगल शास्त्र संबंधी रचना मूलतः प्राकृत में थी। चंद चौपाई समालोचना- चंद चौपाई मोहनविजय की सुंदर काव्यकृति है। यह ग्रंथ उसी की समालोचनार्थ चारसौ से अधिक दोहों में रचा गया है। यह प्राचीन समीक्षा पद्धति का दुर्लभ नमूना है। यह रचना सं० १८७७ चैत्र वदी २ को पूर्ण हुई थी।

वीशी- सं० १८७८ कार्तिक शुक्ल १ बीकानेर का आदि—

किम मिलियै किम परचीयै, किम रहियै तुम पास;
किम तवीयै तवना करी तेह थी चित्त उदास।
सीमंधर प्रीतडी रे करियै केण उपाय,
भाषो कोई रीत डी रे।

'प्रस्ताविक अष्टोत्तरी' ११२ दोहा १८८० आसो, बीकानेर। निहाल बावनी अथवा गूढ़ा बावनी सं० १८८१ इसमें कुछ गूढ़ प्रश्न हैं रचना प्रश्नोत्तर शैली में है, यथा-

आदि— चांच आंख पर पाउंखग ठाड़ो अंबनि डाल,
हिलत चलत नहि नभ उड़त, कारण कौन निहाल।

जिनकुशल सूरि (दादाजी) अष्टप्रकारी पूजा- पहले संस्कृत में पंक्तियाँ हैं, बाद में दोहा है। यथा—

गंगाजल तिम निर्मल वलि, तीर्थोदिक भरपूर
कलश भरी गुरुचरण पर, ढाले तस दुख दूर।

इसके अंत में लिखा है— इति श्री पार्श्वपक्षादि सुरसेवित लघु

आनंद धन कृत श्री जिन पूजा, श्री नारायण जी बाबा जी रचिता समाप्त।

इसे नाहटा जी ने संशोधित करके 'जिनदत्त सूरि चरित्र' में प्रकाशित किया है।

पद्य के अतिरिक्त आपने गद्य में भी पर्याप्त लिखा हैं इनकी कुछ महत्त्वपूर्ण गद्य रचनाओं का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है।

आनंद घन चौबीसी बाला० (१८६६ भाद्र शुक्ल १४) यह बालावबोध प्रकरण

रत्नाकर भाग १ में भीमसिंह माणक द्वारा प्रकाशित हैं। आनंद घन बहुत्तरी बाला० की चर्चा पहले की गई है। यह बड़ा महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है।

समुद्रबद्ध वचनिका—

यह रचना 'समुद्रवद्धचित्र कवित्त' पर स्वयं लेखक द्वारा लिखित वचनिका है। इसी प्रकार इन्होंने 'जिनमत धारक व्यवस्था वर्णन स्तव' पर भी बालावबोध लिखा है। आत्मनिंदा सं० १८७० और जिन प्रतिमा स्थापना ग्रंथ १८७४ चैत्र शुक्ल ७ में रचित गद्य ग्रंथ हैं। अध्यात्म गीता बाला० १८८०, आषाढ़ शुक्ल १३ बीकानेर में लिखा गया था, मूल ग्रंथकार श्रीमद् देवचन्द्र हैं। इसका रचनाकाल इन पंक्तियों में है—

नभ गज द्वीप शशि तेरसें शुक्ल अषाढ़ समास,
ज्ञानसार भाषा करी, विक्रम देस चौमास।

साधु सज्झाय बाला० भी श्रीमद् देवचंद कृत मूल ग्रंथ की टीका है। यह श्रीमद् देवचंद भाग दो में प्रकाशित है।

पद समवाय अधिकार की रचना १८८८ कार्तिक शुक्ल नवमी को हुई।

पद्य रचनाओं में उल्लिखित नवतत्त्व भाषा गर्भित स्तव का रचनाकाल—

संवच्छर निश्चय नय विगइ प्रवचन माय,
परम सिद्धि पद वाम गतें अे अंक गिणाय।

में आये शब्द 'विगइ' का अर्थ अस्पष्ट है यदि इसे विकृति या विकार माना जाय तो ही इसका अर्थ '६' मानना होगा अन्यथा अर्थ निकालना कठिन है। इसी प्रकार 'चौबीसी' में रचनाकाल संबंधी पंक्ति के किस शब्द का आशय '७' है यह भी समझना कठिन हो रहा है।[१५८]

ऐतिहासिक रास संग्रह में इनकी ९ दोहों की एक रचना 'श्रीमद् ज्ञानसार अवदात दोहा' नाम से संकलित है। उसमें भी इनके पिता का नाम उदैचंद सांड और माता का नाम जीवण दे तथा जन्म सं० १८०१ और सं० १८१२ में रत्नराज रायचंद से दीक्षित होना बताया गया है, यही परिचय पहले दिया गया है। इसमें आपके एक शिष्य सदासुख का भी उल्लेख मिलता है।

आदि— उदैचंद सुत ऊपज्यौ, लीयो विधाता लोच,
देव नरायण दाखवुं, को गजब गति आलोच।

अंत— बाबाजी वाचक अखैं, अखै राठौड़ो राज,
खरतरगुरु सगला अखै, रतन अखै महाराज।[१५९]

ज्ञानसागर–

आप काष्ठासंघ (दिग०) के आचार्य श्री भूषण के शिष्य थे। आपकी एक रचना 'कथा संग्रह' दिगम्बर जैन पंचायती मंदिर दिल्ली में है। इस संग्रह में रक्षाबंधन, लब्ध विधान व्रत, अष्टाह्निका व्रत इत्यादि कुल २० कथायें संकलित हैं।

गुरुपरम्परा संबंधी पंक्तियाँ देखिये—

विद्याभूषण गुरु गच्छपती, श्री भूषण सूरिवर सुभमती;
ता प्रसाद पायो गुणसार, ब्रह्मज्ञान बोलै मनुहार।
षिणभंगुर संसार अपार विनसत घटी न लागै बार,
रामा सुत और जोबन भोग, देखत-देखत होत वियोग।
जिम एवट तिम सगला लोक, मरण समय सब थावै फोक,
राजा मन चिंतै वैराग, वृद्धपणौ संयम नो लाग।
X X X X X X
''सब निज घटें सुष भर रहैं, धर्म भार सब निज सिर सहै।
नेमनाथ जिन परम दयाल, केवलज्ञान लघु गुनमाल।
तसु पद वंदन करवा काज, गिरनारे चाल्यो हरिराज।
रुक्मण नैं देषाड़े भूप, ऊर्जवंत गिरि तणौ सरुप।[१६०]

ज्ञानसागर शिष्य–

ये ज्ञानसागर के शिष्य उद्योतसागर, जिनकी चर्चा पहले की गई है, हो सकते हैं। इनकी एक रचना का विवरण यहाँ दिया जा रहा है। रचना-सम्यकत्व स्तव बाला० है। उद्योतसागर ने भी सम्यकत्वमूल बारव्रत विवरण अथवा टीप लिखा है। इन समानताओं के अलावा विषमतायें भी अनेक है जैसे रचनाकाल, रचनास्थान और रचना के प्रेरक पुरुष आदि। इसके प्रारम्भ में भी संस्कृत भाषा में लिखा है—

श्रीमद् वीरं जिनं नत्वा गुरु श्री ज्ञानसागरं।
श्री सम्यकत्व स्तवस्यार्थो लिख्यते लोकभाषया।

आगे लिखा है कि ज्ञानसागर का यह शिष्य पूर्व के तीर्थों का भ्रमण करने के लिए शुभ सकुन में सूरत से प्रयाण करके जमुना नदी के तट से होकर मकसूदाबाद

पहुँचा जहाँ सुगाल साह के पुत्र भाग निधि, अभय और मूलासाह के कथनानुसार यह बालावबोध लिखा। उन लोगों की आगम में रुचि थी, इसकी अंतिम पंक्ति इस प्रकार है—

दुर्लभ चारो अंग में समकित जेह अमूल;
भविजन तस उद्यम करो जिम शिवसुख अनुकूल।[१६१]

इसके उद्धृत अंश में रचनाकाल नहीं है अन्यथा सटीक अनुमान करने में अधिक सुविधा होती।

ज्ञानानंद–

आप खरतरगच्छ के साधु चारित्रनंदी के शिष्य थे। इनका ७५ पदों का एक संग्रह ज्ञान विलास और ३७ पदों का दूसरा संग्रह 'समयतरंग' शीर्षक से मरुगुर्जर में उपलब्ध है।

अगरचंद नाहटा ने 'जैन सत्य प्रकाश पु० ४ अंक १२ पृ० ५७३ पर एक लेख इनके संबंध में लिखा है जिसमें पर्याप्त सूचनायें हैं। मोहनलाल दलीचंद देसाई ने भी 'जैन' पु० ३८ अंक ३५ के पृ० ८४५ पर इनसे संबंधित जानकारी दी है। इनके दोनों संकलन भीमशी माणेक द्वारा प्रकाशित है, वीरचंद दीपचंद ने भी श्रीमद् यशोविजयादि संज्झाय पद स्तवन संग्रह सं० १९५७ में प्रकाशित किया है।[१६२]

झूमकलाल–

ये शायद जिला एटा के सराय अधत नामक स्थान के निवासी थे। इन्होंने अपना निवासस्थान 'अधात जगा' बताया है। इनके पिता का नाम कुशलचंद था। किसी कारण वश ये सकूराबाद (शिकोहाबाद) पहुँचे और वहाँ के एक धर्मात्मा सेठ अतिसुखराय के सम्पर्क में आये। उन्हीं के आग्रह पर इन्होंने ख्यालो के सादृश्य में नेमनाथ जी के कवित्त की रचना सं० १८४३ में की। इसका एक उदाहरण देखें—

"नेमिनाथ को हाथ पकरि कै खड़ी भई भावज सारी,
ओढ़ै चीर तीर सरवर के तहाँ खड़ी हैं जदुनारी।
X X X X X X
काहे को सार शृंगार करै, सुन तेरो पिया गिरनार गयौ री,
मूर्छित ह्वै धरनी पै गिरी, मनु वज्र छटाका आनि परयो री।

एक बार अतिसुख राय ने झूमकलाल से कहा-

"मित्र सु अतिसुष नै कही, सुनियै झुनकतलाल;
श्री जिन पारसनाथ की, बरन करौ गुणमाल।"

उनके कथनानुसार कवि ने सं० १८४४ में 'पार्श्वनाथ जी कवित्त' की रचना की; जिसमें बनारस, यहाँ की गंगा, घाट और पुल आदि का मनोहर वर्णन है, यथा—

नगर बनारस जहाँ विराजै, बहै सुगंगा गहन गभीर,
उज्वल जल भरि शोभा मंडित, परे किनारे किश्ती भीर।

कंचन रत्न जड़ित अति उन्नत श्वेत वरन पुल लसै सुधीर;
बन उपवन करि शोभा शोभित अरु विसराम सुता के तीर।

गंगा की मनोरम शोभा का वर्णन निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है-

रूप के रंग मानौ गंग की तरंग सम इंदु दुति अंग ऐसे जल सुहात है।
ससि की सी किर्ण किधौं, मेह तट झरनि किधौं, अंबर की भरनि किधौं, मेह बरसत है।
हीरा सम सेत रवि छवि हरि लेत किधौं मुक्ता दुति देषि मन मानौ सरसत है।
सिव तिय अपने पति को शृंगार देखि करतु कटाछ ऐसे चमर फहरत है।"[१६३]

टेकचंद–

इनके पिता का नाम दीपचंद और पितामह का नाम रामकृष्ण था। ये मूलत: जयपुर के रहने वाले थे किन्तु माहिपुरा में रहने लगे थे। इनकी अब तक २१ से अधिक रचनायें प्राप्त हो चुकी हैं। पुण्यास्रव कथा कोश १८२२, पंच परमेष्ठी पूजा, कर्मदहन पूजा, तीन लोक पूजा १८२८ पंचकल्याण पूजा, पंच भेद पूजा, अध्यात्म बाराखड़ी और दशाध्यान सूत्र टीका उल्लेखनीय रचनायें हैं।[१६४] पुण्यास्रव कथा कोश में ७९ कथाओं का संग्रह है। इनकी प्रसिद्ध रचना 'सुदृष्टितरंगिणी' जैन समाज में अधिक प्रचलित है। इसमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक चरित्र का प्रभावी वर्णन १७५०० छंदों से हुआ है। यह १८३८ की रचना है।[१६५] इसके अतिरिक्त षट्पाहुड वचनिका और बुध प्रकाश छहढाला इत्यादि का भी नामोल्लेख मिलता है। सं० १८२६ ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी को आपने बुद्धि प्रकाश की रचना की थी जिसकी प्रति जैन मंदिर फतहपुर, शेखावटी (राज०) में है।

आदि— "मन दुख हर कर शिव सुरां नरा सकल सुखदाय।
हरा कर्म अष्टक अरि, ते सिध सदा सहाय।
त्रिभुवन तिलक त्रिलोकपति, त्रिगुणात्मक फलदाय।

त्रिभुवन फिर तिरकाल तै तीर तिहारे आय।

अंत— "संवत् अष्टादश सत जोय, और छबीस मिलावो सोय।
मास जेठ वदि आठे सार, ग्रंथ समापत को दिन धार।
या ग्रंथ के अवधार ते, विधि पूरब बुधि होय।
छंद ढाल जाने घनी, समुझै बुधजन जोय।
ताते भो निज हित चहो तो यह सीख सनाय।
वुधि प्रकाश सुं ध्याय के, बाढ़ै धर्म सुभाव।

इसमें धर्म संबंधी विविध विषयों का वर्णन किया गया है। इसकी अंतिम पंक्ति है—

पढ़ौ सुनौ सीखों सकल वुध प्रकाश कहंत;
ता फल शिव अध नासि कै टेक लहो शिवसंत।[१६६]

टोडरमल–

आप इस शती (१९वीं वि०) के महान सुधारक, तत्त्ववेत्ता और प्रसिद्ध गद्य लेखक माने जाते है। दिगम्बर सम्प्रदाय में इनकी ऋषि तुल्य मान्यता है। इनके पिता जोगीदास का निवास स्थान जयपुर था। इनकी माता का नाम रंभा देवी और पुत्रों का नाम हरीचंद और गुमानीराय था। ये खंडेलवाल श्रावक थे। कहा जाता है कि जयपुर राज्य के दीवान अमरचंद ने इनको अपने साथ रख कर विद्याध्यास कराया था। ३२-३३ वर्ष की अल्पवय में सं० १८२५-२६ में इनका देहावसान हो गया था, इस प्रकार इनका जन्म सं० १७९३ वि० के आसपास होगा। इतनी अल्प आयु में आप इतना कार्य कर गये कि आश्चर्य होता है। आपके संबंध में पं० परमेष्ठी दास न्यायतीर्थ ने कहा है "श्रीमान पंडित प्रवर टोडरमल जी १९वीं शताब्दी के उन प्रतिभाशाली विद्वानों में है जिन पर जैन समाज ही नहीं सारा भारतीय समाज गौरव का अनुभव कर सकता है।" आपका अध्ययन गंभीर था। आप लेखन के अलावा भाषण कला में भी पटु थे। और राजसम्मानित महापुरुष थे। आपने कर्म सिद्धांत और जैन तत्व दर्शन को सुगम शैली और हिन्दी भाषा में सर्वसाधारण के लिएं अपने ग्रंथों द्वारा सुलभ किया। आपकी सबसे प्रसिद्ध रचना 'गोमट्टसार वचनिका' में लब्धिसार और क्षपणसार भी सम्मिलित हैं। इसकी श्लोक संख्या ४५ हजार है। यह नेमिचंद के प्राकृत ग्रंथ गोमट्टसार की भाषा टीका है। त्रैलोक्यसार वचनिका भी प्राकृत ग्रंथ का भाषानुवाद है। इसकी श्लोक संख्या करीब १२ हजार है। गुण भद्रस्वामी कृत संस्कृत ग्रंथ पर आधारित 'आत्मानुशासन वचनिका' भतृहरि के वैराग्यशतक जैसी हृदयग्राही रचना है। पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय वचनिका और मोक्ष प्रकाश

नामक इनके दो अधूरे ग्रंथों में से प्रथम को दौलतराम कासलीवाल ने पूरा किया है और दूसरा अधूरा ही छप गया है।

आप मूलतः सरल और स्वच्छ गद्य भाषा के लेखक थे, परन्तु ग्रंथो के प्रारम्भ में दिए गये पद्यों को देखने से ये अच्छे कवि भी प्रतीत होते हैं। पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय को दौलतराम ने १८२७ में पूर्ण किया था, इससे स्पष्ट होता है कि इससे कुछ पूर्व अर्थात् १८२५-२६ में इनका देहावसान हो गया होगा। मुलतान के पंचों के नाम आपकी एक चिट्ठी प्रकाशित हैं, उसकी भूमिका से ज्ञात होता है कि दरबारी विद्वत् परिषद् के द्वेष का कुछ दुष्परिणाम भी इन्हें भुगतना पड़ा था। शायद दीवान अमरचंद ने इन्हें जयपुर रियासत में कोई सम्माननीय पद दिलाया था। उस पद पर रहते हुए आपने राज्य और प्रजा के हित का कार्य किया। आप संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी के अलावा कन्नड़ के भी अच्छे जानकार थे।[१६७] इनकी हिन्दी भाषा पर ढूढारी का कुछ प्रभाव परिलक्षित होता है। वैसे भाषा स्वच्छ और प्रवाहपूर्ण है : एक उदाहरण—

गोत्र कर्म के उदय तैं नीच ऊंच कुल विषै उपजै है।
तहाँ ऊंच कुल विषै उपजै आपको ऊंचा माने है
अर नीच कुल विषै उपजै आपको नीचा मानै हैं।
सो कुल पलटने का उपाय तो याकूं भासै नही।
तातैं जैसा कुल पाया वैसा ही कुल विषै आप मानै हैं।
सो कुल अपेक्षा आपकौं ऊंचा नीचा मानना भ्रम है।[१६८]

इस ग्रंथ की शैली आकर्षक है। सूत्र शैली में गूढ़ विषयों की व्यंजता की दृष्टि से निम्नांकित पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं यथा—

तातें बहुत कहा कहिए, जैसे रागादि मिटावने का जानना होय
सो ही श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। बहुरि जैसे रागादि मिटें सो ही
आचरण सम्यक् चरित्र है, ऐसा ही मोक्षमार्ग मानना योग्य है।[१६९]

नाहटा जी का मत है कि टोडरमल की मृत्यु ४७ वर्ष की वय में हुई पर कोई प्रमाण नहीं दिया है। इनकी अधिकतर रचनायें अनुवाद या टीका हैं परन्तु टीकाकार होते हुए भी इन्होंने गद्यशैली का निर्माण किया। डॉ० प्रेम प्रकाश गौतम ने अपने शोध प्रबंध 'हिन्दी गद्य का विकास' में इन्हें गद्य का निर्माता बताया है। इनकी शैली दृष्टांतयुक्त, प्रश्नोत्तरमयी और सुगम प्रसादगुण सम्पन्न है। उसमें शास्त्रीय पंडिताऊपन का बोझ नहीं है बल्कि बीच-बीच में व्यक्तित्व का प्रक्षेप होने से मौलिक लेखन का स्वाद मिलता है। क्षपणासार भाषा के मूल लेखक नेमिचंद थे, यह जैनसिद्धांत का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है

(रचनाकाल सं० १८१८ गाघ शुक्ल ५); गोमट्टसार, लब्धिसार और क्षपणासार की टीका का नाम सम्यग्यान चंद्रिका भी मिलता है। त्रिलोकसार भाषा में जैन मतानुसार भूगोल खगोल का वर्णन है (रचनाकाल सं० १८४१)[१७०]; मोक्षमार्ग प्रकाशक (सं० १८२७प्राप्ति स्थान भट्टारकीय जैन मंदिर अजमेर) में मोक्षमार्ग का स्वरुप वर्णन है, यह अंतिम रचना मानी जाती है जिसे पूर्ण करने से पूर्व वे दिवंगत हो गये। यदि उसका रचनाकाल सं० १८२७ है तो वे १८२५-२६ में दिवंगत हो गये।[१७१] आप १९वीं शताब्दी के श्रेष्ठ गद्य लेखकों में अग्रगण्य हैं।

डालूराम--

आपकी एक रचना गुरुपदेश श्रावकाचार (सं० १८६७) आचार शास्त्रीय है।[१७२] दूसरी रचना 'नंदीश्वर पूजा' (रचनाकाल सं० १८७९, प्राप्ति स्थान दिगम्बर जैन खण्डेलवाल मंदिर, उदयपुर) का विषय पूजा और भाषा सरल हिन्दी है।[१७३] इनकी दोनों रचनाओं का नामोल्लेख मात्र मिला। उनके उद्धरण विवरण नहीं उपलब्ध हो सकें।

डूंगा वैद–

आपकी रचना का नाम है 'श्रेणिक चौपाई' (सं० १८२६); आप मालपुरा के निवासी थे। इनकी रचना में टोंक के राजा रामसिंह का उल्लेख है। रचनाकाल इस प्रकार है—

संवत् सोलह सै प्रमाण, ऊपर सही इतासौ जाण।
निन्यानवै कह्या निरदोस, जीव सवैं पावैं पोष।
भाद्र सुदी तेरस शनिवार, कहा तीन से षट् अधिकाय।
इ सुणता सुख पासी देह, आप समाही करै सनेह।

अंत— वास भलो मालपुरो जाणि, टोंक महीसो कियो वषांण।
राइस्यंध जी राजा बषाणिय, चौर चौवाहन राखै आंणि।

इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ हैं—

आदिनाथ वंदौ जगदीस, जाहि चरित थे होइ जगीस।
दूजा वंदौ गुरु निरग्रंथ, भूला भव्य दिखावण पंथ।
X X X X X X
माता हमनै करौ सहाई, अख्यर हीण सवारो आई।
श्रेणिक चरित बात में लही, जैसी जाणी चौपई कही।

राणी सही चेलणा जांणि, धर्म जैन सेवै मनि आणि।
राजा धर्म चलावै बोध, जैनधर्म को काटै खोध।

दोहा— जो झूठी मुख ते कहै अणदोस्या ते दोस;
ते नर जासी नरक में, मत कोइ आणौं रोस।[१७४]

तत्त्वकुमार–

आप सागरचन्द्र सूरि शाखा के विद्वान दर्शनलाभ के शिष्य थे। इन्होंने 'रत्नपरीक्षा' नामक ग्रंथ की रचना सं० १८४५, राजागंज में की। इसकी भाषा स्वच्छ हिन्दी है। मरुगुर्जर में इन्होंने 'श्रीपाल चौपाई' नामक दूसरा ग्रंथ लिखा है। यह रचना प्रकाशित है।[१७५] श्री नाहटा ने इनका नाम १९वीं शती के प्रमुख कवियों में गिनाया है।[१७६]

तत्त्वहंस–

ये लोहरी पोसालगच्छीय साधु विनयहंस > रत्नहंस > राजहंस के शिष्य थे। आपकी रचना 'भुवनभानु केवली चरित्र बाला०' (सं० १८०१ फाल्गुन शुक्ल ३, शनिवार खंभात) का अपर नाम 'बलिनरेन्द्र आख्यान' भी है। मूल रचना संस्कृत की है।

आदि— "श्री गुरु ने नमस्कार करू छइ। अस्ति कहेता छइं अेहज जंबु द्वीप ने विथइ मेरु थकी पश्चिमवि दिसनइ विषइं गन्धीलावती नाम-नाम छे जेहनउ अेहवी विजय ते गंधीलावती नाम विज्यनइ विषइ---- आवास छइ-संपदानो स्थानक छे समग्र जेहनउ बीजा पण विलास्यान उधरे छे।"

अंत— सं० १८०१ वर्षे फागुण मासे अतिशये भलो अेहवो सितक शुक्ल पक्षे ३ तिथौ शनिवासरे---तेहनो टव्वार्थ ने ते पंडित तत्त्वहंसे कार्यो छे श्री देवगुरु प्रसाद थी श्री लोहदी पोसाल गच्छे श्री स्तंभतीर्थ बिंब रे विरचित।"[१७७]

तिलोकचंद–

आपकी एक रचना का उल्लेख ग्रंथ सूची में है जिसका विवरण इस प्रकार है-

रचना का नाम— 'सामायिक पाठ भाषा', रचनाकाल सं० १८६२, भाषा हिन्दी, धर्म विषय पर आधारित कृति है।[१७८]

तेजविजय–

तपा० हीरविजय सूरि की परम्परा में ये विवेकविजय तथा शुभविजय > रुपविजय

> कृष्णविजय > रंगविजय > भीमविजय > हेमविजय के शिष्य थे। इनकी रचना 'केसरिया नोरास' (१६२ कड़ी, सं० १८७० फाल्गुन शुक्ल १०) का आदि इस प्रकार है—

सहस वचन रस सरसती, हंस वाहनी हंस गती,
प्रथम ज प्रणमुं सरस्वती, मांगु अविरल मती।

अंत की पंक्तियों में रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

असुर नमायो दंड पायो थावर जंगम जग जयो;
जग जस वदीतो जंग जीत्यो केसरीयो करि जयो।
संवत् अठार सत्योतरा मझारे फागुण दसमी सुदवली;
हेमविजय तणो तेज पभणे सर्वे मन आश्यां फली।[१७९]

यह रचना जैन युग पु० २ पृ० ४८१-५६३ पर प्रकाशित है।

तेज विजय शिष्य–

तपा० तेजविजय के इस अज्ञात शिष्य ने 'नवकार रास' की रचना सं० १८५७ श्रावण शुक्ल ५ को की। इसका अन्य विवरण-उद्धरण अनुपलब्ध है।[१८०]

त्रिलोककीर्ति–

आपने सं० १८३२ में 'सामयिक पाठ टीका' की रचना की है। रचना गद्य की है किन्तु इसके गद्य का नमूना नहीं मिला।[१८१]

थानसिंह–

आप सांगानेर के निवासी थे। इनका परिवार ढोलिया गोत्रीय खण्डेलवाल वैश्य था। इनकी रचना का नाम 'सुबुद्धि प्रकाश' या थान विलास (सं० १८४७) है।[१८२] इसमें लेखक ने आमेर, सांगानेर और जयपुर का वर्णन किया है। जयपुर में कुछ कलह-क्लेश के कारण इनके माता-पिता करौली चले गये, पर ये सांगानेर में ही रहे।

इनकी दूसरी रचना 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' है। इसका रचनाकाल नाहटा ने सं० १८२४ और पहिली रचना सुबुद्धि विलास का रचनाकाल सं० १८२१ बताया है पर उन्होंने काल निर्णय संबंधी कोई प्रमाण नहीं दिया है। थान विलास इनकी कई छोटी मोटी रचनाओं का संग्रह है। हो सकता है कि उसमें सं० १८२१ से सं० १८४७ तक की रचनायें संकलित हों, रचनायें सामान्य कोटि की है। इनकी भाषा

पर राजस्थानी का प्रभाव स्वभावत: अधिक है।[१८३] कस्तूरचंद कासलीवाल ने इसका रचनाकाल सं० १८४७ बताया है।[१८४] इसीलिए सुबुद्धि प्रकाश का यही रचनाकाल यहाँ स्वीकार किया गया है। इसकी प्रति जैन पंचायती मंदिर करौली में सुरक्षित है। प्रति के आधार पर डॉ० कासलीवाल ने रचनाकाल दिया है इसलिए उसे ही मान लिया गया है।

थोभण (जैनेतर)–

आपने सं० १८४४ से पूर्व 'बारमास' की रचना की, जिसकी कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

> कारतीक मासे मेहलि चाल्या कंत रे बाला जी।
> प्रेतडली तोडि आंएया अंत मारा बाला जी।
> प्रीऊ जी माहरा स्यूं चाल्या परदेस रे बाला जी।
> मंदिरीयामां हूं बाले वेस मारा वाला जी।

कवि विट्ठल का भक्त प्रतीत होता है यथा—

> सुख सज्या मां नंदनालाल बाला जी,
> वीट्ठलवर हसी लडावो लाड मोरा वाला जी।
> जन्म जन्मना चरणो राखो वास रे वाला जी।
> थोभण ना सांमी पूरो आस मारा वाला जी।[१८५]

दयामेरु–

आप अमरविजय के प्रशिष्य थे। इनकी गुरुपरम्परा देसाई ने इस प्रकार बताई है—

खरतरगच्छ के संत उदयतिलक > अमरविजय > ज्ञानवर्धन > कुशलकल्याण के शिष्य थे; आपने 'ब्रह्मसेन चौपाई' की रचना सं० १८८० ज्येष्ठ शुक्ल १०, बुधवार को भावनगर में की।[१८६] यही सूचना नाहटा ने भी दी है।[१८७] दोनों विद्वानों ने ग्रन्थ विवरण उद्धरण नहीं दिया है।

दर्शनसागर (उपाध्याय)–

अंचलगच्छ के आचार्य उदयसागर सूरि के शिष्य थे। आपकी पुस्तक 'आदिनाथ जी नो रास' (६खण्ड १६७ ढाल ६०८८ कड़ी, सं० १८२४ माह

सुद १३, रविवार सूरत) का आदि इस प्रकार है—

स्वस्ति श्री शोभा सुमतिदायक श्री भगवान,
वंदू गोड़ी पास जिन, केवलज्ञान निधान।
अंचलगच्छे अधिपति उदयसागर सूरिंद,
पद पंकज ते गुरुतणा, पणभुं प्ररमाणंद।

इसमें दान का महत्त्व दर्शाया गया है, यथा—

सदगुरु ना सुपसाय थी, दान तणें अधिकार,
आदिनाथ जिनवर तणो, रास रचुं सुविचार।

यह रचना हेमाचार्य कृत आदिनाथ चरित्र, आचार्य विनयचंद कृत आदिनाथ चरित्र और उपदेश चिंतामणि वृत्ति आदि ग्रंथों का आधार लेकर रची गई है। पुस्तक छह खण्डों में विभक्त है। छठें खण्ड से संबंधित पंक्तियाँ आगे उद्धत की जा रही हैं—

छट्ठे खंडे पांत्रीसमी अे ढाल, कही श्रीकार तो, उवझाय-दर्शन अे।

इसमें सुविहित, सोहम, सुस्थित, वैरस्वामी आदि पूर्वाचार्यों का वर्णन करते हुए कवि ने वैरी शाखा, संश्वेसर गच्छ विधिपक्ष, अंचलगच्छ आदि का स्थापना क्रमवार बताया है। इसलिए सांप्रदायिक दृष्टि से इसका ऐतिहासिक महत्त्व है। विधिपक्ष के आर्य रक्षित की परम्परा में जयसिंह से लेकर कल्याणसागर, अमरसागर, विद्यासागर और उदयसागर आदि गुरुजनों की वंदना की गई है। रचनाकाल इस प्रकार है—

संवत् वेद नयन गज, वसुधा (१८२४) सुदि तेरस महामास;
रविवारें प्रीतिजोग मां सुंदर, पूरण कीधो अे रास रे।

इस कृति में कवि ने सूरत के शाह खुसालचंद, निहालचंद, मोहनदास, भूषणदास, जलालशाह और सकलचंद आदि का उल्लेख करके पुस्तक रचना के संबंध में लिखा है—

आगम गच्छे श्री सिंहरतन सूरि, तस शिष्य श्री हेमचंद,
तेह तणें वली संघ आग्रह थी, अे रास रच्यो सुखकंद रे।

अंत— छट्ठे ढाल छत्रीसमी, आचार्य गुण समान,
सुणतां भणतां पातिक नासे, मंगल लहे प्रधान रे।
भले में अे जिन शासन पायो।[१८८]

यह रचना सोमचंद 'धारसी अंजार द्वारा और हीरालाल हंसराज द्वारा प्रकाशित है।

द्यानत–

दिगंबर संप्रदाय के श्रावक, विद्वान, प्रसिद्ध कवि और अच्छे लेखक थे। इनकी एक रचना 'तत्वसार' भाषा का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

आदि सुखि अनंत सुखि सिद्ध-सिद्ध भगवान
निज परताप तरताप विन जगदर्पण जग आंन।
घांण दहिन विधि काठि दहि, अमल सूध लहि भाव।
परम ज्योति पद वंदि कै, कहूं तत्त्व को राव।

अंत— द्यानत तत्व जू सात, सार सकल में आत्मा;
ग्रंथ अर्थ यह भ्रात, देखो जानौ अनुभवौ।[१८९]

दिनकर सागर–

आप प्रधानसागर के शिष्य थे। आपने 'चौबीसी'की रचना सं० १८५९ पौष शुक्ल १५, राणकपुर में की। इसकी कवि द्वारा लिखित हस्तलिपि उपलब्ध है। आपकी दूसरी रचना 'मानतुंगी स्तव' (१७ गाथा, सं० १८७९ माग, कृष्ण ३) की भी प्रति- अभय पोशाल में है। इनकी तीसरी कृति २४ जिन चरित्र दोहा वंध में रचित है (सं० १८७९ मधु, शुक्ल ५, गोठवाड़। जै० गु० क० के प्रथम संस्करण में मानतुंग स्तव का रचनाकाल सं० १७७९ छपा था[१९०] पर यह छापे की भूल लगती है। ये १९वीं वि० के कवि हैं।

दीप–

लोकागच्छीय धर्म सिंह के शिष्य थे। 'सुदर्शन सेठ रास' और वीर स्वामी रास नामक दो रचनाओं का विवरण मिला है। उनके आधार पर ये लोका० रूप > जीव > वरसिंह > सुजाणसिंह > जसवंत > रूपसिंह > दामोदर > धनराज > क्षेमकर्ण > धर्मसिंह के शिष्य थे। सुदर्शन सेठ रास (छप्पयदंछ में सं० १८३६ से पूर्व रचित है) इसकी प्रारम्भ की पंक्तियाँ—

वंदु श्री जिन महावीर धीर संजम व्रतधारी,
उपगारी अणगारसकल भविजन सुखकारी।
नर नार शीलधारी निपुण, होय सुखी पातिक हरे।

आदरे सील पाले अखंड कवड़ तास समोवड करे।

अंत— इह लोके सुजस पसरे इला, परलोके हुइ परमगति
आदरे सील पालै अखंड, कहे अेम दीपो कवित्त।

'वीरस्वामी नो रास'-

आदि— "श्री जिन वर्द्धमान पाअे प्रणमीइ,
भाव सहित श्री गौतम नमीइ।
X X X X
त्रैलोक्य मध्ये सौम्य कारक आज शासन अेहनउ,
चउबीस मा वर्द्धमान स्वामी धवल गाऊ तेहनउ।

इसकी प्रति खंडित है। कर्त्ता का नाम कहीं दीप मुनि मिलता है। रचनाकाल संबंधी पंक्तियाँ नहीं मिली, इसलिए रचनाकाल निश्चित नहीं है। जै० गु० क० के प्रथम संस्करण में इन्हें १९वीं शती में दिया था।[१९१] किन्तु उसके नवीन संस्करण में नही है। इनका विस्तृत विवरण न० सं० के ५वें खण्ड में पृ० १८४-१८८ पर दिया गया है और मरुगुर्जर हि० जै० सा० के वृ० इतिहास भाग ३ में पृ० २२२ पर प्रकाशित हो चुका है। वहाँ उन्हें धर्मसिंह के बजाय वर्द्धमान का शिष्य कहा गया है। चूँकि इनकी अन्य रचना गुणकरंड गुणावली चौ० का रचना काल अन्तर्साक्ष्य के आधार पर १८वीं वि० निश्चित है इसलिए इनका विवरण १८वीं में दिया जाना उचित है। सुदर्शन सेठ रास की प्रति १८३६ से पूर्व की है इसलिए रचना १८वीं शती के अंत या १९वीं शती के प्रारम्भ की हो सकती है, इसीलिए यहाँ भी उल्लेख कर दिया गया है।

दीपचंद कासलीवाल–

चूँकि इनका रचनाकाल १८वीं १९वीं शती दोनों था, इसलिए पूर्व क्रमानुसार इनका विवरण इस ग्रंथ के तृतीय खण्ड में दिया जा चुका है।[१९२]

दीपविजय–

रचना- स्थूलिभद्र नवरस दुहा सं० १८४९ से पूर्व रचित।

अंत— थुलिभद्र कोस्या भावतां पोहचे वंछित आस,
घर-घर ओछव अति घणा, नित प्रति लील, विलास
अेक करी थूलीभद्र तणी उदयरत्न नवढाल,
दूहा दीपविजये कह्या, गणतां मंगलमाल।

उदयरत्न ने यह रचना नव ढालों में की थी। दीपविजय ने उसमें स्वरचित दोहे मिलाकर यह नवीन रचना प्रस्तुत किया है।[११३] दीप विजय (कविराज) तपागच्छीय प्रेमविजय के प्रशिष्य और रत्नविजय के शिष्य थे। 'वटपद्र (बड़ोदरा) नी गजल' इनकी प्रसिद्ध प्रकाशित रचना है। यह ६३ कड़ी की कृति सं० १८५ मागसर शुक्ल १, शनिवार को पूर्ण हुई थी। इसका आदि इस प्रकार हुआ है—

सेवक ने वर दीपनी, भगिनी शखी (शचि) अवल्ल,
प्रणमी वटपद्र नयर नी, कहेस्युं अेक गजल।

रचनाकाल— पुरन किद्ध गजल अवल्ल अठार से बावन चित्त उलासे,
थावर वार मृगसीर मास तिथि प्रतिप्रद पक्ष उजासें।

गुरुवंदन— उदयो भले थाट उदयसूरि पाटह लक्ष्मी सूरी जिम भान आकासे
प्रेमेय रत्न समान वरनन सेवक दीपविजय इम भासे।

यह 'साहित्य' पु० २० अंक २ पृ० ७२ पर प्रकाशित है।

रोहिणी स्तवन (सं० १८५९ भाद्र शु० खंभात) का रचनाकाल—

संवत् अठार उगणसाठिनो अे, उज्वल भाद्रव मास;
दीप विजयें तप गाइओ अे करी खंभात चोमास। नमो:

अंत— सकल पंडितप्रवर भूषण प्रेमरत्न गुरु ध्याइया,
कवि दीपविजये पुण्य हेतें रोहिणी गुण गाइया।

यह जैन प्रबोध पुस्तक और जैन काव्यप्रकाश भाग १ में तथा जैन काव्यसार संग्रह पृ० ७० तथा अन्यत्र से प्रकाशित है। 'केशरिया जी लावणी अथवा ऋषभ देव स्तव' सं० १८७५; यह रत्नसागर भाग २ पृ० ४८६-९० और जैन सत्यप्रकाश अंक-५-७ पृ० २०० पर प्रकाशित है। 'सोहम कुल पट्टावली रास' (४ उल्लास सं० १८७७, सूरत) यह रचना सूरत के व्रजलाल के पुत्र अनोपचंद के लिए की गई थी। रचनाकाल इन पंक्तियों में दिया गया है।

संवत् अठार सतोतर वरसे, सक सतरसेहें बेहेताल;
श्री सुरत बंदिर में गाई, सोहमकुल गणमाल रे।
प्रेमरत्न गुरुराज पसाई, सोहम् पटधर गाया;
मनइछित लीला सहु प्रगटें, दीपविजय कविराया रे।''

यह पट्टावली समुच्चय भाग २ में प्रकाशित है। 'सूरत की गजल' (८३ कड़ी,

सं० १८७७ मागसर वद २) का।

आदि— श्री गुरु प्रेम प्रताप थे, उगति उपाइ अवल्ल;
वरनुं सूरत सेहरे की, अभिनव खूब गज्जल।

कलस— वंदिर सूरत सेहरे, ता वरनन इह कीनो;
सब सहेरां सिरताज, सूरत सहेर नगीनो।
तीको सूरत सेहेर, लख कोसां लग चावो;
देखन की जरा हौंस सो देखन पे आवो।
श्री गछपति महराज कुं, चित्रलेख लिखते लीऊ;
दीपविजय कविराज ने इह सूरत सेहेर वरनन किऊँ।

यह जैन युग पु० ४ अंक ३-४ पृ० १४३-१४६ पर प्रकाशित है। इन्होंने खंभात की ग़जल (१०३ कड़ी सं० १८७७ से पूर्व);

जंबूसर की ग़जल (८५ कड़ी १८७७ से पूर्व);

उदेपुर की ग़जल (१२७ कड़ी सं० १८७७ से पूर्व), की भी रचना की है। इस प्रकार इन्होंने ग़जल का प्रयोग विविध नगरों के वर्णन में करके जैन साहित्य में एक नवीन विधा का प्रयोग किया है। पार्श्वनाथ ना पांच वधावा (गर्भित स्तवन) सं० १८७८ में पार्श्वनाथ के पंच कल्याणकों का वर्णन तथा उनके जन्मस्थान बनारस का भी वर्णन किया है। इन्होंने 'कावी तीर्थ वर्णन (३ ढाल सं० १८८६) नामक रचना में एक अन्य प्रमुख जैन तीर्थ का वर्णन करके अनेक स्थानों का भौगोलिक, ऐतिहासिक और सामाजिक परिचय दिया है। इसका रचनाकाल निम्न पंक्तियों में है-

संवत् अठार से है छियासीयें, वि० गाया तीरथराज, गु०
ऋषभ, धरम जिनराज जी वि०, दीपविजय कविराज; गु०।

यह प्राचीन तीर्थ संज्झाय पृ० १७१-१७२ और जैन सत्य प्रकाश पु० ५ अंक ११ पृ० ३९२ पर प्रकाशित है। अडसठ आगम नी अष्ट प्रकारी पूजा (सं० १८८६ जंबूसर) में तपागच्छ विजयानंद सूरि, समुद्र सूरि और धनेश्वर सूरि की वंदना की गई है। रचना का आधार भगवती सूत्र है।

रचनाकाल— संघ आग्रह थी आगमपूजा, कीधी अष्ट प्रकारी रे,
संवत् अठार सें हे छयासी वरसे (१८८६) आगम नी बलिहारी रे।

नंदीश्वर महोत्सव पूजा (सं० १८८९ सूरत और अष्टापद पूजा सं० १८९२

रांदेर) भी सांप्रदायिक पूजा पाठ की विधि पर आधारित रचनायें हैं। दोनों पूजा ग्रंथ विविध पूजा संग्रह में प्रकाशित है।

महावीर ना पंचकल्याणक ना पांच वधाना का आदि—

वंदी जग जननी ब्रह्माणी, दाता अविचल वाणी रे,
कल्याणक प्रभुना गुणखाणी, थुणस्यूं ऊलट आणी रे।

यह रत्नसार भाग २ पृ० २१९ और गहूंली संग्रहनामा ग्रंथ भाग १ पृ० १-८ पर प्रकाशित है।

मणिभद्र छंद एक छोटी रचना है। इसमें रचनाकाल नहीं है। चंदनों गुणावलि पर कागल अथवा चंद्रराज गुणावली लेख ३२ कड़ी की छोटी रचना है। यह जिनेन्द्र भक्ति प्रकाश पृ० ३९१ और जैन संज्झाय माला भाग २ पृ० ७४ पर प्रकाशित हैं। चर्चा बोल विचार अथवा तेरापंथी चर्चा अथवा नवबोध चर्चा (सं० १८७६, उदयपुर) उदयपुर के महाराणा श्री भीमसिंह के समय नाथ द्वारा में तेरापंथी भारमल जी तथा खेतसी जी के साथ ९ बोल की चर्चा हुई, उसी पर यह रचना आधारित है। आदि "श्रीमन् तपागच्छीय भट्टारक श्री विजयसूरि लक्ष्मीसूरि उपगारात सं० १८७६ वर्षे पं० दीपविजय कविराज बहादुर सो गुजरात देशे बडोदरा के वासी सो भी उदयपुर महाराणा श्री भीमसिंह जी को आशीवचन देने कुं आये तब उदयपुर मध्ये तथा नाथ दुवारा मध्यें तेरैपंथी भारमल जी तथा खेतसी जी के साथ ९ बोल की चर्चा हुई तथा अनुकंपा आश्री चर्चा भई श्री तेरे पंथी कौ उपदेश सुनि के साधु मार्ग विवहार देखिकै पं० दीपविजय कविराज बहादुर कौं श्रद्धा तेरै पंथी की भई।"[१९४] यह चर्चा तेरापंथी और तपागच्छीय मतमतातंर से संबंधित है। पहले देसाई ने ढूढिया ९ बोलचर्चा तथा तेरापंथी चर्चा नामक दो कृतियों का उल्लेख किया गया था, पर वह ठीक नहीं था।

दीपविजय– ।।

कृष्णविजय के शिष्य थे। आपने 'चौबीसी की रचना सं० १८७० से पूर्व की। इसमें इन्होंने अपने गुरु का नाम श्रीपतिविजय लिखा है किन्तु दूसरी कृति 'नमि जिन स्तवन' में गुरु का नाम कृष्णविजय बताया है। यदि श्रीपति का अर्थ कृष्ण लिया जाय तो गुरु का नाम कृष्णविजय माना जा सकता है। चौबीसी के प्रारंभ में आदि जिन ऋषभ की वंदना है, यथा—

प्रह ऊठी बंदू रे ऋषभ जिणंद ने साहिब जी, नाभी नरेन्द्र कुल सिणगार।
रा सोरठ में हे तीरथ थापीयो साहिब जी,वृषभलंछन हे चामीकर देह रा।

श्रीपतिविजय गुरु का नाम स्मरण इन पंक्तियों में है—

काल अनादे हे तीरथ अे थटो सा०, करी अखीयायत जूगादीराय;
श्रीपतिविजय गिरीगुण गावतां सा०, आतमज्ञान दीप प्रगटाय। रा०

लेकिन नमिजिन स्तवन की इन पंक्तियों में गुरु का नाम कृष्णविजय है। यथा—

ऋद्धि वृद्धि बहु में लही, गुरु कृष्णविजय सुपसोये रे,
दीप सेवके विनती कही।

'चौबीस महावीर स्तवन की अंतिम पंक्तियाँ निम्नवत है—

जगत गुरु वीर परम उपगारी, निरुपाधिक दान दांतारी;
पंचमगति दायक स्वामी दीपे विबुध अंतरजामी,
शिवनारी हृदय विसरामी।

'सामायक ३२ दोष संज्झाय' का प्रारंभ—

श्री जिन सारद सदगुरु प्रणमी भाखुं सामायिक दोष जी।

अंत— श्रीपतिविजय सेवक इम दीपे, सामायक गुण गाय रे।

इसमें श्रीपतिविजय को गुरु कहा है। जै० गु० कवियों के संस्करणों में श्रीपति का अर्थ कृष्ण लिया गया है और गुरु नाम कृष्णविजय बताया गया है।[१९५]

कृष्णविजयशिष्य के नाम से एक रचना 'मृग सुंदरी महात्म्य' गर्भित छंद (५६ कड़ी, सं० १८८५ फाल्गुन शुक्ल, पालणपुर) का विवरण मो० द० दे० ने जै० गु० क० के प्रथम संस्करण में दिया था और यह संभावना व्यक्त की थी, यह कृष्णविजय शिष्य दीपविजय ही होंगे किन्तु जै० गु० क० के नवीन संस्करण में दीपविजय की रचनाओं के साथ इस रचना का उल्लेख नही है अत: यह शंका स्वाभाविक है कि शायद यह कृष्णविजय शिष्य कोई अन्य व्यक्ति हो। इसका रचनाकाल निम्नांकित पंक्तियों में दिया गया है-

अठार पचासिय फागुण मास, श्वेतभुवन तिथि भाखी खास;
पालणपुर मां कियो अभ्यास, वामा सुत मन पूरी आस।
प्रेमे सेवो दया अेकतार, लहो जस कांति रूप अपार।
कहे कवि कृष्णविजय नो शिष्य, जयणा धमो निसदीस।

संयम के दस स्थानों का वर्णन इन पंक्तियों में किया गया है—

खांडण पीसण चूलक ठांम, चैत्य सामायक जल विश्राम;
पोढ़ण धान विजय भोजन, अे दस ठामें करीयें जतन।[१९६]

दुर्गादास–

इनका जन्म सं० १८०६ में भाखाड़ जंक्शन के पास सालटिया ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम शिवराज और माता का सेवा देवी था। १५ वर्ष की वय में सं० १८२१ में इन्होंने मेवाड़ के ऊटांला (वल्लभ नगर) नामक स्थान में आचार्य कुशल दास (कुशलो जी) से दीक्षा ली। ये पक्के साधक और संयम पालन के दृढ़वती थे। ये अच्छे कवि भी थे और पदों, संज्झायों ढालों में अनेक स्तवन संज्झाय, रास, चरित और पदों की रचना की। नोकरवारी स्तवन, पार्श्वनाथ स्तवन, जंबू जी की संज्झाय, महावीर, तेरह अभीग्रह की संज्झाय, गौतमरास, ऋषभ चरित, उपदेशात्मक ढाल, सवैया और स्फुट पद आपकी प्राप्त रचनायें है आपके पद भावप्रवण और वैराग्य प्रधान हैं। सं० १८८२ श्रावण शुक्ल दसमी को जोधपुर में इनका स्वर्गवास हुआ।[१९७]

देवचंद–

आप गांगड निवासी वीसा श्रीमाली श्रावक थे। इन्होंने नेमनाथ शलोको की रचना सं० १९०० श्रावण कृष्ण पंचमी, शुक्रवार को गांगड में की। इनकी दूसरी रचना 'विवेकविलास नो शलोको' सं० १९०३ की है। अत: इन्हें २०वीं शती में स्थान देना उचित होगा। नमूने के लिए प्रथम शलोको की दो पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं-

सरसति माता हुं तुम पाय लांगुं,
देव गुरु तणि आगना मांगु।
जिह्वा अग्रे तु बेसने आई, वाणी तणी तो करजो सवाई।

यह रचना शलोका संग्रह में प्रकाशित है।[१९८]

(मुनि) देवचंद–

आप जिनलाभ सूरि के शिष्य थे। ऐ० जैन काव्य संग्रह में 'जिनलाभ सूरि गीतानि' शीर्षक के अन्तर्गत संकलित दूसरा गीत आपका है जिसकी अंतिम पंक्तियाँ उदाहरणार्थ आगे प्रस्तुत की जा रही है-

अरज अम्हीणी पूज्य अवधारियों सूरीसर सिरिचंद;
बेकर जोड़ी त्रिकरण भावसुं वंदै मुनि देवचंद।[१९९]

देवरत्न–

लघु० तपागच्छीय लक्ष्मीसागर सूरि > चंद्ररत्न > अभयभूषण > लावण्यभूषण > हर्ष कनक > हर्ष लावण्य > विजयभूषण > विवेक रत्न > श्री रत्न > जयरत्न > राजरत्न > हेमरत्न > विजय रत्न के शिष्य थे। यह विस्तृत गुरु परम्परा कवि ने अपनी रचना 'गजसिंह कुमार रास' (सं० १८१५ कार्तिक शुक्ल, विद्युतपुर (बीजापुर) में दी है। यह विस्तृत रचना चार खण्डों ५१ ढालों में १५७२ कडी की है। इसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है-

प्रथम इष्टपदेष्ट जे परमरूप परमेष्ट;
अरूणादधिक जे ज्योतिमय, सेविजस उगरेष्ट।
हरिवांगी निरगंगी प्रभू, पसरित कीर्ति तरंग,
प्रणितोहं तस नम्र सिर, पाद पद्म चितरंग।
दान थी सुखलछी हुई, भाव थी मुक्ति प्रसंग;
तप थी तिम ज निर्वाण पद, पिण जो रही अभंग।
शील थी भय टलि सवि महा, युद्धादिक जे अष्ट,
शील खड्ग जेहनी करी तेह थी कष्ट पनष्ट।
X X X X X
इह भव पर भव शील थी लही सौख्य अपार,
राजा ऋद्धि समृद्धि जिम, जगि गजसिंह कुमार।

रचना और रचना संबंधी अन्य विवरण इन पंक्तियों में है, यथा—

संवत तिथि अष्ट भू अब्द जेह, नभ वसु नृप शाक अेह है;
मास बहुल (कार्तिक) जोष्णि सित पक्ष व्राह्मि सुत धरत प्रतक्ष है।

ते दिवसे पूर्यो उल्लास, सहुने लील विलास हे,
ढाल अेकावन उलासें चार, दूहा त्रिशत इग्यार हे।
गाथा तिथि सत बहुतर थोक, सार्ध विंशति शत श्लोक है;
विद्युतपुर वास्त्व्य अे कीधो, सहिब थी यश लीधो हे।

इसकी अंतिम पंक्तियाँ आगे उद्धत की जा रही है—

इम जाणि जे व्रह्मवर्त्त आराधे, अति उज्वल पद साधे हे
देव कहें होये मंगलमाला, लही सुखलछि रसाला हे।[२००]

जै० गु० क० के प्रथम संस्करण में गुरु का नाम विनयरत्न छपा था किन्तु उद्धत अंश में स्पष्ट ही नाम विजयरत्न है इसलिए नवीन संस्करण के संपादक ने गुरु का नाम विजयरत्न ही माना है।

देवविजय–

आप तपागच्छीय विनीतविजय के शिष्य थे। आपकी रचना है 'अष्टप्रकारी पूजा' (सं० १८८१, आसो, शुक्ल ३, शुक्रवार, पादरा) इसका आदि—

अजर अमर अकलंक जे, अगम्य रूप अनंत,
अलख अगोचर नित्य नमुं, जे परम प्रभुतावंत।

इसमें आठ प्रकार की पूजा विधि का वर्णन किया गया है, यथा—

प्रथम नवण पूजा करो, बीजा चंदन सार,
त्रीजो कुसुम वली धूपनी, पंचमी दीप मनोहार।

यह रचना कवि ने नान्हा सुत जीवण के आग्रह पर रच कर अपने गुरु विनीतविजय की सेवा में समर्पित किया-

सकल पंडित सिर सेहरो अे, श्री विनीतविजय गुरु राय,
तास चरण सेवा थकी अे, देवना वंछित थाय।

रचनाकाल— शशि नयण गज विधु वरु अे, नाम संवछर जाण,
तृतीय सित आसो तणी अे, सुक्करवार प्रमाण।''
पादरा नगर विराजता अे, श्री संभव सुखकार,
तास पसाय थी अे रचीअे पूजा पूजाअष्टप्रकार।

आपकी दूसरी रचना 'अतिचार मोटा (सं० १८२२?) संदेहास्पद है। इसमें श्रावकों के लिए प्रतिक्रमण विधि का वर्णन किया गया है। यह रचना मरुगुर्जर गद्य में है। इसके अंत की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

इति जिनवर वृंद शुद्ध भावेन कीर्ति विमल मिह जगत्यां पूज्यंत्यष्टधा ये। इसके आधार पर जै० गु० क० के प्रथम संस्करण में इस रचना को भी देसाई ने कीर्ति विमल कृत बताया था किन्तु नवीन संस्करण के संपादक जयंत कोठारी का स्पष्ट विचार है कि शब्द 'कीर्ति विमल, व्यक्ति वाचक संज्ञा नहीं अपितु जिनवर वृंद की विशेषता का सूचक है। इसलिए नवीन संस्करण में इसे स्पष्टतया उन्होंने देवविजय की रचना बताया है।[२०१]

देवहर्ष–

ये खरतरगच्छ की कीर्तिरत्न सूरि शाखा के प्रसिद्ध आचार्य जिनहर्ष सूरि के सूरित्व काल में रचनाशील थे। इन्होंने दो ग़जले बनाई हैं-पाटण ग़जल और डीसा नी ग़जल, जिनका विवरण आगे दिया जा रहा है। पाटण ग़जल (१३३ कड़ी, सं० १८७२ से पूर्व)।

आदि— सरस वचन द्यो सरसती, पामी सुगुरु पसाय;
विधन व्याधि भवभयहरण, विमल ज्ञान वरदाय।
परमबुध परगट कवी अर्णव जिम गंभीर,
मेरी बुध तिम मंद है ज्युं छीलर सर नीर।

जैसा प्रथम खण्ड में मरुगुर्जर शब्द की व्याख्या करते समय कहा गया था कि मरुगुर्जर भाषा राजस्थानी गुजराती और हिन्दी के मिलेजुले रूप की एक शैली है जिसका प्रयोग जैन साधु और कवि अपनी रचनाओं में अपभ्रंश के बाद से करते आये है। यह शैली रूढ़ हो गई और राजस्थानी, गुजराती हिन्दी का स्पष्ट विकास होने पर भी कुछ परिवर्तित रूप में प्रयुक्त होती रही किन्तु १९वीं शती तक आते-आते खड़ी बोली हिन्दी का प्रभाव पड़ोसी विभाषाओं-भाषाओं पर पड़ने लगा था। इसलिए इस ग़जल में यत्र-तत्र खड़ी बोली के शब्द संज्ञा, क्रिया आदि का स्पष्ट प्रयोग दिखाई पड़ता है। ग़जल उर्दू से आई काव्य-विधा है इसलिए भी इस पर खड़ी बोली का प्रभाव स्वाभाविक है क्योंकि उर्दू भी खड़ी बोली की एक शैली है। ऊपर उद्धृत पंक्तियों में प्रयुक्त शब्द 'मेरी है' आदि उदाहरणार्थ देखे जा सकते है-

"खरी धरा नवखंड मैं, सत्तर सहस्स गुजरात;
संखलपुर राणीस्वरी, मोटी बेचर मात।"

गुरु का उल्लेख इन पंक्तियों में है—

खरतरगच्छ सिरताज, श्री जिनहर्ष सूरि गुरु राजे,
सेवे पवन छत्ती गच्छ संघला सिर गाजे।
पाटण जस कीधो प्रगट, जिहां पंचासर त्रिभुवन धणी;
कवि देवहर्ष मुख की रटे, कुशलरंग लीला धणी।

अंत— गाइ ग़जल गुन माला क,
खोल्या सुजस का ताल्या क।

यह ग़जल भोगीलाल सांडेसरा द्वारा संपादित 'फार्बुस गुजराती सभा त्रैमासिक'

वर्ष १९४८ अप्रैल सितंबर अंक में प्रकाशित है।

आपकी दूसरी रचना 'डीसा नी ग़जल' (१२० कड़ी) अगरचंद नाहटा द्वारा संपादित 'स्वाध्याय' पु० ७ अंक ३ में छपी है। इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ इस प्रकार है—

चरण कमल गुरु लाय चित्त, सबल जन कुं सुखदाय;
के प्रतिबोधी दृढ़ किया, विपुल सुग्यांन बताय।
गाऊं गुणदीसा गुहिर, सिद्ध माता सुध थांन,
समरुं देवी अंबा सिद्ध, विधन विडार दीयै धन वृद्ध।

कलश— सुणतां मंगलमाल देवे कुशल गुरु वांछित दाता,
चुगली चोर मद चूर सदा सुख आवै ज्ञाता।
चंद्र गच्छ सीर चंद गुरु जिनहर्ष सुरीश्वर गाजे,
प्रतपो द्रूय जिम पूर, भज्यां सब दालिद्र भाजे।
पुन्य सुजस कीधो प्रगट, जिहतां सिद्ध अंबा माता धणी,
कवि देवहर्ष मुख की कहे, दीपै सुजस लीला घणी।[२०२]

देवीचंद–

पार्श्वचंद सूरिगच्छ के लेखक थे। इन्होंने 'राजसिंह कुमार चौ०' (१० ढाल, सं० १८२७ कार्तिक शुक्ला ५, भोमवार, मेडता) की रचना की हैं।

आदि— परम देव प्रणमी करी, वर्द्धमान भगवान,
परमेष्ठी नवकार नौ फल करहुं वषांण।

इसमें राजसिंह कुमार की कथा के दृष्टांत द्वारा नवकार मंत्र के माहात्म्य पर प्रकाश डाला गया है। इसमें शिवकुमार, डुंडक आदि का भी उदाहरणार्थ उल्लेख किया गया है।

अंत— गछ निरमल रे सूरि पासचंद्र नो,
तस गुण पिणरे भाखे प्रोहित इंद्रनो।
X X X X
करी सुख सुं नवम थानक सिख भाखे अे सही,
ऋष देवीचंद बोली ढाल दसमी गहगही।

रचनाकाल— नगर मेड़ता ठाम मोटो अठार से सत बीस में,
मास कार्तिक शुक्ल पंचमी भोमवार कर निरगमें।

जैन गुर्जर कवियों के प्रथम संस्करण में पहले इस रचना का कर्त्ता देवीदास

को बताया गया था, पर कवि का नाम देवीचंद ही है।[२०३]

देवीदान नाइता–

(वारोट के चारण) रचना-वैताल पचीसी सं० १८३६;

आदि— प्रणमुं सरसति माय, वले विनायक वीनवुं,
बुद्धि सिद्धि दीवाय, सन्मुख थाये सरस्वती।
देश मरुस्थल देखि नौ कोटी में कोंट नव,
पिण बीकानेर विशेष, मन निश्चै कर जाणज्यौ।
तिहां राज करै राठौड़, करन सूर सुत करन सो,
मही क्षत्रियां सिरमौड़ खत्रवटि खुभांणा खरो।
तस कुंवर अनूपसिंह प्राक्रम सिंध सो,
भेदक भल गुण भूप, आगें तेऊ आपस दीयो।

यह रचना बीकानेर रियासत के कुमार अनूपसिंह के आश्रय में लिखी गई लगती है। इसकी कथा संस्कृत में विरचित विक्रम वैताल कथा पर आधारित है यथा—

संस्कृत की सब्धाइ कथा विक्रम वैताल री,
भाषा कहि संभलाइ, तु देइदान नाइता।

इसमें गद्य का भी प्रयोग यत्र-तत्र किया गया हैं। वह भाषा विकास की दृष्टि से ऐतिहासिक महत्त्व का है, इसलिए कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत है-

दक्षिण दिश रै विषै मालवो देश तटै उजैणी नाम नगरी, तिहां राजा विक्रमादित्य राज करै, तिनकौ राजा महादानी पर दुख कारण सूरवीर वत्तीस लक्षण सहित। अेकदा राजा मुख्य प्रधान मुहंता मंत्री सिकदार सितरखांन बहूतर उमराव सभा सहित बैठो।

अंत— कौतुक कुंवर अनूपसिंध कानडे लिखी बणाई,
बात्त पचीस बैताल री, भाषा कही बहू गाई।[२०४]

राजस्थानी गद्य भाषा के विकास की दृष्टि से इस प्रकार के ग्रंथों का महत्त्व निर्विवाद है।

देवीदास–

इन्होंने "चौबीस तीर्थंकर पूजा" नामक रचना सं०, १८२१ श्रावण शुक्ल

१ को पूर्ण की। इसकी प्रति दिगंबर जैन मंदिर टोडा रायसिंह, टोंक में है।

रचनाकाल— संमत अष्टादस धरौ ताऊपर इकबीस,
सावन सुदि परिवा सुं रविवासर धरा उगीस।
वासव धरा उगीस स गामनाम सदु गौडो।
जैनी जन बसवास औड़छै श्योपुर ठोड़ो।
सांवथसिंध सु राज आज परजा सब थवतु,
जह निरभय करि रचीं देवपूजा भरि संवतु।

कवि परिचय—गोलालारे जानियौ बंस खरो वाहीत,
सोनविपार सुबंदू तसु पुनि कासिल्ल सुगोत।
पुनि कासिल्ल सुगोत सीक सीकहारा केरो।
केलि गाम के बासनहार संतोषु संभारे,
कवि देवी सुपुत्र दुगुडै गोलारारे।[२०५]

उक्त अवतरणों से ज्ञात होता है कि कवि देवीदास कासलिवाल गोत्रीय गोलार वंश के जैनी थे और केलि ग्राम के निवासी थे। यह गाँव ओड़छा राज्य में था जहाँ उस समय राजा सामंतसिंह का राज्य था। उनके शासन में निर्भय होकर यह पूजा रची गई। प्राचीनकाल से हमारी शासन परम्परा धर्म निरपेक्ष रही है। राजा हिन्दू हो तो भी जैन, बौद्ध, हिन्दू, सिक्ख आदि सभी सम्प्रदायों के लोग निर्भय होकर अपना धर्म-कर्म, पूजा-पाठ करते थे। आज धर्म हीनता और धर्म निरपेक्षता को पर्यायवाची बताया जा रहा है और सामान्य जनता को दिग्भ्रमित किया जा रहा है।

देवीदास–

दुगोदह केल गाँव जिला झाँसी के निवासी थे। इन्होंने 'परमानंद विलास' सं० १८१२, प्रवचनसार, चिद्विलास वचनिका और चौबीसी आदि की रचना की।[२०६]

देवीदास खंडेलवाल–

ये वसवा के रहने वाले थे। इन्होंने भेलसा में 'सिद्धांत सार संग्रह वचनिका' की रचना सं० १८४४ में की।[२०७] इसका अन्य उद्धरण- विवरण नहीं प्राप्त हो सका।

दौलतराम कासलीवाल–

जैन साहित्य में दौलतराम नाम के तीन कवि हुए हैं जिनमें एक आगरा निवासी पल्लीवास थे। दूसरे बूँदी के थे। तीसरे दौलतराम ढूढाड़ प्रदेश के वसवा ग्रामवासी श्री

आनंदराय के सुपुत्र थे। इनका जन्म आषाढ़ चतुर्दशी सं० १७९९ में हुआ था। इनका जीवन वसवा के अलावा जयपुर, उदयपुर और आगरा में भी व्यतीत हुआ था। आगरा में बनारसीदास, भूधरदास और ऋषभदास के संपर्क में रहकर इन्हें साहित्यिक स्फुरणा हुई। ये जयपुर राज्य में महत्त्वपूर्ण पद पर रहे। राजकाज में व्यस्त होते हुए भी इन्होंने अध्यात्म, जिनपूजा, जैनदर्शन, शास्त्रचर्चा और प्रवचन आदि के साथ साहित्य सृजन में पर्याप्त यश अर्जित किया। इनके जोधराज आदि छह पुत्र थे। इन्होंने गद्य-पद्य में १८ पुस्तकें लिखी जिनमें ९ पद्य, ७ गद्य और २ टीका ग्रंथ है। कुछ रचनाओं का नाम आगे दिया जा रहा है-

"जीवंधर चरित १८०५, त्रेपन क्रिया कोष १७९५, अध्यात्म बारह खड़ी, विवेकविलास, श्रेणिक चरित १७८२, श्रीपालचरित १८२२, चौबीस दण्डक भाषा, सिद्धपूजाष्टक और सार चौबीसी आदि। इनकी कुछ रचनायें १८वीं शती की और कुछ १९वीं शती की हैं इसलिए पूर्व योजनानुसार इनकी संक्षिप्त चर्चा तृतीय खंड (१८वीं वि०) में की जा चुकी है। १९वीं शती की कुछ प्रमुख रचनायें इस प्रकार हैं-

आदि पुराण भाषा सं० १८२४, पद्मपुराण भाषा १८२३ माघ शुक्ल ७, हरिवंश पुराण भाषा १८२९ चैत्र शुक्ल ९, यह जिनसेन कृत संस्कृत ग्रंथ हरिवंश पुराण की वचनिका है। इससे लगता है कि ये गद्य लेखक थे और भाषा-टीका का कार्य अधिक किया है। पद्मपुराण १८२३, यह रविषेणाचार्य कृत ग्रंथ का ब्रज-खड़ी मिश्रित ढूढाड़ी भाषा में गद्यानुवाद है। हरिवंश पुराण शायद इनकी अंतिम रचना है।[२०८]

पुण्यास्रव कथा कोष १७७७ की रचना है। इसमें ५९ कथायें संग्रहीत है। इसके गद्य का नमूना उपलब्ध है। परमार्थ प्रकाश और सार समुच्चय शीर्षक कृतियों का काल निर्धारण नहीं हो पाया है।

इन तमाम रचनाओं के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि दौलतराम कासलीवाल १८-१९वीं शती के संक्रातिकालीन कवियों-साहित्यकारों में श्रेष्ठ स्थान के अधिकारी हैं। उन्होंने ढूढ़ारी (राजस्थानी) गद्य और पद्य के साहित्य भंडार की श्री वृद्धि में सराहनीय योगदान किया है।

धर्मचंद । –

पार्श्वगच्छ के हर्षचंद इनके गुरु थे। इन्होंने 'जीव विचार भाषा' दोहा सं० १८०६ चैत्र शुक्ल द्वितीया, बुधवार को मकसूदाबाद में और 'नवतत्त्व भाषा दोहा' की रचना सं० १८१५ माह शुक्ल पंचमी को मकसूदाबाद में की।[२०९]

धर्मचंद II –

ये तपागच्छ के विजयदया सूरि; खुशालविजय अने कल्याणचंद के शिष्य थे। इन्होंने सं० १८९६ भाद्र शुक्ल ४, दमण वंदर में 'नंदीश्वर द्वीप पूजा' की रचना की। उसका प्रारम्भ इन पंक्तियों से हुआ है-

प्रणमु शांति जिणंद ने चउद रयणपति जेह,
कंचन वरणे सोहतो, लक्षणें लक्षित देह।
सुरगिरि अष्टादस गिरि, गिरनार आबू तेम,
समेतशिखर अे पाँच ने वंदु बहु धरिं प्रेम।
X X X X X
विस्तीरण जिन भुवन मां रचि नंदीश्वर द्वीप,
तदनंतर प्रभु थापिने, करो अभिषेक प्रदीप।

गुरुपरम्परा— तपगच्छपति श्री दयासूरिना, खुशालविजय उवझायों,
तास बंधव सुगण गीतारथ, कल्याणचंद सवायो रे।
विजय देवेन्द्र सूरिश्वर राज्ये, अे अधिकार रचायो,
दमण बिंदरे रहि चोमासु, ऋषभदेव सुपसायो रे।

रचनाकाल— अठार से छनुं भाद्रव मासे, संवच्छरि दिन गायो,
प्रभु समुदाय कवि धर्मचंद्र, संघ सकल हरषायों रे।[२१०]

यह रचना विविध पूजा संग्रह पृ० ३३१-३५० और विधि विधान साथे विविध पूजा संग्रह में प्रकाशित है।

धर्मदास–

आप लोकागच्छीय मूलचंद के शिष्य थे। आपकी रचना 'अठार पाप स्थानक नी संज्झाय १८ ढालों में सं० १८०० भाद्र कृष्ण १०, बुधवार को अहमदाबाद में पूर्ण हुई। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ निम्नांकित है-

प्रथम जिणेसर पाय कमल, प्रणमी बेकर जोडि,
पाप अढ़ारे वर्णवुं, सूणज्यो आलस मोडि।
मुज गुरु ऋषि मूलचंद जी, तास सेवक धर्मदास,
ते गुरुना पय पंकज नमी, भणसुं मन उल्लास।

रचनाकाल— संवत् सत अठार वरसे, भाद्रवा बदि दसमी दिने,

शहेर अहमदाबाद बुध दिनकर जोडि इणि परे भणे।

इसमें कान, धर्मदास, मूलचंद और बाल ब्रह्मधर का उल्लेख हुआ है। जै० गु० क० के नवीन संस्करण के संपादक जयंत कोठारी ने बाल ब्रह्मधर का अर्थ ब्रह्मचारी बताया है। इस तरह कवि मूलचंद जी का शिष्य है। इस रचना में १८ पापों का वर्णन और उनसे बचने के लिए चेतावनी दी गई है।[२११] कोठारी जी गुरु परम्परा में उल्लिखित 'कान' शब्द को भ्रष्ट पाठ का परिणाम मानते है किंतु मुझे कांन जी गुरु परम्परा के शीर्ष पुरुष प्रतीत होते है। जो हो, यह विचारणीय है। रचना काव्य दृष्टि से सामान्य किन्तु धार्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

धर्मपाल--

आप पानीपत निवासी गर्ग गोत्रीय अग्रवाल श्रावक थे। इनके पूर्वज भोजराज और पृथ्वीपाल तेजपुर में रहते थे। वहाँ से चलकर ये लोग पानीपत में रहने लगे थे। इनके गुरु सहसकीर्ति थे। 'श्रुतपंचमी रास' और 'आदिनाथ स्तवन' नामक इनकी दो रचनायें ज्ञात है, जिनका विवरण आगे दिया जा रहा है। श्रुत पंचमी रास (सं० १८९९) का

रचनाकाल— नव सत सै नव दोइ अधिक संवत तुम जाणइ,
माघ मास रवि दिन पंचमी, तुम ऋषि सुभ आणउ।

गुरु का उल्लेख इन पंक्तियों में है-

सहसकीरत गुरु चरण कमल नमि रास कीयो,
सुधे पण्डीत जन मति हास करीयो।

इनकी दूसरी रचना 'आदिनाथ स्तवन' की प्रारम्भिक पंक्तियाँ देखें-

बीतराग अनंत अतिबल मदन मान विमर्दनं,
वसु कर्म्म घन सारंग षंडन, नविवि जिन पंचाननं।
वर गर्भ जन्म तपो गुनं, दुति रूढ़ प्रभु पद्मासनं,
पदपिंड रूप निरजो जनं, रति सुकल ध्यान निरंजनं।
X X X X X X
दस अष्ट दोष विवर्जितं प्रतिहार अष्ट अलंकृत,
जर जन्म मरण निकंदितं, धनपाल कवि कृत वंदितं।[२१२]

इस रचना का रचनाकाल ज्ञात नहीं है।

धीरविजय–

आपने सं० १८४६ से पूर्व यशोविजय कृत मरुगुर्जर रचना सीमंधर स्तव पर बालावबोध की रचना की है। इनकी गद्यशैली का नमूना उपलब्ध नहीं हो सका।[२१३]

नंदराम–

ये स्थानकवासी जैन कवि थे। इनका मुख्य निवास स्थान राजस्थान था किन्तु ये पंजाब में अधिक विहार करते थे। इनकी भाषा में राजस्थानी प्रयोग अधिक है। इन्होंने अधिकतर रचनायें १९वीं शताब्दि में और कुछ २०वीं शती में लिखी है। इनका रचनाकाल १९वीं शती का अंतिम चरण और २०वीं का प्रथम चरण है, इसलिए इनकी चर्चा यहाँ कर दी जा रही है। रूक्मिणी मंगल चौपइ सं० १८७६, होशियारपुर; शत्रुघ्न चौ० सं० १८९९ फरीद कोट, भीमकुमार चौ० सं० १९०१ होशियारपुर, लब्धिप्रकाश चौ० १९०३ कपूरथला, ज्ञानप्रकाश १९०६ कपूरथला, और बावनी नामक इनकी रचनायें उपलब्ध है।[२१४]

श्री मो० द० देसाई ने इनका नाम नंदलाल बताया है और इन्हें रूक्मिणी मंगल चौ० का कर्त्ता बताया है। इसका भी रचनाकाल सं० १८७६ और रचना स्थान होशियारपुर लिखा है। अत: यह निश्चित रूप से वही चौपई है जिसे नाहटा जी ने नंदराम की कृति बताया है।[२१५] नंदलाल स्थानकवासी संप्रदाय के आचार्य धर्मदास की परम्परा के आचार्य थे। इनके पश्चात् माधव मुनि आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए थे।[२१६]

नंदलाल छाबड़ा–

आपने 'मूलाचार की बचनिका' सं० १८८८ में लिखी।[२१७] यह रचना इन्होंने ऋषभदास निगोता के सहयोग से की थी।

नथमल बिलाला–

ये मूलनिवासी आगरा के थे लेकिन बाद में भरतपुर और हिंडौन में रहते थे। इनके पिता का नाम शोभाचन्द्र था। इन्होंने सिद्धान्त सार दीपक की रचना सुखराम की सहायता से भरतपुर में की और हिंडौन में अटेर निवासी पाण्डे बालचन्द्र की सहायता से 'भक्तामर स्तोत्र' भाषा की रचना सं० १८२९ में की। इन दोनों ग्रंथों के अलावा आपने जिनगुण विलास १८२२, जीवंधर चरित १८३५, अष्टान्हिका कथा, नाग कुमार चरित्र १८३४ और जंबू स्वामी चरित्र नामक रचनायें स्वयं स्वात: सुखाय की। कवि ने आत्म परिचय इन पंक्तियों में दिया है-

नंदन शोभाचन्द्र को नथमल अति गुनवान,
गोत विलाला गगन में ऊग्यो चंद समान।
नगर आगरो तज रहे हीरापुर में आय,
करत देखि उग्रसैन को कीनो अधिक सहाय।[२१८]

आप भरतपुर रियासत के खजांची हो गये थे और दरबार में बड़ा सम्मान था। आपकी कविता साधारण कोटि की है।[२१९]

भक्तामर स्तोत्र कथा का रचनाकाल ज्येष्ठ शुक्ल १०, सं० १८२८ ठीक लगता है।[२२०] नागकुमार चरित्र का रचनाकाल सं० १८३७ माह शुक्ल ५-[२२१] जिन समवशरण मंगल (सं० १८२१ वैशाख शुक्ल १४);। कवि नथमल विलाला ने यह रचना कबीरचंद की सहायता से पूर्ण की थी, यथा—

चंद फकीर तै मूल ग्रंथ अनुसार,
समोसरन रचना कथन भाषा कीनी सार।[२२२]

नयनंदन–

आपने 'इरियावही भंगा' की रचना की है। इसकी प्रारंभिक पंक्ति इस प्रकार है- "इरियावही ना मिच्छामि दुक्कड़ लाख १८ सहस २४ शत १२०, जीवरा भेद ५६३, तिणरो विचारा लिखियइ छइ।" अंतिम पंक्ति-

"इरियावही ना मिच्छामि दुक्कड़ थाइ सही १८, २४, १२० जड़ावा" इति इरियानही रा भंगा।"[२२३]

नयनसुखदास–

आप जैन समाज के लोकप्रिय कवियों में है। इनकी पद्य रचना प्रभावोत्पादक है। यथा—

ए जिन मूरति प्यारी, राग दोष बिन, षानि लषि शांत रस की।
त्रिभुवन भूति पाय सुरपति हूं, राषत चाह दरस की।
कौन कथा जगवासी जन की मुनिवर निरषि हरषि चषि सुख की,
अन्तरभाव विचार धारि उर, उमंगत सरित सुरस की।

आध्यात्मिक भावना की प्रांजल भाषा शैली में व्यंजना का एक नमूना और देखें-

तेरो ही नाम ध्यान जपि करि जिनवर मुनिजन पावत सुख धन अचल धाम।

व्रत तप शम बोध सकल फल होत सत्य भक्ति मन धारत सुगुन ग्राम।''

इनके पद भी गेय और प्रबोधात्मक हैं, यथा—

कौन भेष बनायो है, अरे जिय।
मोही ज्ञान गमाई जिन गुन रूप विगारि।
X X X X
नयन सभारि विचारि हिये जिनराज दिये,
गुन आनंद लारे सुषिया प्यास निवारि।''[२२४]

नवलशाह–

आप खटोला ग्राम निवासी देवराय के पुत्र थे। इनके पूर्वज भेलसी ग्राम के रहने वाले थे। वहाँ पर भीषम साह संघई ने जिनमंदिर का निर्माण कराया था। नवलशाह ने सं० १८२५ में भट्टा० सकल कीर्ति के संस्कृत ग्रंथ से कथा लेकर वर्द्धमान पुराण की छंदोवद्ध रचना की। एक नवलशाह १७वीं शताब्दि में हो गये जिन्होंने भी सं० १६९१ में वर्द्धमान पुराण भाषा की रचना की थी। इसलिए यह भ्रम होता है कि शायद रचनाकाल में भ्रमवश दो शतियों का अंतर पाठ भेद के कारण आ गया हो, किन्तु पं० पन्नालाल ने नवलशाह के संबंध में लिखा है कि ये बुंदेलखंड के कवियों में श्रेष्ठ कवि थे। वर्धमान पुराण में 'महाकाव्य के लक्षण पाये जाते है। यह प्रकाशित होकर जैन भिन्न के उपहार में बाँटा गया था। ये बुंदेलखण्ड के वसवा ग्राम वासी थे। इनका समय (सं० १७९०-१८५५) मुख्य रूप से १९वीं शताब्दी ही है अत: ये १७वीं शती वाले नवलशाह से निश्चय ही भिन्न है। इनका संबंध दौलतराम कासलीवाल से बताया जाता है जो १८वीं १९वीं शती के विद्वान थे। इन्होंने दोहा पच्चीसी और सैकड़ों गेय पद लिखे है।[२२५] इनकी प्रमुख रचना वर्धमान पुराण का परिचय दिया जा रहा है। वर्द्धमान पुराण (१६ अधिकार, सं० १८२५) का आदि—

ऋषभादि महावीर प्रणमामि जगद्गुरुं,
श्री वर्द्धमान पुराणोऽय कथयामि अहं व्रवीत।

अंत— उज्जयंति विक्रम नृपति संवत्सर गिनि तेह,
सत अठार पच्चीस अधिक समय विचारि एह।
द्वादश में सूरज गिनै द्वादश अंसहि ऊन,
द्वादस मौ मासहि मनौ शुक्ल पक्ष तिथि पून।
द्वादश नक्षत्र बखानिये बुधवार वृद्धि जोग;

द्वादश लगन प्रभात में श्री दिन लेख मनोग।
रितु बसंत प्रफुल्ल अति फागु समय शुभ हीय,
वर्द्धमान भगवान गुन ग्रंथ समापित कीय।

अपनी लघुता का वर्णन करता हुआ कवि कहता है-

द्रव्य नवल क्षेत्र हि नवल कारन नवल है और,
भाव नवल भव नवल अति, बुद्धि नवल इहि ठौर।
काय नवल अरू मन नवल वचन नवल विसराम,
नव प्रकार जत नवल इह, नवल साहि करि नाम।

अंत— पंच परम गुरु जुग चरण भवियन बुध गुन धाम,
कृपावंत दीजै भगति, दास नवल परनाम।[२२६]

इनकी कविता का नमूना देखें (वीररस का उदाहरण)-

जुरी दोउ सैना करैं युद्ध ऐना, लरैं सुभट रस में प्रचारै,
लरै व्याल सो व्याल रथवान रथ सों तथा कुंत सो कुंत किरपान झारैं।
जुरै जोर जोधा मुरै नैंक नाही, टरैं आपने राय की पैज सारैं।
करैं मार घमसान हलकंप हो तौ, फिरै दोय में एक नहीं कोई हारै।
ज्यौं वरखा ऋतु पाय नीर सरिता बढै त्यौ रण सिधु समान रकत लहरैं बढ़ै।
X X X X X X
वीर जिन जन रचन पूजत, वीर जिन आश्रम रहै,
वीर नेह विचार शिव सुध, वीर धीरज की गहैं।
वीर इन्द्रिय अघ घनेरे, वीर विजयी हौं सही।
वीर प्रभु मुझ बसहुं चित नित, वीर कर्म नसावही।[२२७]

निर्मल–

इनकी एक रचना 'पंचाख्यान' की हस्तप्रति पंचायती मंदिर दिल्ली से प्राप्त हुई है। यह एक मूल संस्कृत ग्रंथ का पद्यानुवाद है। यह नीति ग्रंथ सर्वसाधारण के लिए उपयोगी है। इसमें न तो कवि का परिचय है और इसका रचनाकाल दिया हुआ है। चूँकि इसमें अरिहंत की स्तुति है इसलिए ये जैन कवि हैं। यह भी स्पष्ट नहीं हो सका कि यह रचना १८वीं शती के अंतिम चरण की है अथवा १९वीं शती के प्रथम चरण की है। कामता प्रसाद जैन ने इसे १९ वीं शती का बताया है। इसके प्रारम्भ की पंक्तियाँ निम्नांकित हैं-

प्रथम जपूं अरिहंत, अंग द्वादश जु भावधर।
गणधर गुरु संजुक्त, नमो प्रति गणधर निशतर।

X X X X X

बंध्या सुतहि जनै नहीं, ना दुष थोरो जांणि,
शठ सुत नैना देषीयै, आ दुष नहीं समांण।
सब निज थानिक सुष लहैं, सब सुष समरै राम,
सहसकृत भाषा कियौ, श्रावक निर्मल राम

इन पंक्तियों से यह विदित होता है कि ये जैन श्रावक थे।

अंत— पंचारव्यान कहे प्रगट, जो जापौ नर कोय,
राजनीति मै निपुण है, पृथ्वीपति सो तोय।[२२८]

निहालचंद–

ये पार्श्वचन्द्र गच्छ साधु हर्षचन्द्र के शिष्य थे।

रचना— ब्रह्मबावनी (सं० १८०१ कार्तिक शुक्ल २, मकसुदाबाद),

आदि— आदि ओंकार आप परमेसर परमजोति,
अगम अगोचर अलख रूप गायो है।

द्रव्यता में एक पै अनेक भेद परजै मै, जाको जस वास मत्तबहून मै छायो है।
त्रिगुन त्रिकाल भेव तीनों लोक तीन देव,अष्ट सिद्धि नवो निधिदायक कहायो है।
अक्षर के रूप में स्वरूप भुअलोक हूं कौ, अैसो ओंकार हर्षचंद मुनि ध्यायो है।

रचनाकाल—

संवत अठारै सै अधिक एक काती मास पख उजियारै तिथि द्वितीया सुहावनी;
पुर में प्रसिद्ध मकसुदाबाद बंग देस जहाँ जैन धर्म दया पतित कौ पावनी।
पासचंद गच्छ स्वच्छ वाचक हरषचंद, कीरतें प्रसिद्ध जाकी साधु मनभावनी,
ताके चरणारविंद पुण्य ते निहालचंद, कीन्ही निजमति ते पुनीत ब्रह्मबावनी।

कवि ने पाठकों से विनती करते हुए एक छंद लिखा है-

हम पै दयाल कै के सज्जन विशालचित्त, मेरी एक विनती प्रमान करि लीजियो।
मेरी मति हीनता ते कीन्हों बाल ख्याल इह, अपनी सुबुद्धि ते सुधार तुम दीजियो।
पौन के स्वभाव तें प्रसिद्ध कीज्यौ ठौर-ठौर, पन्नग स्वभाव अेक चित्त में सुणीजियो।[२२९]

अलि के स्वभाव ते सुगंध लीज्यौ अरथ की, हंस के स्वभाव है के गुन कौ गहीजियो।

जै० गु० क० के नवीन संस्करण में इनका उल्लेख छूट गया है।

निहालचंद अग्रवाल–

आपकी एक रचना 'नयचक्र भाव प्रकाशिनी टीका या नयचक्र भाषा अपर नाम स्वमति प्रकाशिनीटीका (सं० १८६७ कृष्ण ६, शनिवार, कानपुर) का रचना विवरण देखिये-

सहर कानपुर के निकट कंपू फौज निवास,
वहाँ बैठि टीका करी थिरता को अवकास।
संवत् अष्टादस शतक ऊपरि सठसठि आन,
मारग बदि षष्टी विषै वार सनीचर जान।
ता दिन पूरन भयौ बड़ौ हर्ष चित्त आन,
रंकै भानू निधि लइ त्यौं सुखमो उर आन[२३०]

नेमचंद्र–

इस शती के तीन नेमचन्द्र का उल्लेख मिलता है, जिनका उल्लेख आगे किया जा रहा हैं। नेमचंद्र की रचना 'पंदरतिथि' १८८२ से पूर्व की है। इसके आदि और अंत की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं—

आदि— नमोकार सुखकार सार मन वच तन ध्यानूं,
अरहंत सिद्धन सूरि पाठिक साध मनानूं।
नांव जुपत अघ षटत लहत शिव सुंदर प्यारी।
अतुल अत्यंद्री अध्यत्मह सुखसंपति भारी।
अविचल अखंड आनंदमय पर अतिन्द्री सुखभहें,
तसु चरनकमल वंदन सदा नेमचंद्र आनंद लहे।''

अंत— पंदरै तिथि अे करी अध्यात्म रूप धरै बाई,
भूल चूक कछु होइ शुद्ध करि लीज्यौ मेरे भाई।
नेमचन्द्र मुनि धारि अध्यात्म सबही कौ त्यारन तरन,
जग मांहि तरे साठ जिनधर्म भविजीव मंगलकरन।[२३१]

ब्रह्म नेमचंद्र–

इनकी रचना 'चंद्रप्रभ छंद' (सं० १८५०)[२३२] का विवरण-उदाहरण प्राप्त

नहीं है।

नेमिचंद पाटणी–

आपकी दो रचनाओं 'चतुर्विंशति तीर्थंकर पूजा (हिन्दी पद्य, रचनाकाल सं० १८८०) और 'तीन चौबीसी पूजा' (सं० १८९४) का उल्लेख डॉ० कासलीवाल ने किया है।[२३३] इन रचनाओं का विवरण-उदाहरण अनुपलब्ध है। उन्नीसवी शती के उपर्युक्त तीन नेमचंद्रों में से किसी का स्पष्ट विवरण प्राप्त नहीं है।

इनके अलावा १८वीं शताब्दी में देवेन्द्र कीर्ति के शिष्य प्रसिद्ध कवि नेमिचंद्र हो चुके हैं जिन्होंने नेमीश्वररास' की रचना की थी।

नेमविजय–

तपागच्छीय हीरविजयसूरि की परंपरा में शुभविजय > भावविजय > सिद्धविजय > रूपविजय > कृष्णविजय > रंगविजय के शिष्य थे। इनकी रचना 'थंभणो पारसनाथ, सेरीसो पार्श्वनाथ, संखेसरो पार्श्वनाथ स्तवन (२८ ढाल ३५० कड़ी सं० १८११ फाल्गुन शुक्ल १३, सोमवार) का आदि—

सरसति ने समरू सदा, महिर करे मुझ माय,
बल भवियण आपे नही, दुनियां ने आवे दाय।

दीवानी परें दाखवे जोति करी जगमाय,
वास करे मुझ मुखवली, पूजिस तोरा पांय।

प्रगट देव प्रथवी तलें परतापूरण पास, थभ्यां नीरजे थंभणे, वास्यां नगर निवास।
सेरीसे संखेसरो नामे पारसनाथ, अे जिहुं अेक समें हुआ, सुरनर सेवें साथ।

रचनाकाल— संवत् अठार इग्यारोतरा वरसे फागुण मास सुदि पक्खे हे,
वार सोमने तिथि तेरस दिने गाया गुण में सखे हे।

इसमें ऊपर लिखी गुरुपरम्परा का उल्लेख किया गया है। रंगविजय को अपना गुरु बता कर अंत में कवि ने लिखा है-

सर्व संख्याइ गाथा कही छे साढ़ा त्रिन स्यै मांन हे,
अट्ठारवीसमी ढाल अे भारवी, नेमविजय अेक ध्यान हे,

'गोड़ी पार्श्व स्त० अथवा काजल मेघानुं स्तव अथवा मेघाशानां ढालिया (१६

ढाल सं० १८१७ भाद्र शुक्ल १३, सोमवार,मइयाजल) का आदि—

भाव धरी भजना करूं, आपे अविचल मत्त,
लघुता ते गुरूता करे, तु सारद सरसत्त।

यह रचना दंडकादि जैन प्राचीन स्तवनादि संग्रह में प्रकाशित हैं। 'धर्म परीक्षा रास (९ खण्ड, ११० ढाल, सं० १८२१ वैशाख शुक्ल, ५ गुरुवार बीजापुर) का रचनाकाल इस प्रकार है-

"संवत् अठार अेकवीस मां, मास वैशाख सुदि पक्ष,
तीथि पांचम गुरूवासरे, गाया गुण में रूष।
बीजापुर मां विराजता वृद्ध तपा पक्षे सनूर,
चंद्रगच्छ मां दीपता श्री जिनसागर सूरि।

इसमें पूर्व वर्णित गुरू परम्परा दी गई है। यह रचना जिनसागर सूरि के सान्निध्य में की गई थी। यह पुस्तकाकार में भीमसी माणक और वाडी लाल वर्धमान शाह द्वारा प्रकाशित की गई है। गुरूमहिमा पर कवि की पंक्तियाँ दृष्टव्य है-

गुरू दीवो गुरू देवता गुरू रूठे गम होय,
गुरू कहीये माता-पिता गुरू थी अधिक न कोय।

धर्म परीक्षा के संबंध में कवि लिखता है-

भवियण भावे संभलो धरमाधरम विचार, द्वेषबुद्धि दूरे करी परीक्षा करजो सार।
उत्पति तेहनी ऊचरु धर्म परीक्षा रास, वा तो विविध प्रकार की आणी हरष उल्लास।

श्रीपाल रास (४५ ढाल सं० १८२४ पौष कृष्ण ६, रविवार, बीजापुर के समीप गेरिता गॉव)।

आदि— सकल जिनेश्वर सर्वदा, परमेश्वर प्रणमेव,
नाम समरतां नित्य प्रति, दरसण थी सुखदेव।
नामे नरनारी तर्या नवपद नामे सिद्ध,
आंविल तप आराधतां श्री पाल पाम्यो रीध।

यह रचना रत्नशेखर सूरि कृत श्रीपाल चरित्र पर आधारित है।

रचनाकाल— संवत् अठार चौबीसा बरसे, पोस मास वद जाणो जी,
छठ ने दिवसे अने रविवारे, पूरण रास परमाणो जी।

बीजापुर पासे आछे गाम गेरीतो जेहनो नाम जी,
नेमनाथ सामी सुपसाईं रह्या चोमासो ते ठाय जी।

अंत— "रंगविजय रंगीला जग में गुण गाऊं हूं एहना जी,
पस्तालीसमी ढाल अे भाखी नेमविजय रसाल जी।

दान, शील, तप, भावना पर भी अपने कई संज्झाय लिखे है।[२३४]

पन्नालाल–

ये जयपुर निवासी थे। इनके समय जयपुर में माधवसिंह का शासन था। इन्होंने जयपुर के प्रसिद्ध सेठ चाँदमल के सुपुत्र फूलचंद के आग्रह पर 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार का हिन्दी पद्यानुवाद किया। यह रचना मूलत: समंतभद्र की रचना 'रत्नकरण श्रावकाचार' का पद्यानुवाद है। इसकी हस्तप्रति दिल्ली के सेठ कूंचा के मंदिर से प्राप्त हुई और प्रति में रचनाकाल सं० १७७० दिया हुआ हैं इसलिए यह १८वीं शती की रचना हो सकती है। कामता प्रसाद जैन ने इसका उल्लेख १९ वीं शती में किया है। यह विचारणीय प्रश्न है।[२३५]

पद्म भगत–

पद्म भगत की रचना 'कृष्ण रूक्मिणी मंगल' है। इसके अंत में रचनाकाल इस प्रकार दिया गया है-

"संवत् १८७० का साके १७३५ का भाद्रपद मासे शुक्ले पक्षे पंचभ्यां चित्रा भौम नक्षत्रे द्वितीय चरणे तुला लग्नेय समाप्तोयं।" प्रारम्भ "श्री गणेशाय नम: श्री गुरुभ्यो नम: अथ रूक्मिणी मंगल लिख्यते।" इससे लगता है कि पदम भगत जैनेतर लेखक है। इसमें तीर्थंकरों आदि की वंदना भी नहीं है; यथा—

गुरु गोविंद के सरने आये हो जो कुल की लाज सब पेली
कृष्ण कृपा तै काम हमारो भणता पदम यो तेली।

शायद ये तेली विरादर के भगत रहे हों। इसका अंत इस प्रकार है-

श्री कृष्ण को व्याहलो, सुणो सकल चित लाय,
हरि पुरवै सब कामना, भगति मुकति फलदाय।[२३६]

पद्मविजय–

ये तपागच्छ के सत्यविजय > कपूरविजय > क्षमाविजय > जिनविजय >

उत्तमविजय के शिष्य थे। अहमदाबाद के सामलापोल निवासी श्री माली वणिक गणेश की पत्नी झककु की कुक्षिसे सं० १७९२ भाद्र शुक्ल द्वितीया को आपका जन्म हुआ था। जन्मनाम पानानंद था। छह वर्ष की अवस्था में इनकी माता का देहांत हो गया। सं० १८०५ में उत्तमविजय से राजनगर में दीक्षित हुए। दीक्षानाम पद्मविजय पड़ा। दीक्षोपरांत आपने गहन शास्त्राभ्यास किया और तपा० विजयधर्म सूरि ने इन्हें सं० १८१० में पंडित पदवी से विभूषित किया। आपने अनेक संघयात्राओं में भाग लिया, बिंब प्रतिष्ठा कराई और तीर्थाटन किया। सं० १८२७ में उत्तमविजय का देहावसान हुआ। उनके पश्चात् धर्म प्रभावना का कार्य इन्होंने आजीवन पूर्ण शक्ति के साथ किया।

सं० १८६२ चैत्र शुक्ल चतुर्थी बुधवार को इन्होंने लौकिक शरीर का त्याग किया। आपने पद्य और गद्य में अनेक रचनायें की। उनकी कुछ विशिष्ट कृतियों का संक्षिप्त परिचय आगे दिया जा रहा है-

'अष्ट प्रकारी पूजा' (१६ ढाल ७६ कड़ी सं० १८१९ धोधा) का आदि—

श्रुतधर जस समरै सदा, श्रुतदेवी सुखकार।
प्रणमी पदकंज तेहवा, पभणुं पूजा प्रकार।

रचनाकाल— तत्त्व शशी अउ चंद्र संवत्सर, खिमाविजया जिन गावो,
उत्तम पदकज पूजा करता, उत्तम पदवी पावो, रे।

यह रचना विविध पूजा संग्रह और विधि विधान साथे स्नानादि पूजा संग्रह में प्रकाशित है। नेमिनाथ रास अथवा चरित्र (४ खण्ड १६९ ढाल ५५०३ कड़ी, १८२० दीपावली, राधनपुर) इसमें आणंदविमल, विजयदान, हीरविजय, विजयसेन, विजयदेव, विजयसिंह के शिष्य सत्यविजय और उसके पश्चात् की गुरुपरम्परा का सादर उल्लेख किया गया है।

रचनाकाल— गगन नयन गज चंद्र संवच्छर, दीवाली दिन जाणो।

अंत— नेमचरित्र जे सुणसे लखसे वांचसे भाग्यविशाल,
अनुक्रमे शाश्वत पद ते लहस्यें होस्यें मंगलमाल।

यह रचना जैन कथारत्न कोश भाग २ दो में प्रकाशित है।

'उत्तम विजय निर्वाण रास' (१३ ढाल १८२८ पौष शुक्ल ७, रविवार)

इसमें कवि ने अपने गुरु को उनके निर्वाणोपरांत श्रद्धांजलि अर्पित की है।

वनज वहन वागेश्वरी पुस्तक दाहिण पांण,
समरुं सामी सरसती, करवा गुरु निर्वाण
संवत् अठार अठावीसे पोषा रुडो मास अे,
सातिम दिने सूर्यवारे, पोहोती सकला आस से।

यह देसाई द्वारा संपादित जैन ऐ० रासमाला भाग १ में प्रकाशित है। (षट्पर्वी महिमाधिकार गर्भित) महावीर स्तव (८ ढाल सं० १८३० फाल्गुन शुक्ल १३ साणंद; इसमें महावीर की स्तुति है। इसका रचनाकाल देखिए-

अठार तीस संवत्सरे, सुदि तेरस फागुण मास रे।

यह जिनेन्द्र भक्ति प्रकाश और चैत्य आदि संज्झाय भाग ३ में प्रकाशित है।

२४ जिननां (अथवा सर्वजिन) कल्याणक स्तव (सं० १८३७ महा कृष्ण २, शनिवार, पाटण) का आदि—

प्रणमी जिन चौबीसने कहुं कल्याणक तास,
मास अमावस्या तणी रीध धरी सुविलास।

रचनाकाल— संवत् अठार सांत्रीस (१८३७) वां माह बद बीजने शनीवारो रे,

यह पुस्तक जिणगुण स्तव माला में प्रकाशित है।

पंचकल्याणक महोत्सव स्तव (सं० १८३७), यह जैन सत्यप्रकाश वर्ष ८ अंक पृ० २२६ पर प्रकाशित है।

नवपद पूजा (१८३८ सं० माह वदी २, गुरु लीवंडी) का आदि—
श्रुतदायक श्रुतदेवता, वंदु जिन चौबीस,
गुण सिद्ध चक्र ना गावतां, जग मां होय जगीस।

रचनाकाल— गज वह्नि मद चंद संवत्सर माह वदि बीजा गुरुवारो,
रही चोमासूं लीवंडी नगरे, उद्यम अेह उदारो।

यह रचना 'स्नात्र पूजा स्तवन संग्रह और ज्ञानपंचमी में प्रकाशित है इसी प्रकार इनकी प्राय: अधिकांश कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी है।

समरादित्य केवली नो रास (९ खंड १९९ ढाल सं० १८३९ लीवंडी में प्रारंभ और सं० १८४२ वंसतपंचमी, विसनगर में पूर्ण)

आदि— स्वस्ति श्री वर सारदा, कुंद चंद समकाय,
कमलमुखी ने कमलकर, प्रणमुं तेहना पाय।
X X X X X
समरादित्य सुसाधुनो चरित्र अछे सुविचित्र,
हरिभद्र सूरे भाखिये वचनविचार पवित्र,
अपराधी नर ऊपरि करिये नही कांय क्रोध,
तिणे अे समरादित्य तणुं चरित्र सुणी सुभ बोध।

रचना का प्रारंभकाल— अठार ओगण चालीस मां कायमांडयो रास अे वर्से रे,
लीवंडी चौमासो रहयुं, कांय दिन-दिन चढ़ते हर्षे रे।

इसमें वर्धमान, सोहम् जंबू, प्रभव, शय्यंभव, यशोभद्र, संभूतिविजय, भद्रबाहु स्थूलिभद्र, आर्य सुहस्ति, कोटिकगण के इन्द्रदिन्न, चन्द्रगच्छ के चंद्रसूरि समंतभद्र, प्रद्योतन, मानदेव, मानतुंग, वीरजयदेव, देवाणंद, विक्रमसूरि आदि से लेकर जगच्चन्द्र सूरि के पश्चात् तपागच्छीय जिनेन्द्रसूरि तक का नामोल्लेख करके अंत में लिखा है-

रचनाकाल— तस राज्ये अे पूरण कीधो, अठार वेताला बरसे,
श्री कल्याण पास सुपसाये, वसंतपंचमी दिवसे रे।

गुरु परम्परान्तर्गत सत्यविजय, कपूरविजय आदि के साथ उत्तमविजय को नमन करके कवि ने लिखा है-

ते गुरु उत्तमविजय पसायें, पद्मविजय लघुशीसे
वीसलनगर चौमासे रहीनें, भाख्यो विसवा वीसे रे।

इसे भीमसी माणेक, छगन लाल उमेदचंद और दौलतचंद हुकुमचंद ने प्रकाशित किया है। राजहंस विजय द्वारा संपादित संस्करण का प्रकाशन कुमुदचंद जोशीभाई बोरा ने किया है। इससे इसकी उपयोगिता और महत्ता का अनुमान किया जा सकता है। यह एक प्रकार से जैन पट्टावली का संक्षिप्त संस्करण है। 'सिद्धाचल नवाणु यात्रा पूजा अथवा नवाणु प्रकारी पूजा' सं० १८५१; यह शत्रुंजय तीर्थमाला रास अने उद्धारादिकनो संग्रह तथा वीशीओ अने विविध प्रकार नी पूजाओं में भी प्रकाशित हैं।

मदनधनदेव रास (१९ ढाल ४५९ कड़ी सं० १८५० श्रावण शुक्ल ५,रविवार, राजनगर) इसमें रागबन्धन से मुक्ति का उपदेश कथा के माध्यम से दिया गया है। उदाहरणार्थ पंक्तियाँ देखें-

जग में बधंन दोय कहा, राग तथावली द्वेष,
तेहमा पणवली राग ज बड़ु, तेह थी दोष अशेष।

रचनाकाल— मुनि पाण्डव गज चन्द्रमा रे लाला वरसे ते श्रावण मास,
पंचमी उज्वल पक्ष नी रे लाला, सुर्यवार सुप्रसिद्ध।।

'जयानंद केवली रास' (९ खण्ड २०२ ढाल सं० १८५८ पोल शुक्ल ११ लीवंडी)— श्री जयानंद सोभागिया केवल लक्ष्मीकंत,
धर्म द्वि आराधीने शिव सुख जे साधंत।

रचनाकाल— संवत अठार अठावन वरसे, लीवंडी रही चौमासु जी,
पोष सुदी अेकादशी दिवसे, कीधो अे अभ्यास जी।

आपने और सज्झाय आदि भी अनेक लिखे हैं-

यथा— 'समकित पंचीसी स्तवन ६८ कड़ी १८११ आसो शुक्ल २, भावनगर; यह जैन प्राचीन पूर्वाचार्यों रचित स्तवनसंग्रह में प्रकाशित है।

सिद्ध दंडिकास्तवन ३८ कड़ी १८१४ सुरत, चौमासा,

पंचकल्याणक स्तव १८१७, चौबीसी (दो) चौबीसी बीसी संग्रह और चौमासीना देववंदन, २४ दण्डक वीर गर्भित वीर जिन स्तवन (८९ कड़ी भावनगर), खंभात चैत्य परिपाटी, पंचकल्याणक मासादि सिद्धचलाद्यनेक तीर्थ स्तव संग्रह तथा सिद्ध चक्रादि नमस्कार संग्रह आदि अनेक रचनायें हैं। इनके अलावा सिद्धांचल स्तवनावली, जिनेन्द्र भक्ति प्रकाश, जैन काव्यप्रकाश आदि सभी प्रकाशित रचनायें हैं। नेमजिनादिक स्तुति संग्रह संज्झाओं संग्रह, गहूली संग्रह आदि भी संग्रहीत प्रकाशित है। इस प्रकार इनके पद्य रचनाओं की संख्या सैकड़ों हैं।

गद्य में सीमंधरना ३५० गाथा ना स्तवन पर बाला १९३०, (मूल यशोविजय कृत), सज्झाय अने स्तवन संग्रह में प्रकाशित है। गौतम कुलक बाला० १८४६, वसंतपंचमी बुध (मूल प्राकृत) गौतम पृच्छा बाला० महावीर हुंडी स्तव बाला० १८४९, संयम श्रेणी बाला० आदि बीसो गद्य रचनायें है जो संकलित प्रकाशित है। इनका रचना संसार विविध, बहुआयामी वृहद और विद्वतापूर्ण तथा काव्यमय है। इनकी एक रचना नेमिनाथ चरित्र रास १८२० का उल्लेख उत्तमचंद कोठारी की सूची में भी है। यह पूर्व वर्णित नेमिनाथ रास ही होगा। उत्तमचंद ने उदाहरण नहीं दिया। खेद है कि इनकी गद्य रचनाओं का नमूना एक भी नहीं मिला अन्यथा ये सक्षम कवि के साथ समर्थ गद्यकार के रूप में १९वीं शती के जैन कवियों और साहित्यकारों में अग्रगण्य स्थान के अधिकारी

होते।[२३७]

परमल्ल–

(दिगम्बर कवि) रचना श्रीपाल चरित्र भाषा, हिन्दी

आदि— सिद्ध चक्र विधि केवल रिद्ध, गुन अनंत फल जाकी सिद्धि,
प्रणमों बंरम सिद्धि गुरु सोई, भवि संघ ज्यों मंगल होई।

अंत— तहां कथा अेह पूरन भई, कवि परमल्ल प्रगट करि कई।
अल्प बुद्धि मै कियो बषांन, फेर सवारो गुन पट जान।
X X X X X X
अरु जो नरनारी व्रत करैं, सो चहुं गति को भार मन हुरैं,
भव्यन को उपदेश बताय, निहचै सो नर मुकती जाय।[२३८]

इसमें रचनाकाल नहीं है पर जै० मु० क० के प्रथम एवं नवीन संस्करण में इसे १९वीं शती में स्थान दिया गया है। मैने भी उसी का अनुशरण किया है।

पार्श्वदास–

(१९वीं २०वीं शती के लेखक) रचनायें-'पारसविलास' और ज्ञान सूर्योदय नाटक की वचनिका आदि का परिचय दिया जा रहा है। ये जयपुर निवासी ऋषभदास निगोत्या के पुत्र थे। इनके दो बड़े भाई थे मानचंद और दौलतराम। पं० सदासुखलाल के संपर्क से इनका झुकाव परमार्थ तत्त्व और शास्त्रपठन की तरफ हुआ। इन्होंने जयपुर स्थित शांतिनाथ के बड़ा मंदिर में बैठकर साधना और अध्यवसाय किया। इनके प्रमुख शिष्य बख्तावर कासलीवाल थे। पार्श्वदास अपने अन्तिम समय में अजमेंर रहने लगे थे और वही सं० १९३६ वैशाख शुक्लपंचमी को इन्होंने समाधिमरण लिया।

इनकी समस्त रचनायें 'पारसविलास' में संकलित है। इन ग्रंथों की अपेक्षा इनकी काव्य प्रतिभा का अच्छा प्रकाश इनकी पद रचनाओं में प्रकट हुआ है। ४३ विभिन्न राग रागनियों में आबद्ध इनके ४२५ पदों में अध्यात्म, भक्ति, दर्शन, नीति आदि विविध विषयों की मार्मिक अभिव्यंजना हुई है। इनके पदों का संग्रह 'पार्श्वदास पदावली' नाम से दिगंबर, जैन समाज अमीरगंज टोक द्वारा प्रकाशित कराया गया है। ढूढ़ाण के जैन कवियों में जोधराज और पार्श्वदास के सवैये बड़े मनोहारी बन पड़े हैं। सवैया छंद का प्रयोग प्राय: दरबारी कवियों ने शृंगार रस तथा संतकवियों ने आध्यात्म एवं नीति विषयक वर्णन में किया है। संत सुंदरदास की तरह इन जैन कवियों ने अपने सवैयों में आत्मतत्त्व

का विवेचन, संसार की नश्वरता, दया, प्रेम, मैत्री, करुणा, अहिंसा आदि का प्रतिपादन किया है।[२३९]

पासो पटेल–

आप संत जीवा के श्रावक शिष्य थे। ये लोका० धर्मदास; मूलचंद; बना; जीवा के शिष्य थे। रचना-भरतचक्रवर्त्ती रास (२० ढाल सं० १८१८ चैत्र बदी अमावस्या, लीबंडी)

आदि–– अरि हणवे अरिहंत जी, तास करी प्रणाम,
सरस्वती चरण कमल नमी, समरुं गौतम स्वाम।
अधिपति जे षट्‌षंड नो भरतेसर गुणवंत,
पदम चक्री जे हुआ कीध भावना अंत।

यह रचना जंबूद्वीप पन्नति पर आधारित है यथा—कलश

श्री जिणवाणी शुद्ध जाणी आणी उच्छरंग भाव सुं,
सूत्र जंबू द्वीप पन्नति तेह थकी भाखे इसु।
X X X X X
गणे गरवा भावे नरवा वैराग तप धन ना धणी,
रिषि श्री धर्मदास जी जैनी की रति जेम चिंतामणी।

इसके उपरांत मूलचंद, बना, जीव का वंदन किया गया है।

रचनाकाल— संवत् अठारा-अठारा बरसे चैत्र वदि अमावस्या सही
लीबंडी मध्ये पुरी कीधी पांसे पटेल पोसा मां सही।[२४०]

प्रकाश सिंह–

आपने सं० १८७५ आषाढ़ शुक्ल ८, गोंडल में अपनी रचना 'बारव्रत ना छप्पा' पूर्ण किया।

आदि— जीव दया नित पालिये, व्रत पहिलेहुं कहिये।
वाणी सूक्ष्म बादर सर्व ने अभयदान ज दइये।
X X X X X
छ कायनी रक्षा करो कुटुंब सर्वे छे आपणो,
प्रकाश संघ कहे पास जो तोष ऋतु दायापणु।

रचनाकाल— अठार सो पंचोत रोनी शुक्ल पक्षे वली,
मास आसाडि सोभनो वली अष्टम दिवसे,
सझाई विधि सोभती धरि मन उलासे।
कहे सेवक भाव सुं बलि गोडंल वसे,
हुं बांदीश, व्रत श्रावकना ने सुध समकित पालसे,
प्रकाश संघ वाणी वदे मोक्ष नां सुख मालसे।[२४१]

प्रतापसिंह–

रचना 'चन्द्रकुमार की वार्त्ता' हिन्दी गद्य,

रचनाकाल सं० १८४१, अन्य विवरण अनुपलब्ध।[२४२]

प्रागदास–

रचना 'जंबू स्वामी की पूजा' यह भाषा छंदोवद्ध कृति है।

उदाहरण— मथुरा ने पश्चिम कोस आध, छत्री पद द्वै महिमा अगाध।
वृजमंडल में जे भव्य जीव, कातिग वदि रथ काढ़त सहीव,
केऊ पूजित केऊ नृत्य ठानि, केऊ गावत विधि सहित तान।
निस द्यौस होत उत्सव महान, पूजत भव्यन के पुन्य थान।
पद कमल प्राग तुव दास हौस, जिनभक्ति विभव दे अरज मोहि।[२४३]

प्रेम मुनि–

ये लोकागच्छ के संत वरसिंह के शिष्य थे। इन्होंने सं. १८५८ जोधपुर (कंटालिया) में हरिश्चन्द्र चौ० की रचना की।[२४४] श्री मो० द० दे० ने गुरु परम्परान्तर्गत लोकगच्छीय केशव को प्रगुरु और वरसिंग को गुरु बताया है। उन्होंने हरिश्चन्द्र राजा चौ० का विवरण-उदाहरण भी दिया है, यथा— हरिश्चन्द्र राजा चौ० (२३ ढाल, सं० १८५८ मार्ग बदी ९, रविवार जोधपुर),

आदि— आदि जिणेसर पाय नमूं, श्री बीताराग गुण पेख।
नमो-नमो सहु को नमो, जीवा जीव विशेष।
X X X X X
दया प्रगट कीयो दया दान दातारि,
सरग मृत्यु पाताल में आप तणो-आधार।
X X X X X

इण धरा ऊपर राजवी हुवा छे केई अनेक,
सतधारी हरचंद छे कविजन कीधी जोड़।

इसमें लोकागच्छीय केशव और नरसिंह का सादर वंदन किया गया है।

उस समय उस प्रदेश में भीमसेन राजा का शासन था क्योंकि कवि ने लिखा है—
निरमल बुध कीयो प्रवेश, मारु मरुधर मंडल देस,
भीमसेन राजा भूपाल सुपनंतर पिण न पड़ै दुकाल।

रचनाकाल— संवत् अठारा ओ पीण जाण,
बीस तीस नै आठै जाण।
तिथ्य नवमी मृगसिर वद तेह, रुडो वार सूरज रो अेह।
पूरो ग्रंथ कियो तिण दीन, सतवादी ने कह जो धन्न।

अंत— पुण्यवंत नर कहिये तेह, सतसंग तसु लागो नेह
सतसूरा ते सूरा होय, जग में नाम तियारा होय।

देसाई ने जै० गु० क० के प्रथम संकरण में उसके कर्त्ता का नाम केशव > नरसिंह शिष्य प्रेम ही बताया गया है। इसके अलावा वैदर्भी चौ० का भी इन्हें ही कर्त्ता कहा गया है परंतु उक्त चौपाइ प्रेममुनि की नहीं बल्कि किसी प्रेमराज की रचना है जो १८वीं शती के कवि थे और जिनके संबंध में इस ग्रंथ के तृतीय भाग पृ० ३०५ पर चर्चा की जा चुकी है।[२४५]

फकीरचंद–

आपने लीक से हट कर एक सामाजिक कुरीति पर रचना की है जिसका नाम है 'बूढ़ा रास'। इसमें वृद्ध विवाह के पुष्परिणाम का रोचक वर्णन तो है ही, साथ ही समाज की इस कुरीति पर सुधारवादी दृष्टि से एक जैन मुनि के विचार बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। संभवत: यह कवि भी लोकागच्छ का ही है। विवरण देखें-

बूढ़ा रास अथवा चौपाई-हिन्दी राजस्थानी भाषा में यह १४ ढ़ालो में रचित मनोरंजक रचना सं० १८३६ मागसर में लिखी गई थी।

आदि— दया ज माता वीनऊं, गणधर लागू पांय,
वर्धमान चौबीस मां, बांदू सीस नमाय।
कन्या जे जमी तणों, पइसो न लीजै कोय।
बूढ़ा ने परणावतां, गुण बुढारा जोय।

पैसा लेकर बूढ़ों के हाथ कुमारी बेचारी कन्याओं की विक्री के अन्याय पूर्ण हिंसा के विरुद्ध सच्ची दया भावना से प्रेरित यह रचना जैन साहित्य के विरल उदाहरणों में एक है।

अंत— बेटी थारा मथारा मोडो तोनें इन बिन किसडी ढोडो,
इण सुहागण पणसुं धाइ, सामाइक करिस्यूं सदाई।
नव तत्त्व सदा मन धरसु, तपस्याने पोसो करसुं।
घट सारु दान जे देसुं, मनमान्यो कारज करस्युं।

रचनाकाल— संवत् अठार छत्तीस आंण, मिगसर वलि मांस बखाण।
चंद फकीर अे बखाणी, सुणज्यो कलजुंग नीसाणी।[२४६]

पहले यह रचना अज्ञात नाम से छपी थी। लेकिन इस पंक्ति में स्पष्ट चंद फकीर अर्थात फकीरचंद नाम दिया गया है। अत: यह इन्ही की कृति है।

फत्तेचंद–

आपने सं० १८१९ में 'प्रीतिधर नृप चौपई' की। रचना की। इस रचना और इसके रचनाकार के संबंध में कोई ज्ञानकारी नहीं मिल सकी।[२४७]

फतेन्द्रसागर–

तपागच्छीय विनीतसागर और उनके पाँच शिष्यों धीरसागर, भोजसागर, सूरसागर, रतनसागर और जयवंतसागर में से ये धीरसागर के शिष्य थे। इन्होंने 'अष्टप्रकारी पूजा रास' का सं० १८५० भाद्र कृष्ण अष्टमी-कृष्ण जन्माष्टमी को बगड़ी में प्रारंभ किया और उसी वर्ष बेनातट में पूर्ण किया।

आदि— श्री आदि जिणंद पदांवुजे, मन मधुकर सम लीन,
नो आगमगुण सौरम्यभर, आदरि करि लयलीन।
जिनवर सम छै अधिक, तारै भवजल पार,
आप तर्था पर तारवा, शक्ति अछै जस सार।

X X X X X X

विजयचंद चरित्र मां पूजा नो अधिकार,
कुणकुण पूजा थी तर्था उत्तरीयो भवपार।

X X X X X X

सांभलियो थिर चित्त करी, रास भणुं सुखदाय,
श्रोताजन तुम मत करो, वधिर गीत नो न्याय।
चरित्र पीठिका पहली ढाल, पभणी फतेन्द्रसागर सुविशाल।
श्रोताजन सांभलोचित लाय, नित-नित तीर्थ तणा गुण गाय।

रचनाकाल— संवत् अठार पचासा, वरणै भाद्रव मास विशेषै जी
वदि पखवाड़ै अष्टमी दिवसेगोविंद जन्म विशेषै जी।

तेणे रास अे रचना मांड्यो, बगड़ी नगर मझारी जी।
अष्ट प्रकार पूजा फल महिमा भविजन महिमा धारो जी,
पूरण कीधो बेनातट मां, सकल जीव हितकारी जी।
अेह सुणी ने पूजसी त्रिज्ञान, त्रिण्य काल दिलधारी जी।

कलश— केवली श्री विजयचंदे अष्टपूजा वर्णवी,
हरचंद राजा सुणी, सुद्धे करी पूजा अभिनवी।
जिनराज देहरै त्रिण्य कालै भावना भावै वली,
इह रास मोहें कही फतैद्रै पूज्ज्यो भवि मनरली।[२४८]

बखतराम साह–

आप लश्कर (जयपुर) के निवासी श्री प्रेमराज साह के पुत्र थे जो पहले चाटसू में रहते थे। बाद में जयपुर में रहने लगे थे। इन्होंने मिथ्यात्व खण्डन और बुद्धि विलास नामक दो ग्रंथ लिखे हैं। कुछ पद भी इनके प्राप्त हुए हैं। इनके पुत्र थे जीवनराम, सेवाराम, खुसालचंद और गुमानीराम। जीवनराम ने प्रभु की स्तुति के पद 'जगजीवन' उपनाम से लिखे हैं।[२४९] 'मिथ्यात्व खण्डन वचनिका' सं० १८३५, इसमें लेखक ने आत्मपरिचय भी दिया है। कहीं इसका रचनाकाल सं० १८२१ भी दिया है।[२५०] डॉ० क० च० कासलीवाल ने दो सूचियों में दो रचनाकाल किस आधार पर लिखा यह स्पष्ट नही हैं। इनकी दूसरी रचना 'बुद्धि विलास' का रचनाकाल १८२७ दिया गया हैं, इसका विषय धर्मदर्शन है, यह हिन्दी पद्य की रचना है। इसमें जयपुर का ऐतिहासिक वर्णन है। कामताप्रसाद जैन ने धर्म बुद्धि की कथा का रचनाकाल सं० १८०० बताया है। बुद्धि विलास और धर्म-बुद्धि की कथा एक ही रचना है या दो रचनायें हैं, यह भी पता नहीं है। इसके बाद मिथ्यात्व खंडन वचनिका लिखी जिसमें टोडरमल की मृत्यु का उल्लेख है। इस प्रकार इनकी रचनाओं का ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्व है। रचनायें साधारण हैं।

बख्तावरमल्ल–

आप दिल्ली निवासी थे। इन्होंने सं० १८९४ में जिनदत्त चरित्र और नेमिनाथ पुराण सं० १९०९ आदि की[२५१] रचना की। चूँकि ये १९वीं- वीसवीं शती के रचनाकार हैं इसलिए इनकी २० वीं शती की रचनाओं का विस्तृत विवरण अगले खण्ड में जाना ही उचित समझ कर यहाँ विस्तार नहीं किया जा रहा है।

बख्शीराम–

आपने सं० १८२६ में 'ढूंढिया मत खण्डन' नामक एक शुद्ध साम्प्रदायिक रचना की। जिसके आदि अंत की पंक्तियाँ दे रहा हूँ।

आदि— श्री सरवग्य सुदेव को, मन वच सीस नवाइ,
कहूं कछू संक्षेप सौं, परमत खोज बनाई।

रचनाकाल अंत में इस प्रकार दिया गया है-

संवत् अठरा से धरै, मिल्या सुजोग समास है,
परख परमत कछु सजन्म न धरो सिर सुखरास है।[२५२]

बालकृष्ण–

इनकी रचना 'प्रशस्ति काशिका' यद्यपि काशी की संस्कृति, भाषा आदि के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है किन्तु संस्कृत की रचना होने से उसे छोड़ना ही उचित है।

बुधजन (विरधीचंद)–

बुधजन का पूरा नाम विरधीचंद था, ये जयपुर निवासी निहालचंद खण्डेलवाल के पुत्र थे। इनका एक नाम शायद भदीचंद भी था। इनका बनवाया भदीचंद मंदिर जयपुर में है।[२५३] तत्त्वार्थ बोध १८७१, बुधजन सतसई १८८१, पंचास्तिकाय १८९१, बुधजनविलास १८९३ इनकी प्रमुख रचनायें हैं। इन सभी रचनाओं में बुधजनसतसई रचना सौष्ठव, भाषा प्रांजलता और भाव वैशिष्ट्य की दृष्टि से सर्वोत्तम रचना है। माणिक्यचंदने इस सतसइ के चार प्रकरण-देवानुराग शतक, सुभाषित नीति उपदेशाधिकार और विरागभावना-बताये हैं। देवानुराग प्रकरण के कुछ दोहे सूर तुलसी जैसी प्रगाढ़ भक्ति भावना से ओतप्रोत है। एक उदाहरण-

मेरे औगुन जिन गिनों मै औगुन को धाम,
पतित उधारक आप हौ, करो पतित को काम।

सुभाषित नीति प्रकरणों के दो सौ दोहे कवि की स्वानुभूति और व्यवहारिक ज्ञान के जीवंत उदाहरण है यथा—

पर उपदेश करन निपुन ते लो लखे अनेक,
करै समिक बौले समिक ते हजार में एक।

ये दोहे रहीम, वृन्द आदि श्रेष्ठ हिन्दी कवियों के टक्कर के है यथा—

करि संचित कोरो रहै, मूरख विलसि न खाय,
माखी करमीजत रहे, शहद भील लै जाय।

वृंद का यह दोहा देखिये—

खाय न खरचै सूम धन चोर सवै लै जाय,
पीछे ज्यों मधुमक्षिका, हाथ मलै पछताय।

विराग भावना का एक नमूना देखिए—

को है सुत को है तिया, काको धन परिवार,
आके मिले सराय में, विछुरेगें निरधार।

परी रहैगी संपदा, धरी रहैगी काय,
छल-बल करि काहु न वचै, काल झपट लै जाय।[२५४]

यह सतसई प्रकाशित है। इसका रचना काल १८७९ ज्येष्ठ कृष्ण ८ जै० कासलीवाल ने बताया है।[२५५] बुधजन विलास सं० १८९१ कार्तिक शुक्ल २ की रचना है।[२५६]

इनके पाँच भाई थे। इनके गुरु पं० भागीलाल थे। ये दीवान अमरचंद के मुनीम थे। इनकी १४ रचनाओं का उल्लेख अगरचंद नाहटा ने किया है।[२५७]

बुधजन सतसई और विलास के अलावा तत्वार्थबोध, भक्तामर स्तोत्रोत्पत्ति कथा, संबोध अक्षर बावनी, योगसार भाषा, पंचकल्याणक पूजा, मृत्युमहोत्सव छहढ़ाल, ईष्टछत्तीसी, वर्द्धमान पुराण सूचनिका, दर्शन पच्चीसी और बारह भावना पूजन। इन्होंने अनेक भावपूर्ण भक्ति रसात्मक पदों की रचना भी की है। वे पदसंग्रह में संकलित हैं। इन सभी रचनाओं में बुधजन सतसई की इतनी अधिक प्रतियाँ प्राप्त हो चुकी हैं कि उनके आधार पर उसकी लोकप्रियता स्वतः सिद्ध है। इनकी रचनाओं की भाषा पर मारवाड़ी भाषा का प्रभाव अधिक मिलता है।

योगसार भाषा का रचनाकाल १८९५ श्रावण शुक्ल द्वितीया है। यह अध्यात्म और भक्ति पर आधारित हिन्दी पद्य वद्ध रचना है।[२५८]

बुद्धिलावण्य–

आप देव सौभाग्य के प्रशिष्य और लावण्यरत्न के शिष्य थे। इनकी रचना 'अष्टमी स्तव' (१८३९ आसो शुक्ल ५ गुरुवार, खंभात) का

आदि— पंचतीरथ प्रणमुं सदा, समरी सारद माय।
अष्टमी तवन हरषे रचुं, सुगुरु चरण पसाय।

रचनाकाल— संवत् अठार ओगण चालीसा वरषे, आश्विन मास उदारो रे।
शुक्लपक्ष पंचमी गुरुवार, तवन रच्यूं छे त्यारे रे।

गुरु— पंडित देव सोभागी बुध लावणयरतन सोभागी तिणे नामे रे,
बुधि लावण्य लियो सुख संपूर्ण, श्री संघ ने कोड कल्याण रे।

अंत— खंभात बंदर अतीव मनोहर, जिन प्रासाद घणा सोहइ रे।
बिंब संख्यानो पार न लेबूं, दरीसण करि मन मोहइ रे।[२५९]

इनका उल्लेख जैन गुर्जर कवियों के नवीन संस्करण में छूट गया लगता है इनको छोड़ने का कोई कारण नवीन संस्करण के संपादक जयंत कोठारी ने नहीं दिया है।

बूलचंद–

आपने सं० १८४३ में 'प्रद्युमचरित' की रचना की। पर इसका विवरण उदाहरण अनुपलब्ध है।[२६०]

भक्तिविजय–

आप तपा० शुभविजय > गंगविजय > नयविजय के शिष्य थे। इनकी रचना 'साधुवंदना संज्झाय अथवा सत्पुरुष छंद' (२९ कड़ी सं० १८०३ भाद्र कृष्ण ११, रविवार) का प्रारंभ इस प्रकार हुआ है—

वीर जिणेसर प्रणमुं पाय, बलि गौतम गिरुआ गुरुराय,
उत्तम पुरुष हुआ नर नार, करणी थी पाया भवपार।

गुरु— शुभविजय वाचक मुनिराय, गंगविजय नित प्रणमुं पाय।
श्री नयविजय विबुध नो सिस, भक्तिविजय प्रणमुं निसिदिस।

अंत— गर्भावास नावें ते नली, इम भाषें ते सुद्ध केवली।
अठार तिलोतर भाद्रवा सार, वद इग्यारस ने दिव्यवार।

'रोहिणी तप पर संज्झाय' (३ ढाल सं० १८२४ कार्तिक कृष्ण ५, पालणपुर)

आदि— श्री शंखेस्वर जिनपति, वामा मात मल्हार,
परतापूरण परगडो, सिव रमणी दातार।

इस संज्झाय में रोहिणी के तप और निर्वाण प्राप्ति की कथा है। राजा श्रेणिक ने महावीर स्वामी से एक बार पूछा—

देसना सूणी राजा कहे, कहो मूझ विचार,
किम रोहिणीई तप कर्यो, कहो मुझ जगदाधार।

रचनाकाल— अठार चौबीसा हो बरसे, पालणपुर चोमास,
काति बदी पांचमि दिने श्री नवपल्लव पास।[२६१]

आपकी एक गद्य रचना 'चित्रसेन पद्मवती चरित्र बाला०' अथवा स्तवक है। उन्होंने यह बालावबोध अपने शिष्य पुण्यविजय के लिए लिखा था। मो०द० देसाई ने जै०गु० कवियों के प्रथम संस्करण में इसे बालवबोध के बजाय रास बताया था, जिसका सुधार नवीन संस्करण में कर दिया गया है।

भगुदास–

आपकी एक रचना 'चौबीसी'[२६२] (सं० १८३९, जयपुर) का पता चल पाया है परन्तु अन्य विवरण और उदाहरण आदि नहीं मिल सका है।

भाणविजय–

आप तपागच्छ के प्रसिद्ध आचार्य विजयप्रभसूरि के प्रशिष्य एवं प्रेम विजय के शिष्य थे। आपकी रचना विक्रमादित्य पंचदण्ड चरित्र अथवा रास (४ खण्ड ५७९७ कड़ी, सं० १८३० ज्येष्ठ शुक्ल १०, रविवार औरंगाबाद) लोकप्रसिद्ध विक्रमादित्य की कथा पर आधारित है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

अमल कमल सम नयन जुग, सुरपति सेवित पाय।
पास जिणंद दिणंद सम, प्रणमतां आनंद थाय।
X X X X X
कवि अनेक छे भूतले, अेक-अेक थी घणा दक्ष,
ते आगलि मूझ चातुरी, हास्य ठाम परतक्ष।

तो पिण शांत सुधा रसे मुझ कविताई वचन्न,
उत्तमना सहेजो कोई, परम उपगारी मन्न।
प्रथम तिहां विक्रम तणो उत्पत्ति सरस संबंध,
अनुक्रमें लीलावति कथा कहेस्युं सील प्रबंध।
रस रसिक संबंध जास्यो वक्ता तिम होय,
श्रोता तिम हुई रसिक जो अेह रस सम नहि कोय।

इसमें विजयदेव> विजयप्रभ> विजयरत्न> विजयक्षमा> विजयदया> विजयधर्म> विजयप्रभ तथा उनके शिष्य प्रेमविजय को सादर नमन किया गया है। कवि गुरु के संबंध में कहता है—

गुरु— पंडित प्रेमविजय नो सेवक गुरु आणा सिरधारी जी,
भाणविजय विक्रम भूपति नो रास रच्यो सुखकारी जी।

रचनाकाल— संवत् पूर्ण हुतासन वसु ससी जेष्ठ मास सुद दसमी जी,
रवीवारे वलि स्वाति नक्षत्रे शिवयोग ते शिवधर्मी जी;
पूरण रास अे ते दिन कीधो, हर्ष अमृत रस पीधो जी,
अवरंगाबाद मां कारज सीधो, गुणीइं अंगीकरी लीधो जी।

इसमें विक्रमादित्य लीलावती की कथा के माध्यम से शील का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। इनकी एक और रचना है—'चौबीसी'

आदि— मोरा स्वामी हो श्री प्रथम जिणंद के ऋषभ जिनेश्वर सांभलो।

अंत— ध्येय स्वरुपे ध्याय तमने जे, मन वच काय आराधे रे,
प्रेम विबुध भाण पभणे ते नर वर्धमान सुख साधे रे।[263]

यह चौबीसी 'चौबीसी-बीशी संग्रह' पृ० २९३ पर और 'स्तवन मंजूषा' में भी प्रकाशित हैं।

भागीरथ–

आपकी मात्र एक रचना 'सोनागिर पच्चीसी'[164] सं० १८६१ का उल्लेख कस्तूरचंद कासलीवाल ने किया है किन्तु लेखक के संबंध में कुछ नहीं दिया गया है।

भारामल्ल–

आप फर्रुखाबाद निवासी सिंधई परशुराम के पुत्र थे। आप तेरापंथ के विद्वान्

थे। आपने चारुदत्त चरित्र सं० १८१३ भिंड, सप्तव्यसन चरित्र, दान कथा, शीलकथा, दर्शनकथा, रात्रिभोजन कथा आदि कई ग्रंथ लिखे है।[२६५] इनके अधिकांश ग्रंथ चरितग्रंथ है और प्रकाशित हो गये है पर जहाँ तक काव्यत्व का प्रश्न है वह बहुत उच्चकोटि का नहीं है। रचनाओं के कुछ विवरण आगे दिये जा रहे है। सप्तव्यसन समुच्चय चौपाई (१८१४ आषाढ़ शुक्ल १४, शनिवार, फर्रुखबाद) शीलकथा (५४८ कड़ी) का प्रारंभ देखिये—

प्रथमहि प्रणमौं श्री जिनदेव, इन्द्र नरेन्द्र करै नित सेव;
तीन लोक मैं मराल रूप, ते वंदौ जिनराज अनूप।
पंच परम गुरु वंदन करौं, कर्म कलंक छिनक में हरों
बंदौ श्री सरस्वती के पाय, सीलकथा जु कहौं मन लाय।

अंत— शीलकथा यह पूरनभइ, भारामल्ल प्रगट करि कही।[२६६]

स्मरणीय है कि १६वीं शती में एक राजा भारामल्ल हो गये हैं जो स्वयं रचनाकार थे और कवियों को आश्रय देते थे। उनके लिए कवि राजमल्ल ने 'छंदोविद्या' लिखी थी। इनका विवरण यथास्थान इस ग्रंथ के प्रथम खण्ड में दिया जा चुका है।

भीखजी–

आपकी रचना 'आषाढ़ भूति चौढालियु' सं० १८३६ आषाढ़ कृष्ण १०, नागौर) का उल्लेख देसाई ने किया है।[२६७]

भीखणजी (भीखु)–

आप तेरापंथी संप्रदाय के प्रवर्त्तक थे। इनका जन्म मारवाड़ के कंटालिया ग्राम में सं० १७८३ में शांखलेचा बलुजी की पत्नी दीपाबाई की कुक्षि से हुआ था। २५ वर्ष की वय में आपने स्थानकवासी आचार्य रघुनाथ जी से दीक्ष ली, किन्तु उनसे मतभेद होने पर आपने सं० १८१७ में अपना एक संप्रदाय चलाया। जिसे तेरह या तेरापंथी कहा जाता है। आप अच्छे लेखक थे। आपकी ५५ पद्यवद्ध रचनायें 'भिक्षु ग्रंथ रत्नाकर' के खण्ड १ और २ में संकलित-प्रकाशित है। तीसरे खण्ड में गद्य रचनायें हैं। प्रथम खण्ड में सैद्धांतिक और द्वितीय खंड में चरित काव्य संकालित है। आपने सं० १८६० में शरीर त्याग किया।

अनुकम्पाढाल अथवा चतुष्पदी, निक्षेप विचार वारव्रत चौपाई और नवतत्त्व

चौ० आदि का उल्लेख देसाई जी ने किया है किन्तु रचनाओं का विवरण उदाहरण नहीं दिया है।[२६८]

राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २३३ से इतनी सूचना विशेष रूप से मिलती है कि उक्त ग्रंथ के प्रकाशित होने तक भिक्षु ग्रंथ रत्नाकर का तीसरा खण्ड प्रकाशित नहीं हुआ था।

भीमराज–

खरतरगच्छीय जिनविजयसूरि के आप प्रशिष्य एवं गुलाबचंद के शिष्य थे। आपकी दो रचनाओं का पता चला है। प्रथम शत्रुंजय उद्धार रास, (सं० १८१६ ज्येष्ठ शुक्ल सूरत) की इसी वर्ष की लिखित प्रति प्राप्त है। इसलिए यह रचनाकाल है या प्रति लेखन काल, यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है। आपकी दूसरी रचना है—

'लोद्रवा स्तव' (सं० १८२४, गाथा ११) यह एक यात्रा वर्णन है। लोद्रवा तीर्थ की यह यात्रा कवि ने जिनयुक्त सूरि के साथ की थी। आपकी दोनों रचनायें तीर्थस्थलों से संबंधित हैं, किन्तु उनका विवरण उदाहरण न मिल पाने से उनके मूल्यांकन का प्रश्न ही नहीं उठता।[२६९]

भूधर–

लोकागच्छीय जसराज आपके गुरु थे। आपने सं० १८१७ में गोडंल में चौमासा करते हुए 'अष्टकर्म तपावली स्वाध्याय' की रचना की। इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

वीर वांदी रे पूछें गोयम गणहरु,
कम्म पयडि रे खेइरे किम थाये जग गुरु।

यह रचना गौतम गणधर और महावीर स्वामी के संवाद रूप में लिखी गई है।

अंत— इम वीर वाणी सुणो प्राणी आंणी चित्त उदार अे,
अे तप तणी श्रेणी कही केणी गोडंल ग्राम मझारअे।
(रचनाकाल) मुनि अेल वसु चंद्र वर्षे हर्षे कृत चउमास अे,
सुगुरुवर जसराज अनुचर शिष्य भूधर भास अे।

आपकी दूसरी रचना 'चित्तचिंतवणी चौसठी (श्रावण सं०१८२०, गोंडल)

आदि— प्रवचने पंचपद नो स्तवनानो अधिकार,

ते इहां हूं रे आंखु चित्त चेतवणी अे सार।

अंत— चित्त चिंतवणी चोसठी पंचपद नो अधिकार,
कही रामन कहेणे गुंडल गाम मझार।
शील रथ नख वर्षे हर्षे श्रावण मासे,
श्री गुरुपरसादें कही भूधरे उल्लासे।[२७०]

इसकी कवि द्वारा स्वयं लिखित प्रति प्राप्त है। प्रथम रचना का रचनाकाल जानने के लिए यदि 'ओल' शब्द को इला मान कर 'एक' अर्थ किया जाय तो १८१७ सं० मिलेगा, वर्ना रचनाकाल शंकास्पद रहेगा।

१८वीं शती के प्रसिद्ध कवि भूधरदास खण्डेलवाल की चर्चा इस ग्रंथ के तृतीय भाग में की जा चुकी है। उन्होंने पार्श्वपुराण सं० १८०९ आदि कुछ रचनायें १९वीं शती में भी की थी।[२७१]

भूधरमिश्र–

आप आगरा के समीपस्थ शाहगंज नामक स्थान के निवासी थे। आपके गुरु का नाम रंगनाथ था। पुरुषार्थ सिद्धुपाय पढ़ कर वे जैन धर्म की तरफ आकृष्ट हुए और इन्होंने इस ग्रंथ का 'भाषा' में अनुवाद सं० १८७१ में लिखा। मिश्र जी अच्छे कवि थे। आपके एक अन्य ग्रंथ 'चर्चा समाधान' का भी उल्लेख मिलता है—

'पुरुषार्थ सिद्धुपाय' का मंगलाचरण निम्नवत है—

नमो आदि करता पुरुष आदिनाथ अरिहंत।
द्विविध धर्म दातार धुर, महिमा अतुल अनंत।
स्वर्गभूमि पातालपति जपत निरंतर नाम,
जा प्रभु के जगहंस कौर जगपिंजर विश्राम।
जाकौं सुमरत सुरत सौं, दुरत दुरन यह भाय,
तेज फुरत ज्यों तुरत ही, तिमिर दूर दुरि जाय।[२७२]

आपकी भाषा प्रांजल ब्रज भाषा है जो आपकी स्थानीय भाषा के साथ ही तत्कालीन काव्यभाषा भी थी।

मकन–

श्रावक, तपागच्छीय विजयधर्म सूरि > राजविजय के शिष्य थे। आप अच्छे लेखक थे। आपकी कुछ रचनाओं के विवरण- उद्धरण आगे दिये जा रहे हैं- 'शियल

नी नववाड़' (सं० १८४० श्रावण शुक्ल ९, गुरुवार, आणंदपुर) का आदि—

श्री सरस्वती समरुं सदा, पभणु सुगुरु पसाय,
सुवचन आपो सारदा, मेहर करी मुझ माय।
वाणी वीर जिणंद की, सांभली सास्त्र मझार।
वाड नव कही सियल नी, सुणजो सहु नरनार।

गुरुपरम्परा— श्री विजय धर्म सूरी तणो, राजविजे उवझाय जी,
सांचो श्रावक तेह तणो, प्रणमी गुरु ने पाय जी।
वाड करी सीयल व्रत तणी, मीठा अमिय समाणी जी,
सीखामण सहु को भली, कहे मकन मुख वाणी जी।

रचना स्थान एवं समय— आणंदपुर में रची, संवत् ते सोह अठारे जी,
चीत चोख चालीस मां, श्रावण सुद गुरुवारे जी।

अंत— नववाड नो नोमे करी, सामंली सास्त्रे सोय जी,
अधिक ओछे को मात्रा अे, मिच्छामी दुक्कड़ होय जी।

यह रचना 'जैन सज्झाय माला भाग १ (बालाभाई) और जैन संज्झाय संग्रह (ज्ञान प्रसारक सभा) के अलावा 'ब्रह्मचर्य' नामक पुस्तक के पृ० १४५ पर भी छपी है।

बारमास (सं० १८४८ फाल्गुन शुक्ल १०, राणपुर)

आदि— सरसति ने चरणो नमुं सद्गुरु ने आधार,
सत्यवचन द्यौ सारदा, भावै भणुं बारमास।

चैत्यमास का वर्णन— चइत रे चित चोखु करी, धरो पास नुं ध्यान,
धन्य पाम्या पुन्य कीजिए, म करीश मन अभिमान।

अंत— श्री विजयधर्म सूरि पाटवी, विजय जिणंद सूरिराय,
सांचो श्रावक तेहनो, पभणे सुगुरु पसाय।
युक्ति श्री जिनवर सेव जो भाव थी भक्ति करेंह,
मकन कहे सुणो मानवी, धर जो धर्म शुं नेह।

रचनाकाल— अड़ताला मां राणपुरे, संवत ते सो पै अठार,
गुण गाया मास फागुणे, सुकल दसमी तेणी पार।[२७२]

यह रचना 'जैन प्रभाकर स्तवनावली' (भीमसी माणक) पृ० ५५८ पर प्रकाशित है।

गज सुकुमाल संञ्झाय—

यह रचना जैन संञ्झाय भाग १ में और अन्यत्र भी प्रकाशित है। श्री देसाई ने इस कवि का नाम मुकुंद मोनाणी[२७४] भी बताया है परन्तु इसका प्राप्त उदाहरणों या अन्य साक्ष्यों द्वारा कोई प्रमाण नहीं मिला है।

मणिचन्द्र–

खरतरगच्छीय आध्यात्मिक यति थे। इनकी रचना 'आध्यात्मिक संञ्झायों' सं० १८४९ में कुछ पूर्व की रचित है। इस संञ्झाय संग्रह में आत्मशिक्षा संञ्झाय पृ० १२५ भावीभाव संञ्झाय पृ० १९१ और वैराग्यकारक संञ्झाय पृ० २१३-२३ पर प्रकाशित है। देसाई ने जैनगुर्जर कवियों के प्रथम संस्करण[२७५] में इस कवि को बीसवी सदी का कवि बताया था किन्तु संञ्झाय संग्रह की एक पोथी में लेखनकाल सं० १८४९ दिया हुआ है, इससे स्पष्ट है कि कवि का समय इससे पूर्व होगा अत: वह निश्चय ही १९वीं शती का कवि है। इसलिए नवीन संस्करण के संपादक श्री कोठारी ने इन्हें १९वीं शती में रखा है।[२७६]

मतिरत्न गणि–

आप खतरगच्छ के साधु दीपचंद के प्रशिष्य और देवचन्द्र के शिष्य थे। आपकी रचना 'सिद्धाचल तीर्थयात्रा' (५ ढाल, सं० १८०४ के आसपास) एक यात्रा वर्णन हैं। सूरत के साह कचरा ने संघयात्रा सूरत से निकाली थी जिसमें पहले जलमार्ग से संघ भावनगर पहुँचा। (भावनगर की स्थापना भावसिंह ने सं० १७७४ वैशाख में की थी। संघ यात्रा के समय भावनगर के वही शासक थे। १२ वर्ष राज्य करके वे सं० १८२० स्वर्गवासी हुए थे।) भावनगर से चलकर संघ पालीताणा गया जहाँ से संघ यात्रा में देवचन्द्र भी शामिल हो गये। देवचंद्र के संबंध में कवियण कृत देवविलास में लिखा है—

> संवत् दस अष्टादसें, कचरा साहा जीइ संघ।
> श्री शत्रुंजय तीर्थनो, साथै पधार्या देवचंद्र।

इससे तो संघ यात्रा सं० १८१० में निकाली गई लगती है परंतु स्वयं देवचंद्र ने अपनी रचना 'सिद्धाचल स्तवन' में संघ यात्रा का समय १८०४ दिया है अत: इसी अवधि में किसी समय यह संघ यात्रा हुई जिसके कुछ ही समय पश्चात् यह रचना हुई होगी। इसीलिए रचनाकाल १८०४ के आसपास दिया गया है। इसका प्रारंभ इन पंक्तियों से हुआ है—

> सरसति सामिने पाय नमी, मांगु वचन विलास;

संघवी शेत्रुंज गिरि तणो, गावा मन उल्लास।
कारतिक बदि तेरस दिने, संघ चाल्यो सुखकारी रे;
त्रीण दिवस पादर रह्या, संघवी नी जाऊं बलिहारी रे।
खरतरगच्छ देवचंद जी, ते पिण संघ मांहे जाणुं रे;
पंडित मांहि शिरोमणी, तेहनी देशना भली बखाणुं रे।
शेत्रुंजे भेट्यो धरी मन बहु अतिमान रे,
राजा पृथ्वीराज जी रे, कुअंर श्री नवधन नामरे।

इस प्रकार इस वर्णन में केवल धर्म नही बल्कि तत्कालीन भूगोल और इतिहास का भी पर्याप्त उल्लेख मिलता है।

अंत में कलश दिया गया है।

यथा— तस संघ यात्रा सुविधि करणी मन प्रमोदे आचरें।
तस तवन गुंथ्यो खरतर संघपति हेते आदरे।
उवझायवर श्री दीपचंद शिस गुरु देवचंद अे,
तस सिस गणि मतिरत्न भाषैं सकल संघ आणंद अे।[२७७]

यह महत्त्वपूर्ण रचना 'प्राचीन तीर्थमाला संग्रह' के पृ०१७६-८८ पर प्रकाशित है।

मतिलाभ–

(मयाचंद) इनका जन्म नाम मयाचंद था। ये खरतरगच्छीय ऋद्धिवल्लभ के शिष्य थे। इन्होंने सं० १८१२ में 'नवतत्त्व स्तवन' की रचना मुलतान में की। इसमें ४५ पद हैं। आपकी दूसरी रचना 'सवा सो सीख संज्झाय' या बुद्धि रास (१४५ पद्य) है।[२७८] देसाई ने सवा सो सीख संज्झाय या बुद्धि रास का कर्त्ता रत्नसिंह के शिष्य किसी अन्य मयाचंद को बताया हैं। बुद्धि रास की ये पंक्तियाँ प्रमाण स्वरुप प्रस्तुत है—

श्री मुलतान नगर सुखकारी, सीख सवा सो इम विस्तारी,
गुरु रत्नसिंह सुगुरु चिरनंदे मुनि मयाचंद सदा पद वंदे।

इन पंक्तियों से स्पष्ट होता हैं कि इन मयाचंद मुनि के गुरु रत्नसिंह थे अत: ये 'नवतत्त्वस्तवन' के कर्त्ता मयाचंद के भिन्न है। दोनों कवियों की रचनायें मुलतान में हुई; शायद इसी से एक कवि होने का भ्रम हुआ, किन्तु यह स्पष्ट है कि ये दो कवि है।

मतिलाभ या मयाचंद I –

मतिलाभ या मयाचंद प्रथम की रचना नवतत्त्वस्तवन' है जिसका रचनाकाल देसाई ने सं० १८१२ ज्येष्ठ शुक्ल ४ बताया है।[२७९]

मयाचंद II –

मयाचंद द्वितीय की रचना 'सवासो सीख संज्झाय' है। इसका रचनाकाल अज्ञात है, उसका भी रचना स्थान मुलतान है।

मयाचंद III –

आप लोकागच्छीय लीलाधर के शिष्य थे। इन्होंने 'गजसिंह राजा रास' की रचना १८१५ में की। लीलाधर लोका० कृष्णदास के शिष्य थे। गजसिंह राजा रास (२७ ढाल सं० १८१५ चैत्र शुक्ल ८ गुरुवार, नवानगर) का आदि—

शांति जिणंद सुख संपदाकारी पर कृपाल,
वंदु हित करि हरष थी देज्यो वयण रसाल।

सुखदा वरदा सारदा, वसि मुझ चित्त आगार,
गजसिंध राय चरित्रनों भाखूं स्तोक विस्तार।

यथा योग्य नवरस तणो, संक्षेपे विस्तार,
ते सुणज्यो श्रोता तुमें भविजन वचन प्रचार।

यह रचना निशीथ वृत्ति के आधार पर नवानगर में लिखी गई,यथा—

श्री कृष्ण दास जी ऋषिवर मोटा विद्या तणां भंडार रे;
लीलाधर जी तसु सिस कहिये खिमावंत अणगार रे।
तस सेवक मुनि मयाचंद पभणे श्री गुरु ने पसाय रे;

रचनाकाल— संवत् अठार पनरोतरा बरसे, चैत्र मास सुभ ठाय रे;
कृष्णाष्टमी गुरुवारे भाख्यो अे अधिकार रे।
संघ तणे आग्रह करीने; रच्यो संबंध उदार रे।[२८०]

मतिसागर–

आपके गुरु का नाम वीरसुंदर था। आपने ज्योतिष संबंधी ग्रंथ लघुजातक पर बाला० की रचना सं० १८४६ से पूर्व कीं। मूल ग्रंथ अवंती के ब्राह्मण विद्वान् वराहमिहिर ने भोजराज की प्रेरणा से लिखी थी। इस बालावबोध के प्रारंभिक दो छंद संस्कृत में हैं

उसके बाद लिखा है—

"अवंती ने ब्राह्मण वराहमिहिर संज्ञ कि शिप्रस्कंध ज्योति निपुणेइ श्री भोजराज ने उपगार कारण लघुजातक ग्रंथ कीधो। मगध देस नी भाषाकारे सोमेश्वर बचन काकरी, सांप्रत श्री मतिसागरेण उपाध्याय श्री वीरसुंदर वाचणाचार्य ने प्रसादि गुज्जर भाषा वचनिका करै छै। ग्रंथनी आदि ग्रंथ निर्विघ्न करवा कारणि सूर्य ने नमस्कार कीजै छै।" अर्थात् वराहमिहिर के मूल ग्रंथ लघुजातक पर मागधी में सोमेश्वर ने वचनिका लिखी। उस पर गुर्जर में मतिसागर ने बालावबोध लिखा। यह ग्रंथ सोमेश्वर की वचनिका पर आधारित है जैसा निम्नांकित पंक्तियों से प्रकट होता है—

"इति सोमेश्वर विरचितायां लघुजातक टीकायां नष्ट जातकाध्याय त्रयोदसम समाप्त।"[२८१]

मनरंग लाल–

आप कन्नौज निवासी दिगम्बर जैन श्रावक कनौजी लाल पल्लीवाल की पत्नी देवकी की कुक्षि से पैदा हुए थे। कन्नौज के श्रेष्ठि गोपालदास के आग्रह पर कवि ने 'चौबीस तीर्थंकर का पाठ' सं० १८५७ में लिखा। इसके अलावा नेमिचंद्रिका, सप्त व्यसन चरित्र और सप्तर्षि पूजा नामक ग्रंथ भी लिखे। सं० १८८९ में इन्होंने 'शिखर सम्मेदाचल माहात्म्य' लिखा जिसकी कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ आगे प्रस्तुत की जा रही है—

प्रणम रिषभ जिन देव, अजित संभव अभिनंदन;
सुमत पदम सुपार्श्व चन्द्र प्रभुकर्म निकंदन
पुष्पदंत सीतल श्रीयांस बासपुज्ज विमलवर,
जिन अतंत प्रभु धर्म सांत जिन कुंथ अरहनर।
श्री मल्लिनाथ मुनि सुष्ट व्रत, निम नेमी आनंद भर।
जिन महाराज वामा तनय, महावीर कल्यानकर।
सिषिर महातम देष के इह सरधा हम कीन,
करो जात्र मन लाय के, जो सुष चाहे नवीन।[२८२]

नेमिचन्द्रिका का रचनाकाल कोठारी जी ने अपनी सूची में सं० १८३२ बताया है।[२८३] इन्होंने रीति कालीन प्रसिद्ध मात्रिक छंद कवित्त का अपनी रचनाओं में अच्छा प्रयोग किया है। यथा—

"पुत्र होत पौत्र होत और परपौत्र होत, धन धान्य सदा मान्य होत लोक में।

कामदेव रूप होत भूपन को भूप होत, आनंद को कूप होत देवन के थोक में।
रिध होत सिध होत और हूं समृद्ध होत, करुणा की बुद्धि होत रहे नाहि लोक में।
कहे मनरंग सांच जात के करैयन को एती बात होत सबै फलक की नोक में।

वृंदावन चौबीसी पाठ के साथ मनरंग चौबीसी पाठ का भी समाज में बड़ा प्रचार हुआ था। मनरंग के पाठ में सौष्ठव और प्रसाद गुण अधिक है। भक्ति का स्वाभाविक प्रवाह मिलता है यथा—

भलो वा बुरो जो कछू हों तिहारो। जगन्नाथ दे साथ मो पै निहारो।
बिना साथ तेरे न ए कौ बनेगा, नमो जय हमे दीजिए पाद सेवा।[२८४]

इन पंक्तियों में खड़ी बोली के प्रयोगों का ऐतिहासिक दृष्टि से भाषा वैज्ञानिक महत्त्व है।

मनराखन लाल–

आप जामसा निवासी थे। आपने 'शुद्धात्म सार' छंद वद्ध की रचना सं० १८८४ में की।[२८५]

मन्नालाल सांगा–

आपने 'चारित्रसार वचनिका' की रचना सं० १८७१ में की।[२८६]

मनसुखसागर–

आपने सं० १८४६ में सोनागिरि पूजा और रक्षाबंधन पूजा नामक पूजा पाठ संबंधी पोथियों की रचना की है।[२८७]

मयाराम–

(मायाराम) भोजक, आपकी रचना 'प्रद्युम्नकुमार रास' (सं० १८१८ फाल्गुन शुक्ल ६, सोमवार, बड़नगर) का आदि इस प्रकार है—

आद्य सकत्य आद्य सक्त नमो अंबाई।
बाध वाहिनी वरदायिनी, सरस वयण सारदा मात।
गुरु गोत्रज माता पिता, तुझ पाअे प्रणमुं सुमतिदाता।
वचनविलास पद्युबंध हरण कहुं कथा आणंद;
मयाराम मां अंबिका पूरे परमाणंद।

अंत— वांछा उत्यम मोह अमीचंद रायचंद सुत प्रकासे जी,
भोजक भावधरी गुण गांतो, बड़ नगर मां वास जी।
शत्रुंजा मातम मां सुणीज्यो वली हरिवंश पुराणे जी।
गुणतां भणतां सुणतां भावै तस घर सयल निधान जी।
शुद्ध-बुद्ध सूभ मत्थ सम आवे, अंबा मात पसाय जी।
रीषभदेव जिन जी मंगली के, मयाराम गुण गाया जी।[२८८]

इनकी एक अन्य रचना 'समवशरण मंगल' का उल्लेख डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल ने किया है। इसका रचनाकाल उन्होंने सं० १८२१ बताया है। किन्तु अन्य विवरण एवं उद्धरण आदि कुछ नहीं दिया है।[२८९]

मलूकचंद

(श्रावक) आप की रचना का नाम है "वैद्यहुलास"। यह वैद्यक ग्रंथ है; इसमें ५१८ कड़ी है। समय निश्चित ज्ञात नहीं हो सका किन्तु १९वीं शदी के मध्य की रचना बताई गई है।

आदि— नक्षत्र देव चित्त धरनधर, रिद्धि सिद्धि दातार,
विमल बुद्धि देवैं सदा, कुमतिविनासन हार।

सीस चर्ण लौं औषध कहैं, सेवक रोगी बहुसुख लहै।
लुकमान हकीम जु कही तिव्व, तिसतै औषध कहे जु सव्व।"

इससे प्रकट होता है कि यह लुकमान की तिव्विया पद्धति की औषधि संबंधी किताब है और मालूकचंद वैद्य कम हकीम ज्यादा थे।

अंत— वैद्य हुलास सुनाम धरि, कीयो ग्रंथ अमीकंद;
श्रावक धर्म कुल जन्म को, नाम मलूक सुचंद।[२९०]

स्पष्ट है कि लेखक का नाम मलूकचंद है, किन्तु मात्रा छंद का ध्यान करके 'सु' शब्द जोड़ दिया है। जैन श्रावक और साधु वैद्यक, ज्योतिष का भी धर्म-दर्शन के अलावा अच्छा ज्ञान रखते और प्रचार करते थे। वे बहुश्रुत और पठित होते थे।

महानंद–

आप लोकागच्छीय रूप; जीव; जगजीवन; भीमसेन; मोटा के शिष्य थे। इन्होंने 'रूपसेन रास' (५ खण्ड ७५ या ८५ ढाल, २०१९ कड़ी, सं० १९०९ या १८०५,

वैशाख शुक्ल सप्तमी बुधवार) की रचना की। इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ निम्नांकित हैं—

श्री रिषभादिक नित्य नमूं, चोविसे जिनराज,
सेव्यां सीव संपति मिलै, सीझे सधला काज।

गुरु परंपरा— मम गुरु मोटा ऋषि तणा, पद प्रणमुं हितवंत;
गुरुपद सेव्या संपजे, मंदमती मतीवंत।

रचनाकाल इन अंतिम पंक्तियों में दिया गया है—

संवत् निधि नभ वसु शशि, वैसाख मास वखाण्यो री।
शुक्ल पक्षे चंद्र ज वारे, सप्तमी दिवस सुजाणो री।

जैसा महानंद नाम हैं तथैव आप महाकवि भी थे और आपने बड़ी छोटी बीसो रचनायें की है जिनमें से कुछ अत्यन्त सरस हैं। उनकी कुछ विशेष रचनाओं का संक्षिप्त परिचय आगे प्रस्तुत किया जा रहा हैं—

दशार्णभद्र संज्झाय ढालवंध (सं० १८३२, चौमासा, सूरत)

रचनाकाल— अष्टादश वत्रीस वरसे, सुरत नगर चौमास अे;
तस्यानुग्रह पामी प्रेमे, भली भणी अे भास अे।
मोटा ऋषि मुनि चरण सेवक, मुनि महानंद कहे मुदा;
रीधि सीधि अणंद आयो, संघ ने दिन-दिन सदा।''
सनत्कुमार रास (१८३९ वैशाख शुक्ल तृतीया, दीव)

आदि— श्री श्रुतदेवी सारदा, प्रणमी श्री गुरुपाय,
चक्री सनत्कुमार नो, स्तवसुं गुण राजाय।

रचनाकाल और स्थान के लिए निम्न पंक्तियाँ देखें—

श्री गुण सूरि सोहे सोमचंद जी सुखकार
रही दीव चौमासूं, संवत शत अठार।
उगणचालीस वरसे, वैशाख मास बखाण;
ऊजल पखवाड़े आखात्रीज तिथि जांण।

कलश में भी रचनाकाल दिया है, यथा—

अठार सै सत इगुण चालीसे सम्यक रची संज्झाय जी।''
२४ जिनदेह वरण स्त० (४ ढाल सं० १८३९ दीव)

रचनाकाल— नंद त्रय वसु चंद संवत शुभ जाणीये;
दीव वंदर नो संघ बड़ो वखाणी ये।

सनत्कुमार रास और इस स्तवन में आचार्य सोमचंद सूरि की वंदना की गई है।

शियल संज्झाय (सं० १८४३ चौमास, भावनगर) का आदि—

श्री गुरु चरण नमी करि, गांसू सीयल सुव्रत हो मीत,

रचनाकाल— अठारे तेतालीस मेंभावनागर चोमास हो मीत,
महानंद मुनिवर रंग थी, विधि शीयल संज्झाय हो मीत।

नेमराजुल बारमास (८० कड़ी सं० १८४५ माह शुक्ल ८)

रचनाकाल— वेद पंडव ने मन आणो, नेमचंद संवत ओह बखाणो,
उद्योत अष्टमी माह मास, मार्त्तंड पूरांण उमाह।

यह रचना आत्मानन्द शताब्दी स्मारक ग्रंथ पृ० १७६-१८३ पर प्रकाशित है।

ज्ञानपंचमी स्वाध्याय (४ ढाल, सं० १८४९, सुरत) का आदि—

श्री नेमीश्वर जिन नमूं, ब्रह्मचारि भगवान;
उज्वल पंचमी अवतर्या, श्रावण सुद नी स्वाति।

रचनाकाल— अष्टादश शत ऊपरे, वर्ष उगण पंचास,
श्री पूज्य की सोमचंद जी, सूरति नयर चोमास।

कल्याणक चौबीसी (सं० १८४९ आसो सुद १५, रविवार सुख)

आदि— शासनपति चौबीस ना प्रेमे प्रणमी पांय;
शासन देवी सानिधि, गांवु श्री जिनराय।

रचनाकाल— अष्टादश इगुण पंचासवरसे, आश्विन मास अति भलो;
पूनिम तिथि ने वार दिनकर, स्तव्यो में त्रिभुवन तिलो।

'चौबीसी' (रचना स्थान दीव वंदर) रचनाकाल नहीं मिला, नमूने के लिए दो पंक्तियाँ—

आदेशर अवधारिये रे प्रभु विनतडी अतिसार,

परमारथ पद नो धणी रे प्रभू आतमनो आधार।

इन बड़ी कृतियों के अलावा कई छोटी-छोटी रचनायें भी आपने की हैं जैसे विनय स्वाध्याय (९कड़ी सं० १८०९, चौमासा, पालणपुर);

आत्मशिक्षा स्वाध्याय (१५ कड़ी, सं० १८१५ बड़ोदरा);

और 'पर्युषण पर्व स्वाध्याय' इत्यादि। इनमें से प्रथम का रचनाकाल इन पंक्तियों में दृष्टव्य है—

निधिनव वसु शशि वर्ष में रे, श्री गुरु सुगुण चौमास;
पदपंकज प्रणमि करि रे, कहे महानंद उल्लास रे।"

दूसरे स्वाध्याय के आदि और अंत की पंक्तियाँ निम्नवत् हैं,

आदि— हां रे जागो आंतमग्यानी, अेसी शीख सुगुर चित मांनीरे।

अंत— वदपद्र नयर सदा सुखकारि, जिहां संघ सकल धर्मधारी रे;
अष्टादशपनर मन भाया, इम महानंद मुनी गुण गाया रे।

तीसरी रचना के भी आदि अंत की पंक्तियाँ प्रतुत हैं-

श्री गौतम गुणधामी, पूछे श्रेणिक पद सिर नांमी रे।

अंत— अष्टादस ऊपर संवत उगणपचास,
श्री पूजा सोमचंद जी, सूरतनगर चौमास।

अर्थात् 'पर्युषण स्वाध्याय' की रचना सं० १८४९ में सूरत में चौमासे के समय १० कड़ी में पूर्ण हुई थी।

इन्होंने गद्य में कल्पसूत्र पर टव्बा सं० १८३४ में लिखा था। इसका कलश संस्कृत में है। अंत की पंक्तियाँ मरुगुर्जर गद्य के नमूने के रूप में दी जा रही हैं—

"इहां चोमासुं रह्याते साधु मंगलीक नै अर्थे कल्पसूत्र सरिखुं श्री पर्य्युषणा नामै कल्प अध्ययन ते पाँच अथवा आठ दिन मांहै बांचै तिहां कलप ते साधु नो आचार, ते दस प्रकारें जाणवो।"[२११]

इस प्रकार मह देखते हैं किये गद्य ओर पद्य दोनों विधाओं में रचना करने में सक्षम एवं उत्तम रचनाकार थे।

माखन कवि–

आपने 'पिंगल छंद शास्त्र' की रचना सं० १८६३ में की। यह छंद शास्त्र पर रचित उत्तम कृति है। इसका अपर नाम 'माखन छंद विलास' भी है। इनके पिता गोपाल भी अच्छे कवि थे। इसमें अनेक दुर्लभ छंदों यथा संखधारी, डिल्ल, करहंया समानिका सारंगिका, तरंगिका, भ्रमरावलि आदि का सुष्ठु परिचय दिया गया है। सर्व प्रचलित मात्रिक छंद जैसे दोहा, चौबोला, छप्पय, सोरठा आदि के अलावा संस्कृत के प्रसिद्ध छंदों भुजंग प्रयात, हरिमालिका और मालिनी आदि का सुबोध परिचय प्रस्तुत किया गया है। यह रचना कवि ने अपने पिता के आदेश पर की थी। रचनाकाल इस प्रकार दिया है—

संवत वसु रस लोक पर नखतइ सा तिथि मास,
सित वाणा श्रुति दिन रच्यौ माखन छंद विलास।
पिंगल सागर छंदमणि वरण वरण वहुरंग,
रस उपमा उपमेय तें सुंदर अरथ तरंत।
ताते रच्यौ विचारि कै नर वानी नरहेत,
उदाहरण बहु रसन कै वरण सुमति समेत।
विमल चरण भूषित कलित, बानी ललित रसाल,
सदा सुकवि गोपाल कौ, श्री गोपाल कृपाल।
तिन सुत माखन नाम है उक्ति युक्ति त हीन,
एक समय गोपाल कवि सासन हरि यह दीन।
पिंगल नाग विचारि मन नारी बानीहि प्रकास,
यथा सुमति सौं कीजिए, माखन छंद विलास।[२१२]

माणक–

(मुनि) आपने खरतरगच्छीय आचार्य जिनलाभ सूरि की स्तुति में दो गहूलियाँ लिखी है। इनके अतिरिक्त आपने चौबीसी और कई स्तवन आदि भी लिखे है। प्रथम गहूली का प्रारंभ इस प्रकार हुआ है—

आज सुहानो जी दीह, हाज ने बधावो जी अम्ह घर आंगनै जी।
अंग उमाहो जी आज, सद्गुरु हे आया आणंद अति धणै जी।

इस गहूली से ज्ञात होता है कि जिनलाभ सूरि विक्रमपुर निवासी पंचानन की पत्नी पद्मा दे की कुक्षि से उत्पन्न हुए थे। अल्प वय में ही जिनभक्त सूरि से दीक्षा ली और १८०४ में उनके पट्टधर प्रतिष्ठित हुए। आपने १८ वर्षों तक विभिन्न प्रदेशों में

विहार किया, धर्मोपदेश किया और सं० १८३४ में गूढ़ा में चौमासा के समय स्वर्गवासी हुए। यह रचना ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में संकलित 'जिन लाभ सूरि गीतानि' शीर्षक पाँच रचनाओं में शीर्षस्थ है।[२९३]

माणिक्य सागर–

आप तपागच्छीय कल्याण सागर सूरि के भ्राता क्षीर सागर के शिष्य थे। आपने 'कल्याण सागर सूरि निर्वाण रास' (सं० १८१७ फाल्गुन कृष्ण ५, बुधवार) की रचना की है। उसका आदि इस प्रकार है—

प्रणमुं प्रेमे वीरना पद पंकज सुखदाय;
गुरु गण केरी संकथा करवा मुज अभिप्राय,
तपगच्छ केरो राजिओ विधापूर सनूर,
सोभागी सिर सहेरो कल्याणसागर सूरि।

रचनाकाल— संवत अष्टादश सत्तर वरसे भलो, मास फाल्गुण तणो कृष्णपक्ष;
पंचमी चैत्र बुधवासरे गुरु गणी, गावतां हरखीया सम्य दक्ष।

अंत— तास पद सवेना पुन्य थी में लही, जास सुदृष्टि थी सुगुरु गाया;
माणिक्यसागर कहें गावता गुरु तणा, ऋद्धिवर सिद्ध नव निद्धि पाया।
प्रीति थी जे नर नारि गुरु गुण सुणें जपे नाम नित चित्त सांचे;
तास घर गाजती मदवती गजघटा, अतुल मंगल तणो मेह मांचे।[२९४]

यह रचना 'जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय' में पृ० २५४ से २६४ पर प्रकाशित है।

माणेक विजय–

ये तपागच्दीय गुलाबविजय के शिष्य थे। इन्होंने 'स्थूलिभद्र कोशा संबंध रसबेलि' (१७ ढाल, सं० १८६७, ५ मोई) की रचना की है उसका आदि निम्नवत् है—

श्री पार्श्वदेव ने प्रणमीये, सरस्वति तुं समरथ;
स्थूलिभद्र थूणतां थका, आपे सरस अरथ।

गुरु— कल्पतरु पूरे मनकामि, रतन चिंतामणि पांमि;
श्री गुलाब विबुध सुपसाइ पामि, माणिक्य महोदय कांमि।

अंत में रचनाकाल इन पंक्तियों में दर्शाया गया है—

दर्भावति मंडन दूह विहंडन, सांभल लोटण पास,
शील भेद समकित गुण वर्षे, सुद तेरस सीत मास।
श्री विजय जिनेन्द्र सूरिश्वर राजे, दर्भावति रही चौमास,
शा हेमा सुत माधव वचने, रसवेल रची सुविलास।[२९५]

अर्थात् यह रचना 'दर्भावती' में शा हेमा के पुत्र माधव के आग्रह पर रची गई थी।

मानविजय । –

तपागच्छीय रत्नविजय आप के गुरु थे। आपने सं० १८४० फाल्गुन शुक्ल १३ को सिद्धाचल तीर्थ माला' की रचना की। इसका अन्य विवरण-उद्धरण उपलब्ध नहीं हो सका।[२९६]

मानविजय ॥ –

तपा० विजयराज सूरि; दानविजय; वृद्धिविजय; कपूरविजय के शिष्य थे। आपकी दो रचनाओं का उल्लेख मिलता है प्रथम 'गजसिंह कुमार रास' (४ उल्लास ६४ ढाल सं० १८४३ फाल्गुन शुक्ल २ पिंडपुर विजय लक्ष्मी सूरि राजये) का आदि—

श्री जिन चौबीसे नमुं, विहरमान वलि बीस;
प्रेम धरीने प्रणमतां, पुहचे सयल जगीस।

इसमें पंच परमेष्ठी की वंदना के पश्चात् कश्मीर की विख्यात सारदादेवी की वंदना है। तत्पश्चात् मरुदेशस्थ अज्झारी देवी की भी प्रार्थना की गई है। यह कृति शील के महत्त्व के दृष्टांत स्वरुप गजसिंह कुमार का शीलवान चरित्र पाठको के सम्मुख प्रस्तुत करती है, यथा—

शीलोपरि जे वर्णवुं गजसिंह कुमार चरित्र;
उत्तमनां गुण गावतां होवे जनम पवित्र।

गुरुपरंपरान्तर्गत ऊपर दिए गये गुरु जनो की कवि ने वंदना की है।

रचनाकाल— संवत राम वाण घृति वर्षे, मुझ मति ने अनुसारी जी;
फागुण सित द्वितीया ने दिवसे, रास रच्यो अे वारी जी।

यह रचना कवि ने अपने शिष्य प्रताप के लिए की थी। आपकी दूसरी रचना 'मानतुंग मानवती रास' का मात्र नामोल्लेख मिलता है। रचना से संबंधित अन्य विवरण

एवं उद्धरण आदि उपलब्ध नहीं होते हैं।[२९७]

माल–

लोकागच्छ के खूबचंद संतानीय नाथा जी इनके गुरु थे। इन्होंने कई रचनायें की है; उनमें से कुछ का संक्षिप्त परिचय-उद्धरण प्रस्तुत किया जा रहा है-

आषाढ़ भूति चोढालियु अथवा संज्झाय (सं० १८१० आषाढ़ शुक्ल २, भुज)

आदि— वाणी अमृत सारखी आपो सरस्वती माय;
निज गुरु चरण नमी करी, गांसू महामुनिराय।
लोभे करी माया रची, ते आषाढ़ो जाण,
पडीने चडीयो ते वली, जो गुरु मानी आण।

रचनाकाल— संवत् नभ (अ) वनी गज मही रे, आषाढ़ सुद बीज सार।
भुजनगर मां भाव सु रे, रचिओ अे अधिकार, रे प्राणी।

यह रचना गच्छपति श्री माणेकचंद के शासन में रचित है, यथा—

गछपती श्री माणेकचंद जी रे, लोकागच्छ सिरदार,
पुज नाथा जी पसाय थी रे, माल मुनी हितकार, रे प्राणी।

यह रचना जैन स्वाध्याय मंगलमाला भाग-२, पृ०-३१३ और रत्नसार भाग-२ , पृ०-३७७ पर प्रकाशित है।

राजमती संज्झाय (१७ कड़ी सं० १८२२ कार्तिक शुक्ल १५, मुद्रा);

आदि— गोरव में सखीयो संघात, राजुल निरखे हे।

अंत— अठार बातीसे नरंदा कार्तिक पूनम हे, गाई रे ऊलट धरी जी।
श्री लोकागच्छ मनुहार, मुनरा विंदह माहे, श्रावक आग्रह करी जी।
अेलाची कुमार छढालियुं (१८५५ ज्येष्ठ, अंजार)

आदि— मात मया करो सरसती, आपो अविरल वाण,
निज गुरु चरण नमुं सदा, आणंद हित चित आण।

इस रचना में भाव का महत्त्व दर्शानें के लिए अेलाची कुमार की कथा का दृष्टांत प्रस्तुत किया गया है। रचनाकाल निम्न पंक्तियों में प्रस्तुत है—

संवत् अठार पंचावने जी, जेठ मास सुखसार,

षट् ढाले करी गाइयोजी, रही चौमासो अंजार,
सुगुण नर भाव बड़ो संसार।

यह कृति जैन संज्झास संग्रह (साराभाई नवाब) में प्रकाशित है और जैन संज्झाय माला (बालाभाई) भाग १ में भी प्रकाशित है।

षट् बांधव नो रास (२१ ढाल सं० १८५७ कार्तिक, मांडवी)

आदि— "तीर्थंकर बावीसमा जादव कुल मांहि चंद,
बाल ब्रह्मचारी सदा नमूं, प्रणमुं नेम जिणंद।

अंत— सवा अेकवीस ढाले करी गायो, प्रबंध घणो अति मीठो रे,
अधिको ओछो में नथी भाष्यों, जो काईं शास्त्र मां दीठो रे।
संवत् अठार सतावना वर्षे प्रकास्यों काति चोमासे सुखकार रे,
मांडवी विंदर अति घणु सुंदर लोकोगछ श्रीकार रे।
गच्छपति खूबचंद जी विराजे, तस शासन सुख दाया रे।
पुज्य नाथा जी तणा सुपसाये, माल मुनि गुण गाया रे।

यह प्रबंध गज सुकुमाल, बलभद्र और श्री कृष्ण आदि छह भाइयों की कथा पर आधारित है।

अंतरंग करणी अथवा जीव अने करणी नो संवाद' का आदि—

गावहिं केइ प्रेम स्यु हो, बिंदुली मुरली तान,
करनी हउं तऊ गायस्यु हो, तम्ह सुणियहु चतुर सुजाण।
X X X X X X
जीव कहइ हुं पुरुष हुं हो, पुरुष बड़ा संसारी,
करनी तेरउ नाम हुई हो, क्या तूं बपुरी नारी।

अंत— जीव पुरुष है उद्यमी हो, करणी हुइ तसु नारि,
भाग्य मिलइ जउ साथि तऊ हो, काज सरइ संसारि।
जे जग शुभ करणी करइ, सुहड वचन प्रतिपाल,
सीमंधर साखी सदा हो, प्रणमइ तिन्ह मुनि माल।[२१८]

जैन गुर्जर कवियों के प्रथम संस्करण में इन्ही माल मुनि को अंजना सुंदरी चौपाई का भी कर्त्ता बताया गया था किन्तु नवीन संस्करण के संपादक का स्पष्ट मत है कि उसके कर्त्ता अन्य माल मुनि थे। प्रस्तुत 'संवाद' में भी गुरु परंपरा न होने से यह निश्चय

पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इसके रचयिता यही माल मुनि हैं।

मालसिंह–

आपके गुरु लोकागच्छीय ऋषि करमसी थे। इन्होंने 'कलावती चोढालियुं' की रचना सं० १८३५ श्रावण शुक्ल पंचमी को पूर्ण की। यह रचना प्रकाशित है।[२९९]

मेघ–

इनकी गुरु परंपरा और इतिवृत्त आदि अज्ञात है किन्तु इनकी दो कृतियों 'मेघ विनोद' और चतुर्विंशति स्तुति की प्रतियाँ प्राप्त हैं। ये रचनायें सं० १८३५ के आसपास रचित हैं। इनका विवरण आगे दिया जा रहा है। 'मेघ विनोद' का प्रारंभ इस प्रकार हुआ है—

सकल जगत आधार प्रभु, सकल जगत सिरताज,
पाप विदारण सुख करण, जय-जय श्री जिनराज।
ताहिको में समरि कै, करूं ग्रंथ सुखकार,
मेघ विनोद नाम रस, सकल जीव उपकार।

इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि लेखक जैन धर्म और जिनराज में आस्था रखता है। गुरु की वंदना है किन्तु नाम-पता नहीं है, यथा—

चरण जुगल गुरु के नमुं, समरुं सारद माय;
पुनः गणेश पद नित नमुं, दिन दिन मंगल थाय।
कवि अपार जग में भये, कीने ग्रंथ अपार,
तिन ग्रंथन का मत लही, कहत मेघ सुखकार।

'चतुर्विंशति स्तुति' (सं० १८३५ फाल्गुन शुक्ल १३ मंगलवार, फगवाड़ा) इसकी अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

तनुजो राम सुसिद्धि निसपति मास फागण सुदि कही,
तीनदस तिथि भूमि को सुत नगर फगुआ कर लही।
कर जोड़ के मुनि मेघ भाखे शरण राखूं जिनेश्वरं;
सब भविक जन मिल करो पूजा, जपो नित परमेश्वरं।[३००]

इसमें रचनाकाल स्पष्ट नहीं है। तनुजा का अर्थ समझ में नहीं आता।

मेघराज–

आप लोकागच्छीय साधु जगजीवन के शिष्य थे। आपकी दो कृतियों का परिचय आगे प्रस्तुत किया जा रहा है—

'ज्ञान पंचमी स्तव' (५ ढाल, सं० १८३० चौमासा, वीरमगाम)

आदि— श्री चउबीसें जिन नमी, नवविधि सिद्धि ज्ञनदातार,
कातिक शुदि सोभाग्य पंचमी, जेहनूं शास्त्रे वषांण।
तेह तणा गुण लेस कहुं, विस्तर शास्त्र थी जांण।

कलश— लूंकागच्छे प्रवर प्रभाकर रूप जीव जी गणधरो,
तस परंपरायें गुजराती गच्छे जगजीवन जी मनधरो।

तस शिष्य गणी मेघराज जपे वीरमगाम रही चोमास अे,
संवत अठार त्रीसे संवच्छर संघ ने हरख उल्लाश अे।

आपकी दूसरी रचना 'पार्श्वजिन स्तवन' (९ कड़ी, सं० १८४१) है, उसका आदि और अंत इस प्रकार है-

आदि— पास जिनेसर बीनवूं रे लाल, वीनतडी अवधार,

अंत— संवत् अठार अकेताल में रे लाल, रही चोमास शुभ काज रे।
कहे पूज्य जगजीवन तणो रे लाल, शिष्य गणी मेघराज रे।[३०१]

मेघविजय–

आप रंगविजय के शिष्य थे। आपने 'गोडी पार्श्वनाथ स्तव' अथवा मेघ काजल संवाद नु स्तवन सं० १८५७ से कुछ पूर्व लिखा था क्योंकि उक्त संवत् की लिखी हस्तप्रति प्राप्त है। जैनगुर्जर कवियों के प्रथम संस्करण में देसाई जी ने इस कृति का कर्त्ता रंगविजय के शिष्य नेमविजय को बताया था। इसलिए इनका विवरण नेमविजय की अन्य रचनाओं के साथ यथास्थान दिया जा चुका है।[३०२] हो सकता है कि मेघविजय के स्थान पर भूल से नेमविजय लिख दिया गया हो। जो हो, कृति का परिचय दोनों स्थानों पर ठीक है, शंका केवल कर्त्ता के संबंध में है। नामों में हेरफेर होना संभव है, यह शोध का विषय है।

मोतीचंद (यति)–

आप जोधपुर नरेश मानसिंह के सभारत्नों में थे। महाराज ने इन्हें जगद्गुरु भट्टारक की पदवी प्रदान की थी। आप हिन्दी के अच्छे कवि थे। इतनी प्रशंसा तो कामता प्रसाद जैन ने इनकी की है किन्तु एक भी रचना का विवरण-उद्धरण कौन कहे नामोल्लेख तक

नहीं किया है इसलिए खेद है कि इनके कृतित्व का परिचय नहीं दिया जा सका।[३०३]

मोहन–

आपकी एक हिन्दी रचना 'सृष्टि शतक ना दोहा' (१६२ कड़ी) का उद्धरण उपलब्ध है जिसे आगे प्रस्तुत किया जा रहा है-

आदि— धन्य कृतारथ के हियें, श्री अरिहंत सुदेव,
सुगुरु बसे जिणधर्म फुन, पांच नमण नितमेव।

अंत— नेमिचंद भंडारि कृत, गाथा केइक अेम
विधि भग-भन्ना भविक भणो, लखो लहो शिवक्षेम।
षष्टीशतक प्राकृत थकी, दोधक किया सुभास।
दोधक शोधक बुद्धिजन, सेवक मोहन तास।[३०४]

इससे ज्ञात होता है कि मूल रचना नेमिचंद भंडारी की प्राकृत में थी, उसे कवि ने हिन्दी में प्रस्तुत किया।

मोहन–

(मोल्हा १) जीवर्षि के प्रशिष्य एवं शोभर्षि के शिष्य थें। आप गद्यलेखक थे। आपने 'अनुयोग द्वार सूत्र बाला०' की रचना की है। इसकी गद्यभाषा का नमूना नहीं उपलब्ध हो सका। जैन गुर्जर कवियों के प्रथम संस्करण में इसके कर्त्ता का अपर नाम 'माल्ह' दिया गया था किन्तु नवीन संस्करण के संपादक श्री कोठारी इनका मोल्हा नाम शंकास्पद मानते है। मोल्हा नामक एक अन्य कवि हो चुके हैं जिनकी रचना 'लोकनालिका द्वात्रिंशिका बाला०' का उल्लेख अन्यत्र हो चुका है।[३०५]

यशः कीर्ति (भट्टारक)–

आपने 'चारुदत्त श्रेष्ठी रास' की रचना सं० १८७५ ज्येष्ठ शुक्ल १५ को की। इनके शिष्य खुशाल द्वारा की गई इस रचना की प्रति सं० १८७६ की अपूर्ण प्राप्त हुई है। इससे पता चला कि भट्टारक यश: कीर्ति ने यह रचना खडग प्रदेश के धूलेव गाँव स्थित आदि जिनेश्वर धाम में रहकर लिखी थी। इसमें इनकी विस्तृत गुरु परंपरा दी गई है, यथा—

ये "मूलसंघ बलात्कार गण भारतीगच्छ सकल कीर्ति > ज्ञानभूषण > विजय कीर्ति > शुभचन्द्र > सुमति कीर्ति > गुण कीर्ति > वादि भूषण > राम कीर्ति > पद्मनंदि

> देवेन्द्र कीर्ति > क्षेमेन्द्र कीर्ति > नरेन्द्र कीत्रि > विजय कीर्ति > चन्द्र कीर्ति > कीर्ति राम के शिष्य थे।[३०६] इनके रास का उद्धरण या अन्य कोई विवरण नहीं मिला।

रंगविजय–

आप तपागच्छ के प्रसिद्ध आचार्य विजयानंद सूरि की परंपरा में विजयदेव सूरि > लब्धिविजय > रत्नविजय > मानविजय > विवेकविजय और अमृतविजय के शिष्य थे। इनके गुरु अमृतविजय भी कवि थे। उनकी प्रेरणा से इन्होंने भी अध्यात्म और विनय के बहुतेरे सुंदर पदों की रचना की है। वैष्णव कवियों ने जैसे राधा और कृष्ण को लक्ष करके भक्ति और शृंगार की रचनायें की वैसे ही इन्होंने राजमती और नेमिनाथ के विषय में बहुत से शृंगार भाव के पद लिखे हैं। उदाहरणार्थ एक पद प्रस्तुत है—

आवन दे री या होरी।
चंदमुखी राजुल सौं जंयत, ल्याउ मनाय पकर बरजोरी।
फागुन वे दिन दूर नहीं अब, कहा सोचत तू जिय में भोरी।
बाँह पकरि राहा जो कहावूं छाडू ना मुख मांहै रोरी।
सज संगार सकल जदु वनिता, अबीर गुलाल लेइ भर झोरी।
नेमीसर संग खेलौं खेलौना, चंग मृदंग डफ ताल टकोरी।
है प्रभु समदविजय कै छौना, तू है उग्रसेन की छोरी।
रंग कहै अमृतपद दायक, चिरजीवहु या जुग जुग जोरी।[३०७]

सं० १८४९ में इन्होंने खड़ी बोली में एक ग़जल लिखी जिसमें अहमदाबाद नगर का वर्णन किया गया है। हिन्दी प्रदेश में उस समय खड़ी बोली काव्य भाषा नहीं बन पाई थी। इसलिए इसका भाषा-इतिहास की दृष्टि से महत्त्व है। आपकी अन्य रचनाओं का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है—

शंखेश्वर पार्श्वनाथ पंचकल्याण गर्भित प्रतिष्ठा कल्प स्तवन (सं० १८४९) इसी वर्ष फाल्गुन शुक्ल पंचमी शुक्रवार को सवाईचंद-खुशालचंद ने भरुच में पार्श्वनाथ की प्रतिष्ठा कराई थी; उसी प्रसंग में उसका स्तवन करते हुए कवि ने प्रतिष्ठा की संपूर्ण विधि का वर्णन किया है। इसका प्रारंभ देखें—

स्वस्ति श्रीदायक विभु जगनायक जिनचंद,
मोह तिमिर ने चूरवा, प्रगट्यो परम दिणंद।

पिता-पुत्र उद्यम करी खर्ची द्रव्य उदार,
मूर्ति संखेसर पार्श्वनी, प्रगट करी मनोहार।

रचनाकाल— इम सयल सुखकर दुरित भयहर पास जी संखेसरो।
निधि अब्धि वसु ससी मान वरषे गाइयो अलवेसरो।
अेह प्रतिष्ठाकल्प तवन सांभली जो सद्वहे।
ते रिद्धि वृद्धि सुसिद्धि सधले सदा रंगविजय लहे।

यह रचना 'जैन सत्य प्रकाश' में प्रकाशित है।

पार्श्वनाथ विवाहलो (१८ ढाल, सं० १८६० आसो सुद १३ भरुच)

अंत— पास प्रभु विवाहलो, भणस्ये सुणस्ये जेह रे,
टलस्ये विरह दुख तेहना, इंछित लहस्ये तेह रे।
संवत् अठार ने साठ नी, धनतेरस दिन खास रे।
भृगुपुर चौमासी रही, कीधो अे अभ्यास रे।

यह पार्श्वनाथ जी नो विवाहलो तथा दिवाली कल्प स्तव में प्रकाशित है। 'सदयवच्छ सावलिंगा नो रास' का केवल नामोल्लेख मिला है, कोई विवरण और उद्धरण नहीं प्राप्त हुआ। देसाई ने जै०गु० कवियों के प्रथम संस्करण में पहले 'शंखेश्वर पार्श्वनाथ प्रतिष्ठा कल्प स्तव' का रचनाकाल सं० १७७९ बताया था। इसके आधार पर इन्हें १८वीं सदी का कवि माना था, परन्तु बाद में सुधार कर सं० १८४९ किया और रंगविजय को १९वीं शती का कवि स्वीकार किया जो कई प्रमाणों के आधार पर उचित प्रतीत होता है।[३०८]

एक अन्य रंगविजय इनके कुछ बाद में हुए जिन्होंने सं० १९११ में 'पं० वीरविजय निर्वाण रास' लिखा है। वीरविजय का समय सं० १८३० से १९०८ तक निश्चित है। इसलिए इस रास का यह रचनाकाल समीचीन है। इस प्रकार दूसरे रंगविजय बीसवीं शती के कवि ठहरते है अतः इनका विवरण वहीं देना उचित होगा। वह रचना जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय में प्रकाशित है।

रघुपति–

ये खरतरगच्छीय विद्यानिधान के शिष्य थे। आप अच्छे कवि थे। आपका समय १७८७ से १८३९ तक है अर्थात् ये १८वीं और १९वीं शती के संधिकाल के रचनाकार है। अतः पूर्व योजनानुसार इनका संक्षिप्त परिचय यहाँ भी दिया जा रहा है। आपकी भाषा मरुप्रधान मरुगुर्जर (पुरानी हिन्दी) है। आपकी दो रचनाओं का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है, एक 'जैनसार बावनी' और दूसरी भोजन विधि। दूसरी रचना में भगवान महावीर के जन्मसमय के देशाटन का वर्णन किया गया

है। प्रथम रचना 'जैनसार बावनी' मातृकाक्षरा पद्धति पर रचित हैं; इसमें कुल ५८ पद्य है। यह रचना सं० १८०२ में नापासर में रची गई। इसका प्रारंभिक पद्य इस प्रकार है—

ऊँकार बड़ी सब अक्षर में, इण अक्षर ओपम और नहीं।
ऊंकारनि के गुण आदरि कै, दिल उज्वल राखत जांण वही।
ऊँकार उचार बड़े-बड़े पंडित, होत हैं मानित लोक यही।
ऊँकार सदा जो ध्यावत है, सुख पावत हैं रुधनाथ सही।[309]

इनकी अन्य उपलब्ध रचनाओं जैसे नंदिषेण चौ०, श्रीपाल चौ० और सुभद्रा चौ० आदि का विवरण तथा उद्धरण हिन्दी जैन साहित्य का वृहद् इतिहास खण्ड-३ पर पृ० ३८८ से ३९३ पर दिया जा चुका है। यहाँ केवल १९वीं शती में रचित उक्त दो रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

रत्नचंद I –

इन्हें नागौर निवासी गंगाराम सरावगी ने कुढ़गाँव के किसी व्यक्ति के यहाँ से गोद लिया था। पूज्य गुमानचंद जी के उपदेश से इन्हें वैराग्य हुआ और सं० १८४८ में मंडोर में दीक्षित हुए। आपका जन्म सं० १८३४ में हुआ था अर्थात् १४ वर्ष की वय में साधु हो गये। इन्हें १८८२ में आचार्य पद प्राप्त हुआ। आपका स्वर्गवास सं० १९०२ ज्येष्ठ शुक्ल १४ को जोधपुर में हुआ। आप संयमी साधु, श्रेष्ठ विद्वान और अच्छे रचनाकार थे। सं० १८५२ से १८९१ तक आप रचनाशील रहे। इस अवधि में आप ने निम्न रचनायें का—

चंदनबाला चरित्र (ढाल १४ सं० १८५२, पाली); चंदन मलयागिरि चरित्र (ढाल १६, सं० १८५४, पाली); निर्मोही (ढाल ५ सं० १८७४, पाली); गज सुकुमाल चरित्र (ढाल ७, सं० १८७५, नागौर); आषाढ़ भूति (ढाल ९, सं० १८८३, फलौदी); दामनख (ढाल ८, सं० १८९१, रणसी गॉव); देवदत्ता (ढाल ८ सं० १८९१, रणसी गॉव), बंकचूल (ढाल ६ सं० १८९१ रणसी गॉव), श्री मती चौ० (ढाल ६) और १० स्वजन उपदेशी (छोटी व बड़ी स्फुट रचनायें)।[310] इस प्रकार इनका रचना संसार विस्तृत है और प्राय: जैन साहित्य के सभी प्रमुख चरित्रों पर इन्होंने रचनायें की है।

श्री मो० द० देसाई ने इन्हें गुमानचंद का प्रशिष्य और दुर्गादास का शिष्य बताया है। उन्होंने इनकी केवल दो कृतियों चंदन बाला और निर्मोही का नामोल्लेख मात्र किया है।[311]

रत्नचंद ॥ –

आप आचार्य मनोहरदास की परंपरा में थे। आपका जन्म चौ० गंगाराम की पत्नी श्रीमती सरुपा देवी की कुक्षि से सं० १८५० भाद्र कृष्ण चतुर्दशी को वातीजा (जयपुर) नामक गाँव में हुआ था। सं० १८६२ में मात्र १२ वर्ष की अवस्था में ये मुनि हरजीमल से दीक्षित हुए और सं० १९२१ में इनका आगरा में स्वर्गवास हुआ था। ये बड़े कुशल तार्किक, शास्त्र विद्वान् और अच्छे कवि थे। इन्होंने गद्य और पद्य दोनों साहित्यिक विधाओं में पर्याप्त साहित्य की रचना की। पद्य बद्ध रचनाओं में जिन स्तुति, सती स्तवन, संसार वैराग्य, बारह भावना, बारह मासा के अलावा कई भावपूर्ण आध्यात्मिक पद प्राप्त हैं। इनका प्रकाशन रत्नज्योति, नाम से दो खण्डों में संपादित करके श्रीचन्द ने श्री रत्नमुनि जैन कालेज, लोहामंडी, आगरा से किया है।

चरित्र काव्यों में सुखानंद मनोरमा चरित्र विस्तृत रचना है। कई चरित्र काव्य जैसे समर चरित और इलायची चरित आदि प्रकाशित है।[३१२]

रत्नधीर–

खरतरगच्छीय साधु हर्षविशाल > ज्ञानसमुद्र > ज्ञानराज > लब्धोदय, ज्ञानसागर के शिष्य थे। आपकी एक गद्य रचना का उल्लेख मिला है जिसका नाम है 'भुवन दीपक बालावबोध'। यह रचना सं० १८०६ की है। इसका रचनाकाल 'रसा श्रवस्विन्दुमिते' का असंदिग्ध अर्थ नहीं बैठता। इसलिए देसाई जी ने सं० १८०६,[३१३] १८५६ आदि कई अर्थ ढूढ़े है परन्तु वे समाधान कारक नही है।

रत्नविजय । –

तपागच्छीय परम प्रसिद्ध आचार्य हीरविजय की परंपरा में कल्याणविजय > धनविजय पाठक > कुँवरविजय उपाध्याय > गुणविजय गणि > धीरविजय > पुण्यविजय के शिष्य थे। आपकी प्रसिद्ध रचना 'शुकराज चौ०' (६५ ढाल सं० १८०८ आसो सुदी १०, गुरुवार, नेयड) का प्रारंभ इस प्रकार हुआ है—

> वंछित पूरण कै सदा, श्री रिसहेसर देव,
> चित चोपे करीने सदा, हूं प्रणमूं नितमेव।

इसमें शुकराज का उदार चरित्र वर्णित है। कवि प्रारंभ के पश्चात् कहता है कि कथा कोई हो वक्ता से अधिक विचक्षण श्रोता को होना चाहिए, तभी तात्पर्य ग्रहण संभव होता है, यथा—

बात रसिक छै अेहनी वक्ता छै गुणवंत,
विचक्षण जो श्रोता होइ तो, ऊपजै रस अनंत।

इसमें ऊपर बताई गई गुरु परम्परा का उल्लेख स्वयं कवि ने किया है।

रचनाकाल— चंद्र वसु व्योम इंद्र विचारे, अे संवत् संख्या आणो जी,
आसो सुदि दसमी गुरुवारे, रास पूरोथयो जाणो जी।
नेयड मांहि निरुपम सोहे वैराट समो वाराही जी,
तिण नयरे चोमासो कीधी, रचना रची सुखदायक जी।

अंत— पासठे ढाले करी रचीऔ, श्री शुकराय चरीत्रो जी;
रतन कहैं उपसम रस नाही, करयो भवि काया पवित्रो जी।[३१४]

इस प्रमुख कृति के अलावा आपकी अन्य रचनाओं 'प्रतिमा स्थापन गर्भित पार्श्वजिन स्तव' और 'चैत्यवंदन संग्रह' का भी उल्लेख मिलता है किन्तु इनके अन्य विवरण-उद्धरणादि उपलब्ध नहीं हो सके।

रत्नविजय ||–

आप तपागच्छीय विद्वान् सत्यविजय > कपूरविजय > क्षमाविजय > जिनविजय > उत्तमविजय के शिष्य थे। आपने सं० १८१४ के आसपास सूरत में 'चौबीसी' की रचना की।

प्रारंभ— सूर्यमंडल पास पसाया, सुरत बिंदर में सुहाया रे;
विकरण योग में द्रनेर काया, चोबीस प्रभु गुण गाया रे।

इस रचना में ऊपर बताई गई गुरु परंपरा का उल्लेख कवि ने किया है। यह रचना 'जिनेन्द्र काव्य संदोह भाग १ पृष्ठ ५१-७२ और स्नात्र पूजा स्तवन संग्रह के पृ० ३५-५२ पर प्रकाशित है।[३१५]

प्रति के अंत में लिखा है—

संवत् १८१४ ना वर्षे पोस वदि सप्तम दिने रविवारे लिखित,
पं० श्री उत्तमविजय गणि शिष्य पं० रत्नविजये ने लिखायित।

रत्नविजय ||| –

तपागच्छीय माणेकविजय इनके गुरु थे। इन्होंने सं० १८२५ के वसंत में सिद्धचक्र स्तवन अथवा नवपद स्तवन की रचना की।

आदि— श्री सद्गुरु सुपसाय थी, आराधुं सिद्ध चक्र
अेह महिमा छे अति घणो, सुरमां मोटो शक्र।
मोरा लाल श्री सिद्ध चक्रसेविये।

अंत— संवत् १८२५ नो वसंत मास बखांण मारो,
सकल पंडित शिरोमणि, माण कवि जे गुरुराय।
तास शिष्य अनुभवे करी, क्यों नवपद महिमाय,
स्वततां बहु सुखा पामीयें, रत्नविजे गुणगाय। मोरा--[३१६]

इसके प्रारंभ में देशी अर्थात् धुन का निर्देश करते हुए कवि ने लिखा है—

"कंथ तमाकू परिहरो, 'अे देसी' इससे ध्वनित होता है कि सुधारपरक लोक गीतों में तमाकू जैसी नशीली चीजों के निषेध पर पर्याप्त बल दिया जाता था। इस रचना की प्रति श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई के पास है। इसमें माणेकविजय के गच्छ का उल्लेख नहीं है। लगता है कि देसाई जी ने अनुमान से ही गच्छ का निर्देश कर दिया है।

रत्नविमल–

ये क्षेमकुशल शाखा के मुनि कनकसागर के शिष्य थे। इनकी निम्नांकित चार रचनाओं के विवरण उपलब्ध हैं जिसे आगे प्रस्तुत किया जा रहा है। पुरंदर चौ० (सं० १८२७, कालउना) मंगल कलश चौ० (सं० १८३२, बेनातट), तेजसाह चौ० (सं० १८३४, बावड़ीपुर), इलापूत्र रास (सं० १८३९, राजनगर) ये चार ग्रंथ अगरचंद नाहटा द्वारा बताये गये है।[३१७] श्री देसाई ने इनकी गुरु परंपरा इस प्रकार बताई है-

खरतरगच्छ की क्षेम शाखा के धर्म कल्याण इनके प्रगुरु और कनक सागर इनके गुरु थे। मंगल कलश चौ० (सं० १८३२, बीजा श्रावण शुक्ल १५, बेनातट)

रचनाकाल— संवत् अठार बत्तीसा बरसे द्वितीय श्रावण सुदी हरषे जी,
शखड़ी पूनम मंगल दिवसे, कीयो संबंध जगीसे जी।

इस रचना में खरतरगच्छ के प्रभावशाली आचार्य जिनचंद और उसकी क्षेम शाखा के उक्त दोनों आचार्यों का नामोल्लेख किया गया है। बेनातट शायद इनकी जन्म भूमि भी थी। कवि ने लिखा है—

मरुधर देश पुर बेनातट जिहां छे आईनो थानो जी,
तिहां चोमासो कवियण कीधो, भवियण अे बहु मानो जी।
पाठक रतनविमल कहे भाई, सुणज्यो संबंध सवाई जी।[३१८]

इलापुत्र रास (९ ढाल, सं० १८३९ चौमासा, राजनगर)

आदि— सकल सिंद्ध अरिहंत ने, प्रणमुं परमानंद,
सांनिध करि श्रुतदेवता, वचन अमृत अरवृंद।

रचनाकाल— संवत अठार बरस गुण चालीसे राजनगर चौमासे जी,
श्री जिनचंद सूरि गुरु राजे, तेहनी आज्ञा काजे जी।

आवश्यक नी वृत्ति अनुसारे, ऋषिमंडल पिण देखी जी,
ते अनुसारे मे पिण भाख्यो, सूत्र मांहे गुण पेखी जी।

इससे विदित होता है कि इस रचना का आधार स्रोत आवश्यक और ऋषिमंडल है।

तेजसार चौ० (सं० १८३९, प्रथम ज्येष्ट कृष्ण १०, मंगल, बावड़ी)

आदि— प्रणमुं चरन जिणेसर, सिंध लक्षणे सुखकार,
सासननायक उपदेस्यों, मोक्ष तणो अे द्वार।

रचनाकाल— संवत अणर वरस गुण चालै, ज्येष्ठ प्रथम गुण मासै जी
वदि दसमी ने मंगलवारे बावड़ी पुर मुनि मासे जी।

अंत— मोक्ष गामीना गुण गावतां भावना सुभ भावता जी,
कर्म खपाने नाम जयंता, समरणा ध्यान धरंता जी।
जे नर भणसी गुणसी भावे मधुर स्वरे जे गावे जी,
अनिचल पदवी तेही ज पावे, रिंह समृद्धि घर आवे जी।[३१९]

सनत्कुमार प्रबंध चतुष्पदी (सं० १८२३ भद्र शुक्ल २, रविवार, जयपुर)

यह रचना नाहटा जी द्वारा बताई रचनाओं से पूर्व रचित है। इसका उल्लेख नाहटा जी ने नहीं किया था। उन्होंने इलापुत्र रास का नामोल्लेख किया था, पर देसाई जी ने उसको छोड़ दिया है। सनत्कुमार चौ० में वही गुरु परंपरा दी गई है जो पहले वर्णित तीन रचनाओं में उल्लिखित है अतः यह निश्चित है कि प्रस्तुत रचना के कर्त्ता वही रत्नविमल हैं जो प्रथम तीन के कर्त्ता हैं। इसकी अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

जइपुर नगर अनोयम विराजइ सिंध अधिक तिहां छाजइ जी,
महिमा धर्म तजी अति दीये, दिन दिन अरियणा जीपई जी।[३२०]

राजकरण (देखे पृ० १५२ पर, पहले उन्हें छापे तब राजरत्न को देखें)

राजरत्न–

आप तपागच्छीय आचार्य उदयरत्न > उत्तमरत्न > जिनरत्न > क्षमारत्न के

शिष्य थे आपकी रचना उत्तमकुमाररास (२७ ढाल सं० १८५२ आसो सुदी २ बुधवार, खेडा) का परिचय प्रस्तुत है।

आदि— सरस्वती भगवती सारदा, समरु सदगुरु नाम,
चरण जुगल नमुं नाम थी, भाव धरी अभीराम।
गुरु तारणा गुरु देवता, गुरु दीपक सम ज्योत,
माता पीता बन्धव गुरु, ग्यान रवी उद्योत।

इसकी बारहवी कड़ी तक सरस्वती वंदना के पश्चात् पंच तीर्थ आदि देव, शांति, नेमनाथ, पार्श्व और महावीर की वंदना है। इसमें उत्तमकुमार की कथा के मध्यम से सुपात्र को दान देने का महत्त्व दर्शाया गया है- यथा—

सुपात्र दानना जोग थी, पाम्यो सुख भरपूर,
पुन्य दान उत्तम कथा, सांभलता दुख दूर।
X X X X X X
संबंध उत्तमकुमार नो, सांभलज्यो नरनार,
अेक मने अेकासने, कहूं तेहनो अधिकार।

इसमें पहले बताई गई गुरु परंपरा का उल्लेख कवि ने किया है। रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है-

संवत अठार स्यों बावन आसो सुद बीजा ने वार बुधे रे,
रास रच्यो खेटकपुर मांहे, सांभलज्यों मन सुद्धे रे।
वेत्रवती कांठे दीदारू, रसूलपुरा मा गवाया रे,
रीषभ शांति भीड़ भंजन सोहने, त्यों में कलश चढ़ाया रे,

अंत— ढाल सत्तावीसमी सहुश्रोता सांभली ने सद्दहीइं रे,
राजरतन कहे पूरणा पदवी जिनवर वचने लहीअं रे।[३२१]

राजकरण-

आप की एक रचना, 'श्री जिनमहेन्द्र सूरि भास' ऐ० जैन में छपी है। इस भास में बताया गया है कि आपका जन्म शाह रुधनाथ की पत्नी सुंदरी की कुक्षि से हुआ था। आप जिनहर्षसूरि के पट्टधर थे। इस गीत में कवि ने महेन्द्रसूरि के मरुदेश पधारने पर जो हर्ष हुआ उसका वर्णन किया है। उदयपुर नरेश द्वारा आपको पधारने के लिए विनती भेजने और मेड़ता, बीकानेर, जैसलमेर के जैन संघों के विज्ञप्तियों को भेजने का वर्णन किया गया है। जिन महेन्द्र के पट्टधर जिनभक्त सूरि और उनके शिष्य जिनचन्द्र सूरि की गादी जयपुर में है। इसका प्रारंभ इन पंक्तियों से हुआ है—

वारी जाऊं पूज महारी वीनति सुणजो अधिको चाव, सुगुरु म्हारा हो;
म्हां दिस थ करज्यों मया, धरो पद्म सकोमल पांव।

राजकरण ने स्वयं भी उनको पधारने की विनती की है, यथा—

दिलभर दर्शन देखने, सफल करे संसार,
राजकरण नित राज रे, पांय लागै हर्ष अपार।

इस भास में दो गहूलियाँ हैं। प्रथम गहूली में पधारने की विनती-विज्ञप्ति का विवरण है और दूसरी गहूली में उनके माता-पिता आदि का वर्णन है।

इसी भास के साथ जिन 'सौभाग्यसूरिभास' भी छपा है। इन दोनों रचनाओं का घनिष्ठ संबंध है। जिनहर्षसूरि के स्वर्गवासोपरांत उनके पद के लिए विवाद हुआ। जिनसौभाग्य दीक्षित जिनहर्ष के शिष्य थे और महेन्द्र किसी अन्य यती के शिष्य थे पर जिनहर्ष ने महेन्द्र को अपने पास रखकर विद्याभ्यास कराया था। दोनों में से जिनहर्ष का पट्टधर कौन हो? इस विवाद का निर्णय करने के लिए चिट्ठी डाली गई। जब जिन सौभाग्य गच्छ के मुख्य यतियों को बुलाने बीकानेर चले गये तो इधर कुछ यतियो और श्रावकों ने मिलकर महेन्द्र को पट्टधर घोषित कर दिया। जब जिन सौभाग्य वापस लौटे तो यह समाचार पाकर वापस बीकानेर लौट गये। बीकानेर के श्रावकों-यतियों और राजा रत्नसिंह ने जिनसौभाग्य को पट्टधर घोषित कर दिया। इस ऐतिहासिक विवाद की सूचना इस भास से मिलती है। इस भास से पता चलता है कि जिन सौभाग्य कोठारी कर्मचन्द की पत्नी करण देवी की कुक्षि से उत्पन्न हुए थे, और रत्नसिंह आदि के प्रयत्न से सं० १८९२ मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी गुरुवार को गादी पर आसीन हुए थे। खजान्ची लालचंद ने पट्टोत्सव बड़ी धूमधाम से किया था। भास का प्रारंभ इस प्रकार है—

करणा दे कूंखे ऊपना, सदगुरु जी पिता करमचंद विख्यात हो,
गच्छनायक सौभाग्य सूरि हो सदगुरु जी।

अंत में पाट पर विराजने की तिथि दी गई है, यथा-

संवत अठार बाणवे सद्गुरु जी सुद सातम गुरुवार हो,
मिगसर पाठ विराजिया सद्गुरु जी, खूब थया गहगाट हो।[३२२]

इसके कुछ ही पश्चात् उनके किसी प्रिय शिष्य ने या संभवतः राजकरण ने ही यह भास भी लिखा होगा।

राजशील (पाठक)–

आप की गद्य रचना 'सिंदुर प्रकर भाषा बाला०' सं० १८३८ से कुछ पूर्व

की है। इनके अंत में लिखा है—

सिंदुर प्रकाशभिध शास्त्रस्यानेक संगतार्थस्य बालावबोध कर पाठक राजशीलेन।[३२३]

इसके गद्य का नमूना अनुपलब्ध है।

राजेन्द्र विजय-

ये तपागच्छीय भगवान के शिष्य थे। आपने २१ प्रकारी पूजा सं० १८६६ कार्तिक १३, खंभात में की।[३२४]

इसी वर्ष राजेन्द्र विजय द्वारा ही लिखी गई इसकी प्रतिलिपि भी प्राप्त है।

राजेन्द्रसागर-

आप की गद्य रचना 'वेताल पचीसी' प्रसिद्ध जनकथा विक्रम वैताल पर आधारित है। यह रचना सं० १८१४ फाल्गुन कृष्ण ११, बीकानेर को हुई। इसका प्रारंभ इस प्रकार है।-

प्रणमुं सरसति पाय, बले वीनायक विनवुं,
बुद्धि दे सिद्धि दिवाय, सनमुख थाये सद्गुरु।

उस समय बीकानेर में राठौड़ कर्ण और उनके राजकुमार अनूपसिंह का शासन था। यह संस्कृत मूल रचना का हिन्दी भाषान्तर है।

कथा का प्रारंभ इस प्रकार हुआ है, अथ कथा प्रबंध—

दक्षिण देश ने प्रस्यांनपुर नगर, तीहां विक्रमादित्य उजेणी नगरी
नो राजा मुख्य प्रधान मुंहता सहित सभा मांहि बइठो, केहवो के सोहइ।

इसके गद्य के बीच बीच में सुभाषित दोहे पर्याप्त मात्रा में दिए गये हैं, यथा—

घोड़ा हाथी सार सहू कपडो काष्ठ पाषाण,
महाराज नारी पुरुष इन बहु अंतर जांणि।

अंत— कथा हुई मनभावनी ऊपनी बीकानेर,
चाहेगा जन सांभलई, मिलमिल रचिसुं फेर।
कौतुक कुँवर अनुपसिंह केरे लिखें बनाई बात।
पचबीसी बेताल नी भाषा कही बहु भाय।[३२५]

इसकी एक प्रति इण्डिया अफिस लाइब्रेरी में है। शायद यह प्रति भी इन्हीं की

लिखी हुई है।

रामचन्द्र । –

आपकी एक रचना 'दश प्रत्याख्यान स्तव'[३२६] सं० १८३१ का उल्लेख देसाई ने जै०गु०क० के प्रथम संस्करण में किया है किन्तु अन्य विवरण या उद्धरण इत्यादि नहीं दिया है।

रामचन्द ॥ –

लोकाशा > रुप > जीवराज > वरसिंग संतानीय बालंचद्र> लखमीचंद के शिष्य थे। इनकी रचना 'तेजसाररास (१०९ ढाल, सं० १८६० भाद्र शुक्ल ५, नौतनपुर-नवानगर) का प्रारंभ इस प्रकार है—

स्वस्ति श्री चंद गुरु प्रते, प्रेमे करीय प्रणाम,
बुद्धि वृद्धि हुं कीई, जेह थी पाम्यों परम सुधाम।

इसमें प्रतिमापूजन का विरोध किया गया है, उदाहरणार्थ ये पंक्तियाँ देखें–

जिन पडिमा ने पूजे, आश्रव लागें अनेक,
कमला प्रभाचार्य भमियों ते भव अछेक।

अेम जाणीने लोंके दया धर्म दीयायो,
गुजराते लोंका गिरवो ते गछपति पायो।

इसमें लोंकाशाह द्वारा लोंकागच्छ की स्थापना से लेकर ऊपर वर्णित सभी गुरुजनों का ससम्मान वंदन किया गया है अंत में लखमीचन्द के संबंध में कवि ने लिखा है-

लखमीचंद गुरु गिरुवा, सुबुद्धि तण रे दातार,
विप्र श्री गोहण ज्ञाती, क्षमा तणां रे भंडार।

यह रचना मूलत: करमसी भूधराणी की कृति पर आधारित है।

रचनाकाल— तेह भिछामि दुक्कड़ होज्यो ते श्री संघ साखे,
नौतनपुर में वंचासी, संवत अठार सो साठे।
भादरवा सुद पाँच स्वात सति सिद्धि जोग;
भवि भणसे ने गणसे, तेहनी होय ते काया निरोग।

अंत— तेह गुरु तणी कृपा थी शिष्य रामचन्द्र रंगे करी,
भवि भणसे गुणसे जेह सुणसे, ते तो रिधि सिधि वंछित वरे।[३२७]

यह रचना मोतीचंद केवलचंद द्वारा सन् १९०० ई० में प्रकाशित की गई है।

डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल ने 'उपदेश बीसी' के कर्त्ता का नाम रामचन्द्र ऋषि लिखा है, परंतु रचना में नाम रायचन्द्र है न कि रामचंद्र। यथा—

संमत अठारैनी सैने आठ वैशाख सुद कहे छै छठ,
युग जैमल जी रा प्रताप सुं, तीवरी मांहे कहै छै रीष रायचन्द्र।[३२८]

इससे तो लगता है कि उपदेश बीसी के कर्ता जैमल के शिष्य ऋषि रायचन्द हैं न कि रामचन्द्र। शायद कासलीवाल जी को 'य' 'म' पाठ में भ्रम हुआ हो और रायचन्द्र को रामचन्द्र पढ़ लिया हो। ये दोनों लेखक लोंकागच्छीय ऋषि हैं पर दोनों दो रचनाकार हैं। ऋषि रायचन्द्र की रचनाओं का विवरण आगे यथास्थान दिया जा रहा है।

रामपाल–

आपने 'सम्मेद शिखर पूजा' नामक हिन्दी पद्यबद्ध पूजा की रचना फाल्गुन शुक्ल द्वितीया, सं० १८८६ में किया। आप दिगंबर संप्रदाय के मूलसंघ गच्छ के आचार्य सकलकीर्ति के शिष्य थे। यथा—

मूलसंघ मनुहार भट्टारक गुणचन्द्र जी,
तस पट सोहे सार हेमचन्द्र गछपति सहो।
सकलकीर्ति आचारज जी जानो, जिनके शिष्य कहे मन आनो।
रामपाल पंडित मन ल्यावै, प्रभु जी के गुण बहुविध गावे।

रचनाकाल और स्थान का उल्लेख इन पंक्तियों में किया गया है-

सहर प्रतापगढ़ जानो रे भाई, घोड़ा टेकचंद तिहा रह्याई।
सम्मेदशिखरा की यात्रा आधे, ता दिन में पूजा रचावे।
संमत अठारा सै साल में और छियासी लाय,
फागुण दुज शुभ जानिये रामपाल गुण गाय।

यह रचना टेकचंद जी की सम्मेत शिखर यात्रा के अवसर पर की गई थी।

यह प्रति स्वयं कवि द्वारा लिखित है, जैसा इन पंक्तियों से व्यक्त होता है-

जुगादी के सुगेह में पंडित वरनान जी,
रतनचंद ताकोनाम बुद्धि को विधान जी
ताको मित्र रामपाल हाथ जोर कहत है,
हे स्याण मोकू दीजिये जिनेन्द्र नाम लेत है।

लिखित पं० रामलाल स्वहस्तेण।[३२९]

रामविजय I –

आप तपागच्छीय रंगविजय के शिष्य थे। आपने जिनकीर्ति सूरि कृत 'धन्यचरित्र' (दान कल्पद्रुम, पर टव्वा अथवा स्तवक) की रचना सं० १८३५ में की। इसके गद्य का नमूना नहीं प्राप्त हुआ। संस्कृत में रचना का विवरण इस प्रकार दिया गया है-

सूरिः श्री विजयादिधर्म्म सुगुरो प्राप्य प्रसादं परं,
संवत्यग्नि गुणाष्ट भूमि प्रमिते धन्यस्य शालिकथा,
विचारोत्र धरो विदग्ध चतुरः श्री रंगरंग कवि,
स्तत्पादाबुज रेख रामविजयैः स्वस्टष्टबोऽयं कृतः।[३३०]

रामविजय II –

आप १८वीं और १९वीं शती की संधिबेला के कवि हैं अतः पूर्व योजनानुसार इनका उल्लेख इस ग्रंथ के तृतीय भाग[३३१] में किया जा चुका है। वैसे, इनकी कुछ ही रचनायें १८वीं शती की हैं जैसे भतृहरिशतक त्रय बाला० १७८८, अमरशतक बाला० १७९१; इनकी अन्य अधिकतर रचनायें १९ वीं शती में रचित हैं जिनमें भक्तामर टव्वा १८११, हेमव्याकरण भाषा टीका १८२२, नवतत्व भाषा टीका १८२३, सन्निपात कलिका टव्वा १८३१, दुरियर स्तोत्र टव्वा १८१३, कल्याणमंदिर स्तोत्र टव्व। १८११, मुहूर्त मणि ग्रंथ भाषा १८०१ इत्यादि।[३३२] ये सभी गद्य रचनायें है। इससे विदित होता है कि ये गद्य लेखक भी उतने ही कुशल थे जितने पद्यलेखन में। आपकी पद्यवद्य रचनाओं की संख्या भी पर्याप्त है यथा चित्रसेन पद्मावती रास १८१४, आबू यात्रा स्तवन १८२१, फलोंधी पार्श्व स्तवन १८२३ और नेमिनवरसो इत्यादि। इनके आधार पर ये एक अच्छे कवि भी सिद्ध होते है। इनकी कुछ प्रमुख पद्य रचनाओं का परिचय इस ग्रंथ के तृतीय खण्ड में दिया जा चुका है, इसलिए यहाँ विस्तार की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

रायचंद–

लोंकागच्छ के ऋषि जैमल के शिष्य थे। ये अच्छे लेखक थे और इनकी अनेक रचनाओं का विवरण प्राप्त है। उसका संक्षेप आगे दिया जा रहा है। चेलणा चौढ़ालियू (सं० १८२० वैशाख शुक्ल ६; भीमरी); आठ प्रवचन माता ढाल अथवा चौपाई (सं १८२१ फाल्गुन कृष्ण १, जोधपुर) इसका प्रारंभ देखें—

पाँच सुमति तिने गुपत, आढे प्रवचन मात,
ले सुख चावो साधजी, तोष करो दिनरात।

रचनाकाल— संवत अठारे अेक बीस में राढ़ जोधाड़ो मझार हो,
फागुण बद अेकम् दिन रे, सुणता जै जैकार हो।

यह रचना जैन विविधि ढाल संग्रह के पृष्ठ ९-२० पर प्रकाशित है। चित्त समाधि पंचवीसी अथवा संज्झाय (१८३३ मेड़ता), यह कृति दशाश्रुत स्कंध पर आधारित है। रचना वही है जो ऊपर लिखा गया है। यह रचना जैन सज्झाय माला भाग २ और (अन्यत्र से भी प्रकाशित है। लोभ पचीसी (सं० १८३४ आसो, वदी, बीकानेर); यह भी जैन सज्झाय संग्रह और अन्यत्र से भी प्रकाशित है। यह जैन संज्झाय माला भाग २ में भी प्रकाशित है।

ज्ञानपचीसी (सं० १८३५ जोधपुर) यह भी उपुर्युक्त दोनों संज्झाय संग्रहों में प्रकाशित है।

आषाढ़मूति चोढालियु अथवा पंचाढालियु (सं० १८३६ आसो, १० नागोर, उत्तराध्ययन में आषाढ़भूति की कथा आई है, उसी कथा संग्रह पर यह रचना आधारित है, इसका रचना काल इन पंक्तियों में दिया गया है-

संवत् १८३६ में लाल, आसो जब दसम दिन हो,
राखे समकित भलो रे लाल, ते जग में जाणों धन हो।

यह जैन स्वाध्याय मंगल माला भाग २ और जैन संज्झाय संग्रह में प्रकाशित है।

कलावती चौपाई (सं० १८३७, आसो सुदी पंचमी, मेड़ता)

आदि— जुग बाहु जिन जगत गुरु, प्रणमुं जेहना पांय,
शील तणी महिमा कहूं, चरित्र सुणों चित्तलाय।

इसमें कलावती के शीलवान चरित्र का चित्रण मार्मिक कथा के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है-

संवत् अठारे सेतीस में जो, कीयो आसोज मास अभ्यास,
प्रसिद्ध पांचम धानणी जी, मेडते नगर चोमास।

मृगांकलेखा चरित्र या चौपाई (६२ ढाल सं १८३८, भाद्र कृष्ण ११, जोधपुर); शील तरंगिणी सूत्र में मृगलेखा का उल्लेख है, उसी के अनुसार यह चरित्र चित्रण किया गया है। गुरु परंपरा से संबंधित ये पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं-

पुज मूधर जी रा पाठवी जी, ज्यारो शिष्य ऋषि रायचंद,
मृगलेखा जी जोड़ी चौपइ जी, भाषा सरस संबंध।

रचनाकाल— संवत अठारे से अड़तीस में जी, भाद्रवा बद इग्यारस जांण,
चोमासो सहर जोधपुर में जी, जहैं रचीओ में मंडाण।
दानशील तप भावना जी, शिवपुर मारग च्यार,
पिण इण चोपाई मांहे अछेजी, शील-तणो अधिकार।

महावीर चोढ़ालियुं (सं० १८३९, दिवाली, नागौर) का आदि—

सिद्धारथ कुले तु ऊपनो, त्रिशला दे थारी मात जी,
बरसीदान देई करी थे, संजम लीधो जगनाथ जी।
थे मत मोह्यो महावीर जी।

देवकी ढाल (१८३९, नागौर), और जोबन पचीसी (१८४०, जोधपुर) अपेक्षा कृत लघु रचनायें हैं, किन्तु ऋषभ चरित्र, नर्मदासती चरित्र पर्याप्त बड़ी रचनायें हैं, इसलिए उनका उद्धरण दिया जा रहा है।

ऋषभचरित्र (४७ ढाल, सं० १८४०, आसो, शुदी ५, पिपाड़) यह चरित्र आवश्यक और कल्पसूत्र से शोध कर प्रस्तुत किया गया है। इसके अंत में कवि ने लिखा है-

रिषभ चरित्र पुरो हुवो रे, अे सड़तालीसमी ढाल,
भण्जयो गुणज्यो भाव सुं रे, बरसे मंगलमाल।

रचनाकाल— संवत अठारे चालीस में रे, आसु मास अभ्यास,
शुक्ल पक्ष दिन पंचमी रे, सहिर पीपाड़ चौमास।

नर्मदा सती चौपाई (सं० १८४१ मागसर, जोधपुर)—

आदि— सासणनायक समरीये, मोखदायक महावीर,
जेहना मुख आगल हुआ, गोतम सामि वजीर।

तत्पश्चात् नेमि और राजीमती का स्मरण-वंदन किया गया है। यह कथा शील-उपदेश माला से ली गई है। यथा—

सील उपदेश माल ग्रंथ मैं अे, तिण माहे विस्तार,
जो भाषा रिष रायचंद जी जोड़ी जुगत सु अे, लेई ग्रंथनि सार
X X X X X X X
अे अठवीसभी ढाल सुहावंणी अे, सहू हुवो पूर्ण संबंध,
सील थकी सुलसा सती अे, सीले सदा आणंद।

नर्मदा सती की कथा के माध्यम से शील का महत्त्व दर्शित करने के लिए यह

रचना की गई थी। इसका रचनाकाल इस प्रकार है-

> संमत अठारे इगतालीस में अे, सैर जोधपुर चोमास,
> भास मागसर संपूर्ण करी अे, चित्त चोखे लील विलास।''

नंदन मणियार चौपाई (नागौर), चेतन प्राणी संज्झय (४ ढाल), कृपण पचीसी (जोधपुर), कपट पचीसी (मेड़ता) और अन्य संज्झय आदि लघु रचनाओं की संख्या काफी बड़ी है। इस विस्तृत रचना परिवार से प्रकट होता है कि आप लोकगच्छ के १९वीं शती के लेखकों में अग्रगण्य लेखक हैं। छोटी-छोटी तमाम रचनायें जैसे शिवपुर नगर सज्झय, गौतम स्वामी संज्झय, मरुदेवी संज्झाय (प्रकाशित) और अनेक संज्झय आपने लिखें हैं जिनमे से कई प्रकाशित भी हैं।[३३२]

इन्हीं रायचंद ऋषि की रचना 'उपदेश वीसी' भी होगी जिसे कस्तूरचंद कासलीवाल ने रामचंद ऋषि के नाम से बताया था। यह नाम छापे की अशुद्धि के कारण भी हो सकता है। श्री अगरचंद नाहटा ने आपकी प्राय: पचास रचनाओं की सूची संवत् और रचनास्थान के उल्लेख के साथ किया है जिनमें चेलणा चौढालियु, सुगुरु पचीसी आदि कई महत्त्वपूर्ण कृतियों का उल्लेख है।

सं० १८१७ से १८५९ तक इनका लेखनकार्य सतत् चलता रहा और इस अवधि में आपने पचासों रचनायें की।[३३३] नाहटा जी ने इनके इतिवृत्त की सूचना भी दी है। तदनुसार इनका जन्म सं० १७९६, जोधपुर में हुआ। इनके पिता का नाम विजयचंद धाड़ीवाल और माता का नाम नंदा देवी था। ये सं० १८१४ में जैमल जी से पीपाड़ में दीक्षित हुए। सं० १८६१ में रोहित गाँव में इनका स्वर्गवास हुआ था। आप अपने समय के प्रख्यात आचार्य एवं कवि थे। इनकी प्राय: दो सौ रचनायें प्राप्त हैं। केवल पचीसी संज्ञक रचनाओं की संख्या ही पचीसो हैं जैसे वय पचीसी, जोबन पचीसी, ज्ञान पचीसी, निंदक पचीसी इत्यादि। इनका काव्य लोकभूमि पर आश्रित है और उसमें सांस्कृतिक गरिमा के सरस चित्र बड़ी कुशलता से उकेरे गये हैं। इस परिचय के आधार पर ऋषि रायचंद को लोकगच्छीय कवियों में १९वीं शती का श्रेष्ठतम कवि कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। इनसे पूर्व १८वीं शती में दो रायचंद नामक लेखक हो गये हैं तीसरे रायचंद, सीता चरित्र के कर्त्ता हैं। नागरी प्रचारणी को खोज रिपोर्ट १२ भाग में इस रचना की एक प्रति का विवरण है। चौथे रायचंद को महात्मा गांधी अपना आध्यात्मिक गुरु मानते थे। उन्होंने अध्यात्म सिद्धि की रचना की है। इनसे भिन्न प्रस्तुत रायचंद जी महान साधक और लेखक थे।

रुप-

ये नागोरी लोकागच्छ के लेखक थे। इन्होंने सं० १८८८ माघ शुक्ल १५

मकसूदाबाद में '२८ लब्धि पूजा' की रचना की।[३३५]

रुपचंद-

ये गुजराती लोकागच्छ के विद्वान् संत थे। जैन गुर्जर कवियों के प्रथम संस्करण में देसाई ने २८ लब्धिपूजा के कर्ता रूप और प्रस्तुत रूपचंद को एक ही व्यक्ति बताया था किन्तु नवीन संस्करण के संपादक जयंत कोठारी का कथन है कि ये दोनों भिन्न-भिन्न लेखक हैं।

एक अन्य 'रुप' नामक लेखक का उल्लेख देसाई ने किया है किन्तु उनके गच्छ, संप्रदाय का उल्लेख नहीं किया है। उनकी रचना। गौडी पार्श्वनाथ छंद (१२ कड़ी) का आदि और अंत अवश्य दे दिया है परंतु उससे इनके संबंध में कोई निश्चित जानकारी नहीं मिलती। गोड़ी पार्श्वनाथ छंद की प्रारंभिक पंक्ति इस प्रकार है—

त्रिभुवन भक्तिततसार ज्यांउरधार जास जग उद्धरण

अंत— अकल घण कीरति महिमा घणी,
सेवक रुप आसै सुपरि धरी जैवंत गोड़ी धणी।[३३६]

ब्रह्म रुपचंद-

आप पार्श्वनाथ गच्छ के साधु अनूपचंद के शिष्य थे। इनकी रचना है केवल सत्तावनी (हिन्दी, सं १८०१ माघ शुक्ल ५, रविवार), इसका आदि देखें-

सवैया— ओंकार पूरण ब्रह्म पदारथ सकल पदार्थ के सिरस्वामी;
व्यापक विश्वप्रकाश सुतंतर ज्योति सर्वघट अन्तरजामी।

सिद्ध अेही गुरु गोविन्द हे अरु शिष्य अेही पर छांही अकामी।
आपु अकर्त्ता पुन्यता भोगता ताहि विलोकन में केवल नामि।

रचनाकाल— संवत सैजु अष्टादस जानो ऊपर अेकोत्तर वरसै बची,
मास सुउज्जवल माघ सुपांयैं ता दिन बसंत रितु शुभ मची।
X X X X X X
काशी देस नयरी जात्रा जु आये वृषभ जिन केरी,
भाव सु भेट्यो सिद्धाचल तीरथ कर्म कठोर मिटी भवफेरी।
जे जग पंडित भावारथ विचार पढ़े तिनकुं बंदन मेरी,
पूरणा कुपा हुवे सतगुरु की केवल संपत्ति आवहिं नेरी।

लघु ब्रह्म बावनी (हिन्दी)

आदि— ऊंकार हे अपार पाराबार कोऊ न पावे,
कछुयक सार पावे जोई नर ध्यावेगो।
गुण त्रय उपजत विनसत थिर रहै,
मिश्रित सुभाव मांहि सुद्ध कैसे आवेगो।
अगम अगोचर अनादि आदि जाकी नहीं,
अैसो भेद वचन विलास अैसो पावेगो।
नय विवहार रुपा चौसै है अनंत भेद,
बह्मरुप निश्चयनय अेक द्रव्य थावैगो।

इनके गुरु निहालचन्द्र ने सं० १८०१ में 'ब्रह्मबावनी' की रचना की थी जिसका विवरण यथास्थान दिया गया है। संभवत: इसीलिए इन्होंने अपनी रचना का नाम लघु ब्रह्मवावनी कर दिया। यथा—

जिनगुण गायों सरवंग मेरो सांम है,
अेही लघु ब्रह्मबावनी ग्यातामनभावनी।

अंत में कवि ने श्वेतांबर संप्रदाय के पार्श्व गच्छ और पार्श्वचंद तथा अनूपचंद का सादर उल्लेख किया है। इसकी अंतिम पंक्तियाँ निम्नवत् हैं—

अन्य न सरुप धार पूरब को देस सार,
जिहां बहे सदा सुर सरिता को जोर रे।

चिदानंद ताही रुष जाहि में अनंत सुष,
बह्म रूप स्वाद पायो काहे करु सोर रे।[३३७]

रुपचंद–

गुजराती लोकागच्छ के कृष्णमुनि के ये शिष्य थे। सं० १८५६ से १८८० तक की अवधि में इन्होंने अनेक रचनायें बंगदेश के अजीमगंज (मुर्शिदाबाद) में की। रचनाओं की सूची निम्नांकित है-

श्री पाल चौ. (४१ ढाल, १२०० कड़ी, सं० १८५६, अजीमगंज), धर्म परीक्षा रास (सं० १८६०, अजीमगंज), पंचेन्द्री चौपाई (सं० १८७३ फिरंगी राज्ये, मुर्शिदाबाद), श्री रुपसेन चौ० (सं० १८७८ अजीमगंज); अंबड रास (१८८०, अजीमगंज), सम्यकत्व चौ० (अपूर्ण) ओर अठाइ लब्धि पूजा (सं० १८८८, मुर्शिदाबाद)।[३३८] श्री देसाई ने इनकी गुरुपरंपरा इस प्रकार बताई है-

मेघराज > सिंधराज > गुरुदास > मानसिंह > प्रेमकवि > कृष्ण ऋषि के

शिष्य थे। देसाई जी ने इनकी कुछ रचनाओं के विवरण-उद्धरण भी दिए हैं। उनके आधार पर कुछ रचनाओं का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है-

श्रीपाल चौ० सं० १८५६, फाल्गुन कृष्ण सप्तमी, रविवार, मकसूदाबाद (मुर्शिदाबाद) अजीमगंज।

आदि— प्रथम नमुं गुरु चरण कूं पायो ग्यान अंकूर,
जसु प्रसाद उपगार थी, सुख पावै भरपूर।

इसमें महावीर श्रेणिक को उपदेश देते हुए कहते हैं—

वीर जिणंद कहे सुण श्रेणिक, अचरज तूं मन जाणे जी,
नवपद महिमा अधिकी कहिये, तो संदेह किम आणे जी।

रचनाकाल और गुरु परंपरा से संबंधित पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

इम श्रीपाल चरित्र गुण गाया, श्रोता मनहि सुहाया जी,
संवत अठारह छपन कहवाया फागुण मास सवाया जी।
कृष्ण सप्तमी अति सुखकारी, सुणतां आनंद कारी जी,
लोकागच्छ गुर्ज्जर गुणपूरा, चौरासी गछ मांहे सूराजी।
X X X X X X X
कृष्ण मुनि तसु सीस सुहाया, ऊणिम ज्ञान सवाया जी,
बंग देश देशा मां सवाया, मकसुदाबाद सहर सुखदाया जी।
अजीमगंज चौमासा कीना, गंगा निकट मन भीना जी।
लोकागच्छ तिहां पोसाल चीना, जिम मुंदड़ी मौंहि नगीना जी।

धर्म परीक्षा रास १८६० माग शुद ५ शनि अजीमगंज पंचंन्द्री चौपाई (१३ ढाल सं० १८७३ वैशाख शुक्ल ८, रविवार, मकसूदाबाद)

आदि— श्री जिनवदन निवासिनी, बंदू सारद माय,
कविजन कूं सांनिधि करे, कविता पूरण थाय।

रचनाकाल— संवत अठारा तिहत्तर कहिये, शुक्ल वैशाख जु लहिये रे।
सूर्यवार आठम तिथि सहिये, विजय जोग शुभ पइयें रे।

इस रचना में कवि ने बंगाल में फिरंगी राज्य की स्थापना के बाद अमनचैन की सराहना की है, यथा—

राज फिरंग तणौ तिहां चीनो अमन चैन सुखलीनो रे।"

यह रचना ज्ञानावलि भाग २ में प्रकाशित है। रुपसेन चौ० (३४ ढाल, सं० १८७० श्रावक शुक्ल ४, गुरुवार अजीमगंज)

आदि— श्री पंच परमेष्ठि कूं नमिये मन वच काय,
जेहने नाम प्रताप थी, मनवंछित फल पाय।

रचनाकाल— संवत अठारा अठत्तरे, श्रावण सुदि चौथ गुरुवार रे,
ऋषि श्री कृष्ण जी कृपा थकी, अेह रच्यो अधिकार रे।

अंबडरास (८ खंड, सं० १८८०, ज्येष्ठ शुक्ल १०, बुधवार, मकसूदाबाद) इसमें वीर प्रभु के शिष्य अंबड का चरित्र गान नहीं है बल्कि गोरखपंथी क्षत्रिय अंबड का चरित्र चित्रित है। संस्कृत गद्य-पद्य में आबद्ध मूल ग्रंथ अंबडचरित्र के कर्त्ता मुनि रत्नसूरि हैं। इसमें विक्रम राजा के अद्भुत पराक्रम की उपकथा भी अनुस्यूत है। रचना में ऊपर लिखी गुरु परंपरा कवि ने दी है। रचनाकाल संबंधी पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

संवत अठारा असि केरे बरषे, जेठ शुदि दसमी सरषे रे,
बुधवार दिन शुभ अे परषे रे, कीधी अे मन हरषे रे।

अंतिम पंक्तियाँ— पचपन करीअे रसाल, सुणतां अति हि विशाल रे,
गावतां होवे मन खुशियाला, होइजो मंगलमाल रे।[३३९]

अंबड रास से यह प्रमाणित होता है कि जैन रचनाकार जैनेतर सत्पुरुषों के चरित्र भी चित्रित करते थे और वे केवल सांप्रदायिक घेरे में रचना कर्म को संकुचित नहीं रखते थे।

रुपविजय (गणि)–

आप तपागच्छीय पद्मविजय के शिष्य थे। इन्होंने संस्कृत में पृथ्वीचंद और गुणसागर के चरित्र का सुंदर चित्रण किया हैं। ये रचनायें प्रकाशित हैं। मरुगुर्जर (हिन्दी) में इन्होंने सं० १८६१ कार्तिक कृष्ण सप्तमी मंगलवार को राजनगर में 'गुणसेन केवली रास' की रचना की जिसका प्रारंभ इन पंक्तियों से हुआ है—

सकल सिद्धिदायक सदा, शंखेसर प्रभु पास;
प्रणमुं पदक्रज प्रेम थी, आणी मन उल्लास।

इसमें विजयदेव सूरि; विजयसिंह सूरि के शिष्य सत्यविजय गणि, कपूरविजय गणि, खेमा (क्षमा) विजय गणि, जिनविजय, उत्तमविजय, पद्मविजय नामक गुरुजनों को सादर नमन किया गया है। रचनाकाल के लिए निम्न पंक्तियाँ देखे—

संवत चंद्र रितु गज चंद्रे, श्री जिनराज पसायो;
राजनगर चौमासो रहीनें, रास अे रम्य निपायो रे।
कार्तिक बदी सातिम भ्रगुवारे, भाषा छंदे लखायो,
जे नर भणस्यें गुणस्यें तेहने, थास्ये सुख सहायो रे।

यह उल्लेखनीय है कि रुपविजय और उनके जैसे नाना जैन लेखक इसी भाषा शैली को 'भाषा' कहते थे। यह दूर-दूर तक के जैन लेखकों की सर्व स्वीकृत भाषा शैली थी। वे किसी प्रादेशिक विभाषा जैसे गुर्जर, मरु, ढूढाड़ी आदि शब्दों का प्रयोग नहीं करते थे।

पद्मविजय निर्वाण रास (सं० १८६२, वैशाख शुक्ल ३, पाटण)

आदि— शारद विधुवदनी सदा, प्रणमुं सारद पांय,
रस वचन रस पामिये, जमतां जड़ता जाय।

कवि ने यह रास अपने गुरु के निर्वाणोपरांत लिखा था।

रचनाकाल— गुरुराज गाया सुजस पाया, दुख गमाया दूर अे;
नयन ऋतु गज चंद परसे, पामी आनंद पूर अे।

यह रास जैन ऐनिहासिक रासमाला भाग १ में प्रकाशित हैं। अष्ट प्रकारी पूजा (सं० १८७९) अपेक्षाकृत छोटी रचना है। बीस स्थानक पूजा (२१ ढाल, सं० १८८३ भाद्र शुक्ल ११)

यह कृति विविध पूजा संग्रह और स्नात्र पूजा संग्रह में छपी है। आपकी प्राय: अधिकतर रचनायें जैसे पिस्तालीस आगम पूजा (१८८५ आसो शुक्ल ३, शनिवार) और पंचज्ञान की पूजा (सं० १८८७ नेमि कल्याणक दिवसे), पंच कल्याणक पूजा (१८८९, माह शुक्ल १५, पालीताणा) आदि जो पूजा संबंधी हैं वे विविध पूजा संग्रह और स्नात्र पूजा संग्रह में छपी हैं।

विमलमंत्री रास—

ऐतिहासिक महत्त्व की कृति है। यह शताव्दी के अंतिम वर्ष अर्थात् सं० १९०० आषाढ़ शुक्ल १३, रविवार की रचना है। रचनाकाल निम्न पंक्तियों में कवि ने लिखा है—

संवत नभ-नभ नंद चंद, मित वरसे आषाढ़ मासे,
सुदि तेरस रविवारे रचना, रासनि कीधी उल्लासे रे।

इसमें 'नंद' शब्द नौ नंदो की तरफ ऐतिहासिक संकेत है।

आदि— चिदानंद परमातमा, सुद्ध स्वरुप सुज्ञान;
नमो विश्वनायक सदा, सिद्ध शुद्ध भगवान।

इस महत्त्वपूर्ण कृति के अतिरिक्त आपने अनेक स्तवन और संज्झाय आदि लिखे हैं। अजितनाथ जन्माभिषेक अथवा कलश आनंद काव्य महौदधि भाग ६ में प्रकाशित है। 'महावीर सत्तावीस स्तव', तरंगा स्तव, अरणिक मुनि संज्झाय, आत्म बोध संज्झाय, नेमराजुल संज्झाय आदि सभी प्रकाशित रचनायें हैं।

इनका एक गद्य ग्रंथ भी प्राप्त है-सम्यकत्व संभव बाला० (सुलसा चरित्र) यह भी संवत् १९०० में रचित है। इसके मूलकर्ता जय तिलक सूरि ने अपना ग्रंथ सुलसा चरित्र संस्कृत में लिखा था। आपने उसका भाषा में बालावबोध लिखकर उसे जन सामान्य के लिए सुलभ किया।[३४०]

लक्ष्मीदास–

आप सांगानेर के निवासी थे और भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य थे। आपने सांगानेर के राजा जयसिंह के पुत्र विष्णुसिंह के राज्यकाल में 'यशोधर चरित्र' की रचना की। आचार्य सकल कीर्ति और कवि पद्मनाभ कायस्थ की रचनाओं (संस्कृत) का सार ग्रहण करके प्रस्तुत कवि ने भाषा में यह रचना की। काव्यत्व की दृष्टि से रचना औसत दर्जे की है। कविता के नमूने के तौर पर कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

कुंदलिता देखि तौ मनोज प्रभूत महा, सब जग वासी जीव जे रंक करि राखे है।
जाके बस भई भूपनारी रति जेम कांति, कुबेर प्रमान संग भोग अभिलाषै है।
बोली सुन बैन तबै दूसरी स्वभाव सेती, काम बान हीतें काम ऐसे वाक्य भाखै है।
नैन नीर नाहिं होइ तो कहा करैं सु जोइ, मति पाय जीव नाना दुख चाखै है।[३४१]

इसकी खंडित प्रति प्राप्त होने के कारण रचनाकाल संबंधी उद्धरण देना संभव नहीं है परंतु यह लेखक उन्नीसवीं शती का ही है।

आपकी एक अन्य रचना 'हरिवंश पुराण' (सं० १८२६) का उल्लेख उत्तमचंद कोठारी ने अपनी हस्तलिखित सूची में किया है।[३४२]

लखमीविजय–

संभवत: तपागच्छीय पद्मविजय इनके गुरु थे। इनकी रचना "ढूंढिया उत्पत्ति' (सं० १८५१ के पश्चात) शुद्ध सांप्रदायिक रचना है। इसका प्रारंभ इन पंक्तियों से हुआ है—

समरुं साची सारदा, ढुंढकना कहुं ढाल;
उत्पत्ति लिखुं आदि थी रमणिक बात रसाल।

X X X X X X

संवत् पनर नव समें लुकों लहियो नाम
X X X X X X
संवत् सोल अेकाणुवा वरस ने अवसर पाय
अेहमा थी वलि ऊठीया, मिथ्या मतिअ लुंकाय।
हरीदास ने धरमसी त्रीजे लहु जी नाम,
नाम धरावी ढूढ़िया अवलू कीधू आम।

रचनाकाल— हवें अठार अेकावना बरसें सूरत रहनो चोमास जी
तिहा पिण--------------

अंत में इनके संसर्ग से दूर रहने की चेतावनी देता हुआ लेखक कहता है—

तिणें अेहनी संगति नवि कीजे; जिम नवि पडियैं पासैं जी।
लखमीविजय कहे जो संग करस्यो, तो निज समकित जास्ये जी।[३४३]

लब्धि- लोका० सोमचन्द्र सूरि > गंग > कल्याण > लवजी के शिष्य थे।

रचना— नेमिश्वर भगवान ना चंद्रावला (सं० १८५२ कार्तिक शुक्ल २, गुरुवार, चोरवाड़)

आदि— सरसती सरस वचन द्यो मुज ने, प्रेमे करी प्रसाद;
श्री नेमिश्वर ना गुण गाँवा, मुज मन ऊलट थाय।
मुज मन ऊलट थाय ते कहेवा, श्रोता जन ने साँभलवा जेहवा।
मंगलकारी होजे सहु ने, सरसती वचन द्यो मुज ने।

रचनाकाल— संवत अठार बावना वर्षे फागुणं सुदिनी बीजा,
वार गुरु लवजी सुपसायें लब्धि वदे मन रीज।
लब्धि वदे मन रीज थी वाणी, श्री नेमीश्वर जी जान बरवाणी;
नर नारी जय बोलो हरखे, संवत अठार बावना बरखै।

अंत— सोरठ देश तणी सीमाअै, गाम नाम चोरवाड़
राज करे बाबी कुल बाहादुर हामद खाँ ओनाड़।
हामद खाँ ओनाड प्रतापी, देग तेग जस फिरती व्यापी,
गढ़ गिरनार तीर्थ छे जिहां अे, सोरठ देश तणी सीमाअै।[३४४]

लब्धिविजय–

तपा० हीरविजय सूरि, धर्मविजय, कुशलविजय और कमलविजय, लक्ष्मीविजय, केशरविजय, अमरविजय के शिष्य थे। इनकी रचना हरिबल नच्छी रास (४ उल्लास,

५९ ढाल, सं० १८१० महा शुक्ल २, मंगलवार, वाव्यबंदर) है।

आदि— प्रथम धराधव जगधणी, प्रथम श्रमण पणिओह।
प्रथम तिर्थंकर जग जयो, प्रथम गुरु पभणेह।
विश्व स्थिति कारक प्रथम, कारक विश्व उद्योत,
धारक अतिशय आदि जिन, तारक भवनिधि पोत।

इसके मंगलाचरण में नेमि, शारदा आदि की वंदना की गई है। यह रास हरिबल की कथा के माध्यम से पुण्य का प्रभाव दर्शित करने के लिए लिखा गया है, यथा—

ते गुरु चरण नमी करी, भवियण ने हितकार,
रास रचुं हरिबल तणो, पुण्य ऊपर अधिकार।
जीव दया थकी पामीओ, हरिबल मछी राय,
तास संबंध सुणतां थका, सधला पातिक जाय।

यह रास लाटपल्लीपुर वासी पंडित नरसिंह धन जी के आग्रह पर लब्धिविजय ने लिखा था। इस रास मे ऊपर दी गई गुरु परंपरा का उल्लेख कवि ने किया है। रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

शीलाग रथ संवत्सर दशके १८१०, महा सुदि बीज भृगुवारे रे,
हरिल ना गुण जीव दया पर, गाया में अकतारे रे।
वाव्य बंदर श्री अजित प्रसादें, रही सीमाणा वासे रे,
राणा श्री गजसिंह ने राज्ये, रास रच्यो में उल्लासे रे।

अंत— चउविह संघ ने मंगल हो जो, दिन-दिन लच्छिमें भलज्जे रे,
हरिबल नी परे संपद लहेजो, लब्धि नी वाचा फल जे रे।

यह रचना १८४५ में प्रकाशित हुई। इनकी एक अन्य रचना 'जंबू स्वामि सलौको' का उल्लेख श्री देसाई ने किया है किन्तु उसका अन्य विवरण या उद्धरण नहीं दिया है।[३४५]

लालचंद । –

ये खरतरगच्छ में जिनचंद्र सूरि की परंपरा में क्षमासमुद्र, भावकीर्ति, रत्नकुशल के शिष्य थे। इनका दीक्षा नाम लावण्यकमल था। इनकी तीन रचनाओं का उल्लेख श्री अगरचंद नाहटा ने किया है; (१) दशत्रिक स्तवन १८३३, श्रीपाल रास १८३७ और ऋषभदेव स्तवन १८३९। श्रीपाल रास (४७ ढाल, सं० १८३७ आषाढ़ शुक्ल २, मंगलवार; अजीमगंज)

आदि— स्वस्ति श्री दायक सदा, चोतीस अतिशयवंत,
प्रणमुं बे कर जोड़िने, जगनायक अरिहंत।

पांचे इष्ट नमी करी धरी मन मांहि,
सिद्ध चक्र नव पद तणां गुण भारवों चित्त वाहि।

आगे ऊपर लिखी गुरुपरंपरा का कवि ने सादर उल्लेख किया है। अपने गुरु रत्नकुशल के लिए लालचंद ने लिखा—

तास सीस पाठक पद धारी, जगत जंतु उपगारी जी,
रतनकुशल त्रिभुवन जयकारी, तास सीस हितकारी जी।

रचनाकाल— वरस अठारह सै सैतीसे, सुदि आषाढ़ कहीसै जी,
द्वितीय मंगलवार सुदीसै, मिथुन संक्रांति जगीसै जी।
लालचंद निज हित संभावी, विकथा दूरैं टाली जी।
हेमचंद्र कृत चरित निहाली, चोपइ बंधे रसाली जी।

इससे प्रकट होता है कि मूल श्रीपाल चरित के कर्त्ता हेमचन्द्र थे जिसका भाषांतरण चौपाई बन्ध में लालचंद ने किया है।

अंत— "अक्षर मेल न होवे रुडो, पंडित जन सुध करिज्यौ जी,
सैतालीसे ढालैं गुणिज्यो, मुझ ऊपरि हित करिज्यौ जी।"[३४६]

लालचंद ॥ –

आप दिग० संप्रदाय के भट्टारक जगत्कीर्ति के शिष्य थे। आपने 'सम्भेदशिखर पूजा' की रचना सं० १८४२ फाल्गुन शुक्ल पंचमी को पूर्ण की। गुरु परंपरा इस प्रकार बताया है- काष्टासंघ और माथुरगच्छ पोकर गण कहो शुभगच्छ, अर्थात् काष्टासंध माथुरगच्छ के भट्टारक देवेन्द्र कीर्ति के शिष्य जगत्कीर्ति थे, यथा—

"तिनके पट्ट परम गुणवान, जगत्कीर्ति भट्टारक जान।
शिष्य लालचंद सुधी भाषा रची बनाय,
एकचित्त सुनै पढ़ै भव्य शिव कूं जाय।"

रचनाकाल— संवत अठारा सै भयो व्यालिस ऊपर जान,
पांचै फागुण शुक्ल कूं, पूरण ग्रंथ बखान।"[३४७]

लालचंद की इस रचना-'सम्भेद शिखर माहात्म्य' सं० १८४२ का उल्लेख कासलीवाल ने ग्रंथ सूची भाग ४ के २५१ पर भी किया है।

लालचंद ।।। –

इनका जन्म कातरदा (कोटा) नामक ग्राम में हुआ था। ये कोटा परंपरा के आचार्य दौलतराम जी महाराज के शिष्य थे। ये कुशल चित्रकार, विद्वान, कवि, तपस्वी और शासन प्रभावक संत थे। कोटा, बूंदी, झालावाड़, सवाई माधोपुर, टोंक आदि इनके विहार स्थान थे। मीणा लोगों ने इनके उपदेश से प्रभावित होकर मांस, मदिरा का त्याग कर दिया था। इनकी महावीर स्वामी चरित, जम्बूचरित, चन्दसेन राजा की चौपाई, चौबीसी, अठारह पाप के सवैये, बंकचूल चरित्र, श्रीमती का चौढालिया, विजयकुंवर का चौढालिया तथा लालचंद बावनी आदि अनेक रचनायें प्राप्त हैं। इनका रचनाकाल १९वीं शती का उत्तरार्द्ध है किन्तु ठीक-ठीक तिथि नहीं ज्ञात है और न रचनाओं से संबंधित विवरण-उद्धरण प्राप्त हो सके है।[३४८]

(ऋषि) लालचंद–

विजयगच्छीय भीमसागर सूरि के पट्टधर तिलकसूरि आपके गुरु थे। आपकी रचना 'अठारह नाते की कथा' का रचनाकाल सं० १८०५ माह सुदी ५ है जो निम्न उद्धरण से प्रमाणित है-

संवत अठारह पंचडोतर १८०५ जी हो माह सुदी पांचा गुरुवार,
भणाय मुहूरत शुभ जोग में जी हो कथण कह्यो सुविचार।

अंत— साध सकल में सोभतो जी हो ऋषि लालचंद सुसीस;
अठारा नाता चोखी कथी जी हो ढाल भणी इगतीस।[३४९]

इनकी एक अन्य रचना 'शांतिनाथ स्तवन' (सं० १८५९) का भी उल्लेख मिलता है परन्तु उद्धरण-विवरण नहीं मिला।[३५०]

पांडे लालचंद–

ये अटेर के रहने वाले थे। कामता प्रसाद जैन ने इनका उल्लेख लालचंद सांगानेरी के नाम से किया है।[३५१] ये ब्रह्मसागर के शिष्य थे। इनकी प्रसिद्ध रचना है- 'वरांग चरित्र भाषा' जिसके निर्माण में आगरा निवासी नथमल विलाला ने भी सहायता की थी। कवि ने इस रचना में अपना परिचय इस छंद में दिया है—

देश भदावर सहर अटेर प्रमानियै,
तहाँ विश्वभूषण भट्टारक मानियै;
तिनके शिष्य प्रसिद्ध ब्रह्म सागर सही,

अग्रवाल वर वंश विषै उत्पत्ति लही।
ब्रह्म उदधि कौ शिष्य फुनि पांडे लाल अग्यांन;
तव भाषा रचना विषै कीनौं हम उपयोग,
पै सहाय बिन होय नही तबहि मिल्यो इक योग,
नंदन शोभाचंद कौ नथमल अति गुनवान,
गोत विलाला गगन में उदयो चंद समान।
नगर आगरौ तज रहे हीरापुर में आय;
करत देखि इस ग्रंथ को कीनो अधिक सहाय।

इनकी कविता सरस और ललित है। कवि ने स्त्रियों, मुनियों आदि का बड़ा विम्बात्मक वर्णन किया है। स्त्रियों का वर्णन देखिये—

रुप की निधान गुनखानि नर नारी जहाँ,
चंचल कुरंग सम लोचन वरति है;
उन्नत कठोर कुच जुग पै उमंग भरी,
सुंदर जवाहर को हार पहिरति है।
लाज के समाज षची विधने सवारि रची,
सील भार लिये ऐसे सोभा सरसति हैं।
तारा ग्रह नखत की माला वेस धरि मानों,
मेरु गिरि सिषर की हांसी जे करति है।

मुनिवर्णन का भी एक नमूना देखें—

श्री मुनिवर जिहि देस विषै अति शोभा धारत,
तप कर छीन शरीर शुद्ध निजरुप विचारत।
भव-भव मै अघ भार किये जे संचय जग में,
देषत ही ते दूरि करत भविजन के छन में।

इन वर्णनों के आधार पर इन्हें प्रतिभावान कवि मानना उपयुक्त लगता है। ये देश, काल और व्यक्ति का मनोहर वर्णन करने में कुशल थे। इनकी अन्य रचनाओं में षटकर्मोपदेश रत्नमाला सं० १८१८, विमलनाथ पुराण, शिखर विलास, सम्यक्त्व कौमुदी और आगम शतक आदि उल्लेखनीय है।[३५२]

नाथूराम प्रेमी ने लालचंद सांगानेरी को वरांग चरित्र का लेखक बताया है।[३५३] बहुत संभव है कि लालचंद पांडे और लालचंद सांगानेरी एक ही व्यक्ति हों और उनकी रचना 'वरांग चरित्र भाषा' किसी मूल वरांग चरित्र पर आधारित हो। विमलनाथ पुराण भाषा का उल्लेख कासलीवाल ने भी किया है।[३५४] नाथूराम प्रेमी इस ग्रंथ का कर्त्ता किसी

अन्य लालचंद सांगानेरी को बताते है। हो सकता है कि दोनों भिन्न लेखक हो। अनेक लालचंद और उनकी रचनाओं में इतना घालमेल हो गया है, कि इस विषय में स्वतंत्र अध्ययन की आवश्यकता है।

लालजीत–

आपका कोई इतिवृत्त ज्ञात नहीं है। आपकी एक रचना 'अकृत्रिम जिन चैत्यालय पूजा' (हिन्दी पद्य, सं० १८७० कार्तिक शुक्ल १२) का उल्लेख मिलता है पर अन्य विवरण उद्धरण अनुपलब्ध है।[३५५]

लालविजय–

आप दर्शनविजय के प्रशिष्य एवं मानविजय के शिष्य थे। इन्होंने इलाकुमार रास (३२३ गाथा, सं० १८८१ आसो शुक्ल १५) की रचना की। इसकी अंतिम पंक्तियाँ निम्नांकित हैं-

रचनाकाल— संवत शशि नाग सिद्धि चंद्रो रे आसु मास।
शुकल पक्ष तिथी पूरणिमा रे लाल, पूरण कीधो रास।
दरसण विजे पंडित दीपता रे लाल, मानविजय मुनिराइ।
लाल कहे भाव राख जो रे लाल, तउ सुगती नां सुख थाइ।[३५६]

लालविनोद–

आपकी रचना 'नेमिचारमासा' का देसाई ने जैन गुर्जर कवियों में उल्लेख किया है किन्तु कोई उद्धरण या विवरण आदि नहीं दिया है।[३५७]

लावण्यसौभाग्य–

आपके प्रगुरु थे देव सौभाग्य और गुरु थे रत्न सौभाग्य। आपने 'अष्टमी स्तव' (सं० १८३९ आसो शुक्ल ५, गुरुवार, खंभात) की रचना की है जिसका प्रारंभ इन पंक्तियों से हुआ है—

पंच तीरथ प्रणमुं सदा, समरी सारद माय;
अष्टमी तवन हरषें रचुं, सुगुरु चरण पसाय।

अंत— खंभात वंदर अतीव मनोहर, जिण प्रासाद घणा सोहइ रे,
बिंब संस्थानों पार न लेबूं, दरिसण करी मन मोहइ रे।

रचनाकाल— संवत अठार ओगण चालीसा वरषे, अश्विन मास उदारो रे।

शुकल पंचमी गुरुवारे, तवन रच्युं छे त्यारे रे।
पंडित देव सोभागी बुध लावण्य रतन सोभागी तिणे नाम रे,
बुध लावण्य लिओ सुख संपूर्ण, श्री संघ ने कोड कल्याण रे।[३५८]

यह रचना चैत्य आदि संज्झाय भाग १ में और जिनेन्द्र भक्ति प्रकाश तथा देव वंदन माला नवस्मरण संग्रह में प्रकाशित हैं। 'पंडित 'देव' सोभागी बुध लावण्य रतन सोभागी तिणे नामे रे' पंक्ति में लावण्य रतन के स्थान रतन सौभाग्य होना उचित प्रतीत होता है। इस रचना के अलावा आपकी किसी अन्य रचना का पता न होने के कारण किसी अन्य सूत्र से कवि की गुरुपरंपरा का निर्धारण करना संभव नहीं हो पाया है। अत: इस पंक्ति से भ्रम उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

वल्लभविजय–

तपा० शांतिविजय; सुजाणविजय; हितविजय के शिष्य थे। इनकी रचना 'स्थूलिभद्र चरित्र बालावबोध' (सं० १८६४ ज्येष्ठ शुक्ल ६) जयानंद सूरि कृत मूल कृति स्थूलिभद्र चरित्र की गद्य टीका है। मूल रचना की प्रति-पुष्पिका इस प्रकार है' भ० विजयदयासूरि शिष्य मुक्तिविजय-डुंगरविजय,[३५९] विवेक गणि, सं० १८६३ प्रभावती नगरे सामला पार्श्वनाथ।

बसतो या वस्तो –

वढ़वाण के स्थानकवासी श्रावक थे। आपकी माता का नाम नाथी और पिता का नाम नाथू था। वसतो के मन में परिस्थिति के प्रभाव से जीव दया का भाव उमड़ा और पचखाण व्रत किया, तत्पश्चात् दीक्षित होकर यशस्वी तपसी हो गये। इनके चमत्कार की अनेक कथायें प्रचलित है। इनकी लोकप्रिय रचना है—

जूठा तपसीनो सलोको (९१ कड़ी, सं० १८३६ भाद्र शुक्ल १०, रविवार)

आदि— परथम समरूं हूं बीतराग स्वामी, जिन मारग ना छो अंतरजामी
वीर प्रभु ना लेसुं वली नाम; शीस नवाभी करुं प्रणाम।

अंत— जुठा तपसीनी जोड़ जे कैंशे, जुगो जुग ते अमर रहेसे।
कर जोड़ी ने सेवक कहेछे, कहेनारो वास वढ़वाण रहे छो।

रचनाकाल— संवत अठार छत्रीसी सार, भादरवा सुद दशम ने आदितवार।
पूरी जोड़ तो हुई निरधार, सुणतां भणतां थाय जयजयकार।
आछो अधिको विपरीत जेहं, मिच्छामि दुक्कड़ दऊं छुं तेह।
अे जोड़ तो वणिक वस्तो कहे, जुठानों नाम ते जगोजग रहे।''[३६०]

यह कृति दोशी नेमचंद सवजी ने सं० १९८६ में प्रकाशित किया है। आपकी एक अन्य रचना 'जिनलाभ सूरि गीतानि' शीर्षक के अन्तर्गत ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में संकलित है। उसमें माणिक, मुनि देवचन्द्र और वसतों की गीत-रचनायें संकलित है। यह तीसरी रचना है। इसकी अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

श्री जिनलाभ सुरिन्द्र प्रतपो जिम सूरिज चंद्र हे,
चित्त धरि अधिक जगीस, इम वसतो दे आशीस हो।[३६१]

इस क्रम में चौथी रचना क्षमाकल्याण की है।

बान–

ज्ञानविमल सूरि संतानीय विवुधविमल सूरि के श्रावक शिष्य थे। इन्होंने 'विवुधविमल सूरि रास' (१३ ढाल, सं० १८२० श्रावण शुक्ल १३, बुरहानपुर) लिखा है, इसका आदि इस प्रकार है-

परणमुं पास जिणंद ना, चरण कमल सुखदाय;
वीर शासन मुनि गायसुं, वंछीत पूरो माय।
तिण कारण तुं सरसती दीजे वचन विलास,
लखमीविमल गुरु गायसुं, पूरे मन नी आस।
X X X X X X

अंत— विवुध विमल सूरि गाइआ, गाया रंग रसाल,
वीर शासन मुनि गावसे, तस द्वार मंगलमाल।

आपकी गुरुपरंपरा इस प्रकार है-

विजयप्रभ के पट्टधर ज्ञानविमल > सौभाग्यसागर > सुमतिसागर > विबुध विमल सूरि के शिष्य थे श्रावक बान।

रचनाकाल निम्न पंक्तियों में बताया गया है—

संवत अठार से बीसना वरसे, महिमा विमल सूरि आया रे,
श्रावण सुद तेरस ने दीने, बुरहानपुर नगर मां गाया रे।

इस रास के अनुसार रास के नायक विवुधविमल सीतपुर ग्राम के रइआं बाई और गोकुल मेहता के पुत्र थे। जन्म नाम था लक्ष्मीचंद। इन्हें कीरत विमल सूरि ने दीक्षा दी और लक्ष्मीविमल दीक्षा नाम रखा गया। सं० १७१८ में जब ये आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए तब नाम बदल कर विवुधविमल पड़ा। ये सं० १८१४ में औरंगाबाद में स्वर्गवासी

हुए थे। इसके संपादक मुनिविजय का मत है कि इनका आचार्य पद पर बैठना सं० १७१८ के बजाय सं० १७८८ होना ज्यादा संभव और समीचीन लगता है। विजयप्रभ से पूर्व की गुरु परंपरा में हेमविमल, आणंदविमल, विजयदान, हीरविजय, विजयसेन और विजयदेव का सादर वंदन किया गया है। वे श्रावक थे, यह तथ्य इन पंक्तियों से उजागर होता है-

निर्मल करणी निर्मल वाणी देखी ने सुख पाया रे;
श्रावक दास तुमारो सामी, तुम चरणों चित लाया रे।

कलश की अंतिम दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं---

नाम लीजै सेव कीजै तन मन कीजै वारीयो;
विबुधविमल सूरि सेवक कहै, सिव **रमणी** करै उवारीयां।[३६२]

विजयकीर्ति–

आप दि० संप्रदाय के मूल संघ नागौर की गादी के भट्टारक भुवनभूषण के पट्टधर थे। इन्होंने श्रेणिक चरित्र भाषा और 'महादंडक' नामक सिद्धांत ग्रंथ सं० १८२९ में अजमेर में लिखा। संबंधित पंक्तियाँ उद्धृत कर रहा हूँ-

रचनाकार--- विजयकीर्ति मुनि रच्यो सुग्रंथ, भव्य जीव हितकार सुपंथ।

रचना स्थान— गढ़ अजमेर सुथान, श्रावक सुष लीला करै;
जैन धर्म बहुमान, देव शास्त्र गुरु भक्ति मन।[३६३]

रचनाकाल— संवत जानि प्रवीन अठारो सै गुणतीस लखि;
महादण्डक शुभ दीन, ज्येष्ठ चौथि गुरु पुष्य शुक्ल।[३६४]

दूसरी रचना 'श्रेणिक चरित्र भाषा' (सं० १८२६, अजमेर) है। संबंधित पंक्तियाँ निम्नांकित हैं—

गढ़ अजमेर सकल सिरदार, पट नागौर महा अधिकार;
मूलसंघ मुनि लिखिय बणाय, भट्टारक पद नो भव भाय।

इस रचना में मूलसंघ के रत्नकीर्ति, महेन्द्रकीर्ति, अनंतकीर्ति और विजयकीर्ति आदि गुरुजनों की वंदना की गई है यथा-

रचनाकाल— विजयकीर्ति भट्टारक जानि, इह भाषा कीनी परमाण,
संवत अठारा सय सतबीस, फागुण सुदी साते सुजगीस।
बुधवार इह पूरण भई, स्वाति नक्षत्र वृद्धज पासु थइ।

गोत पाटनी है मनिराय, विजयकीर्ति भट्टारक थाय।
तसु पटधारी श्री मुनि जानि, बड़ज्यात्या तसु गोत्र पिछानि।
त्रिलोकेन्द्र कीर्ति रिषराज, नित प्रति साधय आतम काज।
विजय मुनि शिष्य दुतिय सुजांण, श्री वैराड देश तसु आण
धर्म्मचंद भट्टारक नाम, ढोल्या गोत वण्यो अभिराम।
मलयखंड सिंहासन सही, कारंजय पट सोभा लही।[३६५]

इसमें एक जगह रचनाकाल सं० १८२७ दिया है जैसा ऊपर उद्धृत पंक्तियों से भी स्पष्ट है किन्तु अन्यत्र रचना काल सं० १८२० फागुन वदी सप्तमी दिया है। लगता है लेखन या लिपि वांचने की भूल से ऐसा हुआ है।

विजयनाथ माथुर–

ये टोडा नगर के निवासी थे। इन्होंने जयपुर के दीवान श्री जयचंद के सुपुत्र कृपाराम और ज्ञान जी की इच्छानुसार सं० १८६१ में भ० सकलकीर्ति कृत 'वर्द्धमान पुराण' का हिन्दी पद्यानुवाद किया। कवि ने अपना परिचय निम्न पंक्तियों में दिया है—

वासी टोडे नगर को माथुर जाति प्रवीन;
पुण्य उदय तासौ तहां, यहै हुक्म जौ कीन।
X X X X X X
भाषा रच्यो बनाय, वर्द्धमान पुरान की।[३६६]

विजयलक्ष्मी सूरि–

ये तपागच्छ के आचार्य विजयसौभाग्य सूरि के पट्टधर थे। तपागच्छ के हीरविजय सूरि के पट्टधर विजयसेन सूरि के पट्ट पर तीन आचार्य विजयदेव, विजयतिलक और राजसागर हुए। विजयतिलक सूरि के पट्टधर विजयानंद सूरि थे। इनके फिर तीन आचार्य विजय सौभाग्य, विजयराज और रत्नविजय हुए। विजयसौभाग्य के पट्टधर शिष्य विजयलक्ष्मी सूरि थे। इन्होंने संस्कृत में 'उपदेश प्रासाद' (वृत्ति सहित) सं० १८४३ में लिखा था, इनकी हिन्दी में भी कई रचनायें अपलब्ध है जिनका विवरण आगे दिया जा रहा है-

रचना–

ज्ञानदर्शन चरित्र संवाद रुप वीर स्तव (८ ढाल, सं० १८२७)

आदि— श्री इन्द्रादिक भाव थी प्रणमें जग गुरु पाय;
ते प्रभु वीर जिणंद ने, नमतां अति सुख थाय।

ज्ञानदर्शन चरित्र नो कहूं परस्पर संवाद,
त्रिक्योगे सिद्धि होई, अहेवो वचन प्रवाह।

इसमें ज्ञान, दर्शन और चरित्र के योग का महत्त्व बताया गया है। इनके संयोग के बिना सिद्धि कथमपि संभव नहीं है।

आवश्यक आदिक ग्रंथ थी जोई, रचना करी मनोहारी रे,
हीनादिक निज बुद्धे कहेवाथुं, वे श्रुतधर सुधारों रे।

रचनाकाल— मुनि कर सिद्धि वदन ने वरसे, आठम सुदि भले भावे रे,
भणसे त्रीस कल्याणक अे दिन, त्रीस चोवीसी ना थावे रे।

यह रचना 'सज्जन सन्मित्र' के पृ० ३१७-३२३ और चैत्य आदि संज्झाय भाग १ तथा जिनेन्द्र भक्ति प्रकाश के अलावा अन्यत्र कई स्थानों से प्रकाशित है।

'षट्— अष्टाह्निक (छ्ट अठाई नुं) स्तवन (सं० १८३४ चैत्र शुक्ल १५)

आदि— श्री स्याद्वाद सुधादधि, वृद्धि हेतु जिनचंद,
परम पंच परमेष्ठि मां, तासु चरण सुखकंद।

इसमें अपनी गुरु परंपरा पर लेखक ने सविवरण प्रकाश डाला है जिसका उल्लेख पहले किया गया हैं। इसमें हीरविजय के संदर्भ में अकबर प्रबोध की भी चर्चा है।

रचनाकाल देखें—

इम पार्श्व प्रभुनो पसाय पामी, नामी अठाई गुण कह्या,
भवी जीव साधो नित आराधो, आत्मधर्मे ऊमह्या।
संवत् जिन अतिशय (३४) वसु (८) शशि (१) चैत्री पुनमें ध्याइया;
सौभाग्यसूरि शिष्य लक्ष्मी सूरि बहु संघ मंगल पाइया।

यह रचना भी चैत्य आदि संज्झाय भाग १ और अन्यत्र से भी प्रकाशित है।
बीस स्थानक पूजा स्तवन (सं० १८४५ विजयदसमी, शंखेसर)

कलश— इम बीस स्थानिक स्तवन कुसुमें पुजीओ संखेसरो,
संवत समिति वेद वसु शशि विजयदसमी मनोहरो।
तपगछ विजयानंद पटधर श्री विजय सौभाग्य सूरीश्वरो।
श्री विजयलक्ष्मी सूरि पभणे सयल संघ जय करो।

यह कृति विविध पूजा संग्रह और चैत्य आदि संज्झाय भाग ३ तथा अन्यत्र से प्रकाशित है।

चौबीसी–

यह चौबीसी-बीशी संग्रह में प्रकाशित है। ज्ञानपंचमी (अथवा सौभाग्य पंचमी) देव वंदन नामक रचना देव वंदन माला और चैत्य आदि संज्झाय भाग ३ तथा जिनेन्द्र भक्ति प्रकाश और अन्यत्र से प्रकाशित है। वहाँ से उद्धरण सुविधापूर्वक देखे जा सकते है। इन विस्तृत रचनाओं के अलावा आपने रोहिणी संज्झाय (प्रकाशित); भगवती सं० ज्ञानपंचमी संज्झाय आदि कई छोटी रचनायें की हैं जो प्राय: प्रकाशित है। इससे पता चलता है कि ये अच्छे रचनाकार तथा प्रभावशाली आचार्य थे।[३६७]

विद्यानंदि–

आपने सं० १८१७ माघ शुक्ल पंचमी के दिन अपनी रचना 'नेमिनाथ फागु' को पूर्ण किया। इसमें ७६६ पद्य हैं और हिन्दी फागु परंपरा का यह प्राचीन फागु है। इसके दो प्रतियों का विवरण कस्तूरचंद कासलीवाल ने दिया है।[३६८] उत्तमचंद कोठारी ने भी अपनी हस्तलिखित सूची के पृष्ठ चौवालिस पर इसका उल्लेख किया है किन्तु दोनों विद्वानों ने इस फागु का विवरण उद्धरण नहीं दिया है।

विद्याहेम–

आपने सं० १८३० भाद्र कृष्ण द्वितीया को अपनी रचना 'विवाह पडल अर्थ' को पूर्ण किया। इसका भी विशेष विवरण उपलब्ध नहीं है।[३६९]

विनकर सागर–

तपागच्छीय प्रधानसागर इनके गुरु थे। इन्होंने सं० १८५९ में 'चौबीसी' की रचना राणकपुर में की। '२४ जिन चरित्र' नामक एक बड़ा ग्रंथ इन्होंने १८७९ सं० में गोढ़वाड़ में पूर्ण किया। अगरचंद नाहटा ने इनकी तीसरी रचना 'मानतुंगी स्तवन' का भी उल्लेख किया है परंतु उन्होंने इन रचनाओं का अन्य विवरण या उद्धरण नहीं दिया है।[३७०]

विनयचंद I –

आप श्याम ऋषि-ताराचंद, अनोपचंद के शिष्य थे। इनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है—

मयणरेहा चौपाई (छ: ढाल, सं० १८७० अधिक माघ १३, जयपुर)

आदि— आदि प्रथम धोरी प्रथम राजेश्वर जिनराय,
नमि नाभेय अमेय गुण, कनक आभ सम काय।

रचनाकाल— संवत अठारे सय सित्तर अधिक्क माघ तेरसी दिने,
जयपुरे जिनवरने प्रसादे, सुणो भवियण इकमने।

कलश— सिद्धांतसार विचार सागर लोक में कीरति घणी,
संवेगरंग विशेष अंगे साधु शाम ऋषि गणी।
ताराचंद गुणधर अनोपचंद सीस अे,
तस चरण सेवक विनय छहुअे करी ढाल जगीस अे।[३७१]

आपकी दूसरी रचना 'चंद्रन वाला चौढालियु' (सं० १८८५ ज्येष्ठ शुक्ल ७) है।[३७२] इसका उद्धरण उपलब्ध नहीं है। आपकी तीसरी रचना सं० १८७२ से कुछ पूर्व 'सुभद्रा चौ०' नाम से लिखी गई। इसका प्रारंभ इस प्रकार है—

शिवदायक लायक सदा, कंचन वरण शरीर।
शासन नायक सिवगति, नमो-नमो महावीर।

अंत— गुणगणलंकृत हरण दुरमति श्री आचार्य साम,
तास चरण सेवक ताराचंद जी, करी अति अभिराम।
अनोपचंद जी तास शिष्य आदरी आणंद धरी,
तस चरण सेवक कवि विनयचंदे, ढाल पांचु अे करी।

श्री देसाई ने जै०गु०क० के प्रथम संस्करण में विनय नाम दिया था, नवीन संस्करण में विनय और विनयचंद को एक कर दिया गया है।

विनयचंद के संबंध में अगरचंद नाहटा जी का कथन है कि ये अनोपचंद के शिष्य थे। सं० १८७०-८५ के बीच आपने करीब १५ हजार पद्य संख्या परिमिति रचनायें की, उनमें सबसे विस्तृत रचना बहादुर पुर अलवर में रचित महिपाल चौ० १८८७ है। अन्य रचनाओं में उन्होंने मानवती मानतुंग रास १८७० जयपुर, मयणरेहा छढालियो १८७० जयपुर, सुभद्रा पंचढालियों १८७०, नंदराय वैरोचन चौ० १८७९ जयपुर; थावच्या चौढालिया १८८५, भंडुक चौ० १८८५ शाहजहानाबाद चंद्रन बाला चौढालिया १८८५, अंजना चौ० ११ ढाल, रोहिणी चौ० शाहजहानाबाद, जयंती चौढालिया; देवानंद चौढालिया, बीकानेर; होलिका चौढालिया, नंदीषेण चौढालिया, पद्मिनी पंचढालिया, दोहारी ढाल, पुष्पवती ७ ढाल (शीलोपदेश माला पर आधारित); आषाढ़ भूति चौढालिया, सम्यकत्त्व कौमुदी चौ० १८८५ और आलंदी ५२ ढाल की सूची दी है।[३७३] महिपाल चौ० सबसे विस्तृत है इसमें १४९ ढाल है।

विनयचंद ॥ –

आप स्थानकवासी श्रावक थे। हमीर मुनि इनके गुरु थे। इन्होंने सं० १९०६

में 'चौबीसी' की रचना की।[३७४] चूँकि यह रचना बीसवी शती की है अत: इसका नामोल्लेख करके छोड़ दिया गया है। ये गोकुलचंद ओसवाल के पुत्र थे।

विनयभक्ति–

ये खरतरगच्छीय वाचक भक्तिभद्र के शिष्य थे। इनका प्रसिद्ध नाम वस्ता था। 'जिनलाभ सूरि दवावैत' इनकी प्रथम हिन्दी रचना है। जिनलाभ सूरि का आचार्य काल सं० १८०४ से १८३४ तक था अत: यह रचना इसी कालावधि में हुई होगी। इसकी गद्य वचनिका का एक उद्धरण नमूने के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है—

"ऐसी पद्मावती माई बड़े-बड़े सिद्ध साधू कूं नै ध्याई। तारा कै रूप बौद्ध सासन समाई। गौरी के रूप सिव मत वालु नैं गाई। जगत में कहानी हिमाचल की जाई। जाकी संगती काहू सो लखी न जाई। कौसिक मत में वज्रा कहानी, सिव जूं की पटरानी। सिव ही के देह में समानी। गाइत्री के रूप चतुरानन मुख पंकज बसी। अक्षर के रूप चौद विद्या में विकसी।" इस गद्यांश में पद्य जैसी तुकांत की प्रवृत्ति दर्शनीय है।

इनकी दूसरी रचना 'अन्योक्ति बावनी' महत्त्वपूर्ण है। इसमें बासठ पद्य हैं। जैसलमेर के राजा मूलराज के आग्रह पर लेखक ने सं० १८२२ में इसका लेखन प्रारंभ किया। इसकी एक प्रति अभय जैन ग्रंथालय में सुरक्षित है।[३७५]

(पं०) विलास राय–

ये इटावा के निवासी थे। इन्होंने सं० १८३७ में 'नयचक्रवचनिका' और 'पद्मनंदि पचीसी वचनिका' नामक दो गद्य ग्रंथ लिखे।[३७६]

विवेकविजय–

ये तपागच्छ के विजयदया सूरि > मुक्तिविजय > डुंगरविजय के शिष्य थे। इन्होंने सं० १८७२ विजयदसमी को दमण में 'नवतत्त्व स्तवन अथवा रास' की रचना की।

आदि— सरसती ने प्रणमुं सदा, वरदाता नितमेव;
मुझ मुख आवी तूं बसे, करुं निरंतर सेव।

इसके प्रारंभ में ऋषभदेव की वंदना करके तत्त्वविचार वर्णन का संकल्प लिया गया है; यथा—

जीव अजीव पुन्य पाप ने, जिन जी अे भाख्या जेह,

इन सभी तत्त्वों का इस रचना में सरल ढंग से वर्णन करके समझया गया है।

इसकी अंतिम पंक्तियाँ निम्न कलश में है जिसमें रचनाकाल दिया गया है—

जग जंतु तारण दुख निवारण आदि जिनवर में थुण्यो;
संवत अठार वहोत्तरा वर्षे भविक हित हेते भण्यो।
दमण पुरवर विजय दसमी आश्विन मास शुभ पक्ष अे,
सु गुरुवारे सुख बधारे कहे कविजन दक्ष अे।"

रचना में गुरु परंपरा इस प्रकार बताई गई है—

तपागच्छ राजे बड़ दीवाजे श्री विजयदया सूरीसरु,
तस सीस सुंदर गुण पुरंदर पंडित डुंगर मुणीन्द्र अे,
तस सीस सेवक भणे भावे विवेक लहे आणंद अे।[२७७]

यह रचना 'कर्म निर्जरा संज्झाय संग्रह' में प्रकाशित है।

विशुद्ध विमल–

आप वीरविमल के शिष्य थे। आपने सं० १८०४ में 'बीसी' लिखी। विवरण इस प्रकार है-बीशी (१८०४ ज्येष्ठ शुक्ल ३, गुरुवार, पालणपुर)

आदि— श्री सीमंधर साहिबा, सुणो हो संप्रति भरत क्षेत्र नी बात के,
अरि हां केवली को नही, केने कहीये हो मन अवदात के,
श्री सीमंधर साहिबा।

कलश में रचनाकाल दिया गया है, यथा—

संवत अठार चार सुकर मासे, तत्त्व शुभ गुरु खास जी,
पालणपुर प्रणमी पार्श्व जिन, गुण गाया उल्लास जी।

यह रचना चौबीसी-बीशी संग्रह पृ० ६३९-६५२ पर प्रकाशित है। कलश की प्रारंभिक पंक्तियाँ में कवि ने अपने गुरु वीरविमल की वंदना की है।

ये १८वीं शती से ही रचनरत थे और सं० १७८१ में मौन अेकादशी स्तव लिखा था। १८वीं शती की एक ही रचना प्राप्त होने के कारण इन्हें १९वीं शती में स्थान दिया गया है। दूसरे इसके रचनाकाल पर देसाई जी ने प्रश्न चिह्न लगा दिया था इसलिए यह पूर्णतया निश्चित नहीं था किये १८वीं शती के रचनाकार थे। जैन गुर्जर कवियों के नवीन संस्करण के संपादक का कथन है कि मौन अेकादशी स्त० का रचनाकाल सं० १७८१ ही है इसका प्रारंभ इस प्रकार है—

सुपास जिणवर करुं प्रणाम, गुण छत्रीसइ बोलुं नाम,

मन बच कायाईं करी, आगम वाणी हियइडइ धरी।

अंत— संवत सतर अेकासी आ वरसे तवन रचुं खंते जी,
जग अनुसारे जोई कीधी, बारे गाथा में तंते जी।
श्री वीरविमल सेवा करतां, ऋद्धि कीरति बहु पाया जी,
विशुद्ध विमल कहें संगे पुरुषोत्तम गुण गाया जी।[३७८]

विष्णु–

ये संभवत: जैनेतर लेखक थे। इनकी कृति 'चंदन राजा ना दूहा (सं० १८२८ फाल्गुन कृष्ण १३, भोमवार, भुज) हिन्दी भाषा और विविध छंदो में लिखित है। इसका प्रारंभ देखिए—

अलख नीरंजन एक, तूं देत सुवचन दात,
सरसति को सुमिरन करुं, रचो चंद की बात।
गनपति शुभ दीजे सगुन, बानी सरस विवेक,
चंदराज की चोज सो, रचौं जु बात विशेक।
जैन धर्म के ग्रंथ में कथा सुचोपइ जात,
विसुन सोई भाषा करी, चंद राय की बात।

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि मूल पुस्तक जैन धर्म की थी; कवि विष्णु ने उसका भाषांतरण किया है। इसलिए इसे जैन साहित्य में स्थान दिया जाना उचित है।

कवि ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

वल्ला सुत जो विष्णु जी, लोहरवंशी लेख,
चंदराय की बात यह, प्रगट करी तिहिं पेख।

रचनाकाल— संवत अठारे विसअठ, फागुन तेरस सांम,
भोमवार की प्रगट भइ, चंद बात तिहि नाम।
चंदराय की बारता, विष्णु रची सो भारव,
आली सुत तकि अछर शावत मेरी अे साख।[३७९]

वृद्धिविजय–

रचना- 'चित्रसेन पद्मावती रास' प्राप्त प्रति का एक पृष्ठ नहीं है इसलिए गुरु परंपरा के संबंध में केवल 'तपगछ पंडित-------'' पाठ मिला, आगे का पाठ न मिलने से गुरु परंपरा प्रारंभ में नहीं है किन्तु अपनी रचना 'चित्रसेन पद्मावती रास' (३ खंड सं० १८०९ वैशाख शुक्ल ६, मंगलवार, मधुमती) में कवि ने अपनी गुरु परंपरा दी

है और लिखा है कि विजयधर्म सूरि के राज्य में यह रचना हुई, यथा—

तास पटि आचारिज चिरंजीवी, विजयधर्म सूरि तस राज्यें,
संघ आग्रहे मि रचना कीधी, मधुमती संघ ने साहज्ये रे।

मधुमती संभवत: आधुनिक महुवा नामक स्थान है। इससे पूर्व लेखक ने विजय क्षमा, विजय दया और विजय धर्म सूरि का सादर वंदन किया है। अर्थात् ये तपागच्छीय विजय क्षमा > विजयदया > विजयधर्म सूरि के शिष्य रहे होंगे। रचनाकाल इन पंक्तियों में है---

संवत अठार नंद मिति वरसे, वैशाष सुदि छठि दिवसें रे,
कुजवार अे पूरण कीधो, चरित्र थी रास उल्लासि रे।

इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ निम्नांकित हैं—

पंचनाम परगट कर्या, आदी सर अरिहंत,
युगला धर्म निवारीओ, ते प्रणमुं भगवंत।

मंगला चरण में नेमि, पार्श्व और महावीर की वंदना की गई है। कवि ने तत्पश्चात् हंसवाहिनी सरस्वती से प्रार्थना किया है कि वे कवि को वाणी की ऐसी सामर्थ्य दें ताकि वह शील धर्म पर आधारित 'चित्रसेन पद्मावती' की कथा का सुंदर-सरस वर्णन कर सके।

संबंधित पंक्तियाँ देखिए—

शीलोपरि अधिकार कहूं, सुणज्यो देई कान,
श्रोताजन सुणतां थका, उपजस्ये बहु तान।
चित्रसेन राजा तणी, पद्मावति घरि नारि,
तास चरित सुपरिं कहूं, शील तणे अधिकार।

इसमें शील का बड़ा गुणमान किया गया है, यथा—

शीले देव देवी बसि थाई-शीले नवभव भांजे। इत्यादि[३८०]

वृंदावन–

कामता प्रसाद जैन और नाथूराम प्रेमी ने वृंदावन को इस शताब्दि का श्रेष्ठ जैन कवि घोषित किया है। इनका जन्म शाहाबाद जिलान्तर्गत बारा नामक ग्राम में सं० १८४८ को हुआ था। इनके पिता धर्मचंद गोयल गोत्रीय अग्रवाल थे। १२ वर्ष की अवस्था में जब कवि अपने पिता के साथ काशी आये थे तब काशीनाथ आदि कई विद्वज्जनों की सत्संगति का सुअवसर इन्हें मिला। वे काशीवास के समय बाबर शहीद की गली

में रहते थे। इनके वंशज अभी आरा में वर्त्तमान हैं। इनके ज्येष्ठ पुत्र अजित की ससुराल आरा में थी और वे वहीं रहने लगे थे। वे भी अच्छे कवि थे। वृंदावन ने 'छंदशतक' की रचना अजित के लिए ही की थी। वृंदावन की माता का नाम सिताबी और पत्नी का नाम रुक्मिणी थी। इनकी पत्नी एक धर्म परायण पतिव्रता महिला थी। एक छंद कवि ने उन्हें लक्ष्य करके लिखा है—

प्रमदा प्रवीन व्रतलीन पावनी,
पिड़ शील पालि कुल रीति राखिनी।
जल अन्न शोधि मुनि दान दायिनी,
वह धन्य नारि मृदु मंजु भाषिनी।''

उनकी ससुराल काशी में ही थी जहाँ टकसाल का काम होता था। किसी बात पर यहाँ का कलक्टर नाराज हो गया और उसने कवि वृंदावन को तीन माह की जेल की सजा दे दी। जेल में उन्होंने प्रसिद्ध कविता 'हो दीनबन्धु श्री पति करुणानिधान जी।' लिखी। वे जेल से मुक्त हो गये इसलिए यह कविता संकटमोचन कही जाती है। उनकी इच्छा 'जैन रामायण' लिखने की थी पर वे इसे पूरा करने से पूर्व ही स्वर्गवासी हो गये। अपनी इस अपूर्ण इच्छा को पूर्ण करने का आदेश उन्होंने अपने कवि पुत्र अजित को दिया था पर दुर्भाग्य वश वे भी इसे पूरा करने के पूर्व ही स्वर्गवासी हो गये। इनकी संकटमोचन कविता में वीतराग विज्ञान के स्थान पर आत्मविभोर करने वाली भक्ति ने ले लिया है। वे स्वाभाविक सहज कवि थे, पुस्तकीय ज्ञान पर आधारित शुष्क काव्य रचना में उनका विश्वास नहीं था। इनकी प्रमुख कृति है 'प्रवचनसार टीका'। यह मूल प्राकृत ग्रंथ का भाषा में पद्यानुवाद है। कवि ने रचना के बारे में लिखा है—

तब छंद रची पूरन करी, चित्त न रुची तब पुनि रची,
सोऊ न रुची तब अब रची, अनेकांत रस सौ मची।

अर्थात् कवि ने इसे तीन बार में सुधार कर लिखा था। इनका दूसरा ग्रंथ 'चतुर्विंशति जिन पूजा पाठ है और तीसरी रचना है- 'तीस चौबीसी पूजा पाठ' इन रचनाओं में यमक अनुप्रास आदि शब्दालंकारों की बहुलता है। लगता है कि कवि का ध्यान शब्दों के चमत्कार पूर्ण प्रयोग पर जितना था उतना भाव-निखार पर नहीं दिया जा सका। ये रीति कालीन शैली के श्रेष्ठ कवि थे। छन्द शतक छन्द शास्त्र का सरल छात्रोपयोगी ग्रंथ है। नाथूराम प्रेमी चाहते थे कि इस ग्रंथ को हिन्दी साहित्य सम्मेलन की साहित्य संबंधी प्रथमा परीक्षा में शामिल किया जाय। ग्रंथ से उद्धरण देखें—

चतुर नयन मन दरसत, भगत उमंग उर सरसत;
नुति थुति करि मन हरसत, तरल नयन जल बरसत।

इसे कवि ने सं० १८९८ में १५ दिन में लिखा था, इससे कवि का छंद शास्त्र के साथ काव्य रचना में प्रवीण होना प्रमाणित होता है। यह रचना 'वृंदावन विलास' नामक संग्रह में संकलित है। यह कवि की कई स्फुट रचनाओं का संग्रह है। 'अर्हन्त पाशा केवली' भी संकलित रचनाओं में है। वृंदावन विलास से कवि की रचना का नमूना देखें—

जो अपनो हित चाहत है जिय तौ यह सीख हिये अवधारो;
कर्मज भाव तजो सबही निज, आतम को अनुभव रस गारों।
श्री जिनचंद सो नेह करो नित, आनंद कंद दशा विस्तारो,
मूढ़ लखै नहि गूढ़ कथा यह गोकुल गाँव को पैड़ो ही न्यारो।

इन्होंने बड़े भावपूर्ण पदों की रचना की है, एक पद का नमूना—

हमारी बेरियों काहे करत अबार जी
इह दरबार दीन पर करुना, होत सदा चलि आई जी,

मेरी विथा विलोकि रमापति, काहे सुधि विसराई जी।" इत्यादि। उल्लेखनीय है कि आप जिनचंद के साथ रमापति, गोकुल आदि को भी सादर स्मरण करते हैं और किसी प्रकार की साम्प्रदायिक कट्टरता में विश्वास नहीं करते।[३८१]

चौबीस तीर्थंकर पूजा १८४७ की प्रति का विवरण कासलीवाल ने दिया है।[३८२] धर्मबुद्धि मंत्री कथा का रचनाकाल सं० १८०७ भी इन्होंने दिया है।

वृंदावन के व्यक्तित्व कृतित्व का उल्लेख न तो नाहटा ने और न देसाई ने किया है। यह उपेक्षा दिगंबर होने के नाते तो नहीं है?

वीर–

इन्होंने 'राजिमति नेमिनाथ वारमास' अथवा 'नेमिश्वर ना बारमास' (३७ कड़ी) की रचना सं० १८१२ वैशाख शुक्ल, गुरुवार को पूर्ण की।

आदि— आदेसर आदे करीने प्रणमुं जिनवर पायां जी,
सरस्वती ने चरणों नमी वली, गिरुआ गणपतिराया, अंतरजामी जी।
कार्तिक मासे कमलाकामी, पामी परमाणंद जी,
सज्जनी रजनी आज नी रुडी निरखे नयणानंद जी।

रचनाकाल— संवत अठार बार ज वर्षे वैशाख सुदि गुरुवारो जी,
वीर मुनि नी विनति प्रभु, भवसागर पार उतारो जी।

अंत— नेम राजुल नार ना ने गाया बारेमास जी,

भणे गुणे जो कोई साभंले, तेहनी सफले मन आस जी।[३८३]

यह रचना प्राचीन मध्यकालीन बारमासा संग्रह में प्रकाशित है।

वीरविजय–

तपागच्छीय सत्यविजय > कपूरविजय > क्षमाविजय > जसविजय > शुभविजय के शिष्य थे। वीरविजय के शिष्य रंगविजय ने इनके निर्वाणोपरांत एक रास लिखा। उसके अनुसार इनका संक्षिप्त इतिवृत्त यहाँ दिया जा रहा है-

वीरविजय का जन्म नाम केशव था। वे राजनगर के शांतिदास पाड़ा निवासी जद्रोसरं विप्र की भार्या विजया की कुक्षि से पैदा हुए थे। पालीताणा में शुभविजय ने केशव को रोग से मुक्ति दिलाई और कार्तिक सं० १८४८ में उसे दीक्षित करके नाम वीरविजय रखा। धीरविजय और भाणविजय इनके गुरु भाई थे। गुरु से शास्त्राभ्यास करके वीरविजय ने सं० १८५८ में स्थूलिभद्र शियल वेल और अष्टप्रकारी पूजा की रचना की। सं० १८६० में शुभविजय जी का स्वर्गवास हो गया। तत्पश्चात् वीर विजय ने लीवड़ी बढ़वान और सूरत आदि स्थानों का विहार किया। सूरत के अंग्रेज अधिकारी को अपने तिथि ज्ञान से प्रसन्न किया और वहीं रहने लगे। सं० १८७० में स्थानकवासी से झगड़ा हुआ; बाद में अधिकारी ने इनके पक्ष को विजयी घोषित किया।

इन्होंने अनेक मंदिरों का निर्माण और प्रतिमा स्थापन करवाया। सं० १९०८ भाद्र कृष्ण ३ गुरुवार को स्वर्गवासी हुए। इनकी लिखी रचनाओं की संख्या पचीसों हैं किन्तु उनमें से कुछ चुनी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय और उदाहरण दिया जा रहा है।

रचनायें–

'जिन पंचत्रिशत् वाणी गुण नामार्थ गर्भित स्तव' (६६ कड़ी सं० १८५७) 'सुर सुंदरी रास' वृहद् रचना है, यह चार खण्डो में १५८४ कड़ी की रचना ५२ ढालों में लयवद्ध है। इसकी रचना सं० १८५७ श्रावण शुक्ल ४ गुरुवार को राजनगर (अहमदाबाद) में पूर्ण हुई थी। इसको प्रारंभिक पंक्तियाँ इस प्रकार है—

सकल गुणागर पास जी, शंखेश्वर अभिराम,
मनवंछित सुख संपजे, नित्य समरतां नाम।

सरस्वती से प्रार्थना करता हुआ कवि कहता है—

सुर सुंदरी शीयले सती, सतीयां मां सुप्रकाश;
तास रास रचता थका, मुज मुख करज्यो वास।

इसमें हीरविजय से लेकर शुभविजय तक के गुरुओं की वंदना की गई है।

रचनाकाल— मुनि सर हस्ति शशि संवत्सर, नमि संखेसर पासो जी,
श्रावण सुदि गुरुवार चतुर्थी, राजनगर चौमासों जी।

अंत— "सुर सुंदरी नो रास रसाल, श्रोता ने घर मंगलमाल,
तिणे कारण सुणी आदर करी, वीर कहे जयलीला वरी।"

इस रचना को उमेद राम हर गोविंद दास ने अहमदाबाद में छपवाया है। अष्टप्रकारी पूजा (सं० १८५८ भाद्र पद शुक्ल १२, गुरुवार, राजनगर)

रचनाकाल— संवत अठार अट्ठावन वरसे, भाद्रपद सित पक्ष भलो,
द्वादशी दिन गुरुवार मनोहर, अे अभ्यास भयो सफलो।

यह पूजा 'विविध पूजा संग्रह' के पृष्ठ ५१-६७ पर प्रकाशित है। इसके अलावा 'जैन रत्न संग्रह' और अन्यत्र भी छपी है। 'नेमिनाथ विवाह लो अथवा नेमिनाथ विवाह गरबो' (२२ ढाल, १५१ कड़ी सं० १८६० पौष कृष्ण ८, अहमदाबाद)

आदि— सरसति चरण सरोज रमि रे श्री शंखेश्वर पास नमीरे,
नेम विवाह ते रंगे गास्युं, जिमि नेमिनाथ पूर्वे प्रकास्युं।

रचनाकाल— नभ भोजन गज चंद्र ने वर्षे लाल,
पोस तणी वदि आठिम दिवसे लाल।

शुभवेली—

इसमें कवि ने अपने गुरु शुभविजय का गुणानुवाद किया है। यह बेलि भी प्रकाशित है।

स्थूलिभद्र नी शियल बेल (१८ ढाल, १९१ कड़ी, सं० १८६२ पौष शुक्ल १२ गुरुवार राजनगर)

रचनाकाल— अठार सै बासठे शुदि पौष, बारस गुरुवारे ध्याई रे।
राजनगर मुनिवर निर्दोष, शियल बेली प्रेमे गाई रे।

इसमें स्थूलिभद्र और कोशा की सरस कथा के माध्यम से स्थूलिभद्र के दृढ़ साधना की प्रशस्ति है। यह रचना प्राचीन संज्झाय तथा पद संग्रह में भी प्रकाशित है।

दशार्णभद्र की संज्झाय (५ ढाल, सं० १८६३ मेरुतेरस, गुरुवार, लीबड़ी); रचना के नमूने के लिए चार अंतिम पंक्तियाँ प्रस्तुत है-इसमें रचनाकाल भी दिया है—

गुरु खिमाविजय जस शुभविजय तस मोहना वारु जी,
बह्नि रस दंती तिम हिमहंती वत्सर तारु जी
मेरु तेरस वासर साधु सुहंकर मोहना वारु जी,
गुरुवारे ध्याया में मुनिराया नाम थी तारु जी।

यह रचना जिनगुण स्तवनावली सत्यविजय ग्रंथमाला नं० ८ में प्रकाशित है। कोणिकराजा भक्तिगर्भित वीर स्तव अथवा कोणिकनुं सामैयुं (११ ढाल, २१२ कड़ी, सं० १८३४ देव दिवाली, कार्तिक शुक्ल ११-१५ लीबंडी) कोणिक विंबसार अथवा श्रेणिक का पुत्र था। इसमें कोणिक का इतिहास नाम मात्र को भी नही है; केवल महावीर स्तवन है।

त्रिक चतुर्मास देववंदन विधि अथवा चौमासी देववंदन विधि सहित (सं० १८६५? (६२), आषाढ़ शुक्ल प्रतिपद।

यह देववंदन माला और जिनेन्द्र भक्ति प्रकाश में प्रकाशित है। अक्षय निधि तप स्तवन (५ ढाल सं० १८७१ श्रावण कृष्ण ५ सूरत चौमासा) यह रचना भी जिनेन्द्र भक्ति प्रकाश, जैन प्राचीन स्तवन संग्रह तथा अन्यत्र से प्रकाशित है।

आठ कर्म की चौसठ प्रकारी पूजा (सं० १८७४ अक्षय तृतीया राजनगर)

आदि— श्री शंखेश्वर साहिबो समरी, समरी सरसति माय,
श्री शुभविजय सुगुर नमी, कहूं तपफल सुखदाय।

रचनाकाल— हम राजते जग गाजते, दिन अखय तृतीया आज थै,
शुभवीर विक्रम वेद मुनि वसु चंद्र वर्ष विराजतै।

यह रचना विविध पूजा संग्रह, विधि विधानसाथे स्नात्रादि विविध पूजा आदि संग्रहो में प्रकाशित है।

'पिस्तालीस आगम गर्भित अष्ट प्रकारी पूजा अथवा ४५ आगम नी पूजा' (सं० १८८१ मागसर शुक्ल ११ मौन एकादशी, राजनगर) (शत्रुजंय महिमा गर्भित) नवाणुं प्रकारी पूजा (सं० १८८४ चैत्र शुक्ल १५, पालीताणा)

प्रारंभ— श्री संखेश्वर दास जी प्रणमी शुभ गुरु पाय,
विमलाचल गुण गायसुं समरी सारद माय।

रचनाकाल— विजयदेवेन्द्र सूरीश्वर राज्ये, पूजा अधिकार रचायो रे,
पूजा नवाणी प्रकारी रचायो, गायो में गिरिरायो रे।
विधि योगे तप पूरण प्रगटे तब हठवाद हठावो रे,

वेद वसु गज चंद्र (१८८४) संवत्सर,
चैत्री पूनम दिन ध्यायो रे,
पंडित वीर विजय प्रभु ध्याने, आतम ताप ठरायो रे।

यह रचना विविध पूजा संग्रह पृ० ८४-१०० पर और जैन रत्न संग्रह तथा अन्यत्र भी प्रकाशित है।

बारव्रत की पूजा (सं० १८८६ दीपावली, राजनगर)

आदि— सुखकर शंखेश्वर प्रभो, प्रणमी शुभ गुरु पाय,
शासन नायक गायसुं, वर्द्धमान जिनराय।

अंत— कष्ट निवारे वंछित सारे, मधुरे कंठ मल्हायों,
राजनगर मां पूजा भणावी, घर-घर उत्सव थायो रे।

रचनाकाल— मुनि वसुनाग शशि संवत्सर, दीवाली दिन भायो,
पंडित वीर विजय प्रभु ध्याने, जग जस पडह बजायो रे।

यह रचना भी विविध पूजा संग्रह में प्रकाशित है।

भायखला (मुंबापुरीस्थ) ऋषभ चैत्य स्तवन अथवा आदि जिन स्तवन (८१ कड़ी, सं० १८८८ आषाढ़ शुक्ल १५)

आदि— सुखकर साहेब रे पामी, प्रथम राय वनिता नो स्वामी,
कंचन वरणी रे काया, लागी मनमोहन साथे माया।

सेठ अमीचंद साकरचंद के सुपुत्र मोतीचंद के आग्रह पर यह रचना वीर विजय ने की थी। इसमें मूर्ति के पधरावना उत्सव का वर्णन है। इस रचना में विजयसिंह सूरि से शुभविजय तक की वंदना है। यह रचना विजयदेवेन्द्र के सूरि काल में हुई थी। रचनाकाल निम्नलिखित पंक्तियों में दिया गया है—

बसु नाग बसु शशि वरसे जी, आसाढ़ी पूनिम दिवसे जी,
मे रचीओ अे गुण दीवोजी, सेठ मोतीशा चिरजीवो जी।
गुण गातां बहु फल पावे जी, शुभवीर वचन रस गावे जी।

पार्श्वजिन—पंच कल्याणक (गर्भित अष्ट) पूजा (सं० १८८९, अक्षय तृतीया)

आदि— श्री संखेश्वर साहिबो, सुरतरु सम अवदात,
पुरिसादाणी पास जी, षट्‌दर्शन विख्यात।

रचनाकाल— अठार से नेव्यासी अक्षय त्रीज, अक्षय पुण्य उपायो,

पंडित वीर विजय पद्मावती, वांछित दाय सवायो रे।

यह विविध पूजा संग्रह, विधि विधान साथे स्नात्रादि पूजा संग्रह और अन्यत्र से प्रकाशित है।

(सिद्धाचल अथवा शत्रुंजय) अंजन शलाका स्तवन अथवा मोतीशा नां ढालिया (७ ढाल, सं० १८९३) यह सूर्यपुर रास माला में प्रकाशित है।

धम्मिल कुमार रास (७२ ढाल, २४८८ कड़ी, सं० १८९६ श्रावण शुक्ल ३, राजनगर) का प्रारंभ इस प्रकार हुआ है—

सकल शास्त्र महोदधि पारंग, शम रसैक सुधारस सागरं,
सुखकरं शुभ वैजय नायकं, मनसिमंत्र मिमं प्रज्याध्यहम्।
कमल भूतनयामभिनम्यतां, कवि जनेष्ट मनोरथदायिनी
रसिक प्राकृत बंध कथामिंमा, विरचामि व्रतोदय हेतवे।

यह कथा प्रसिद्ध ग्रंथ वसुदेव हिण्डी के आधार पर रचित है। रचनाकाल इस प्रकार है—

संवत अठासे छन्नु वरसें, श्रावण उजली त्रीसे रे,
आ भव मां पचखाण तणुं फल, वरणवी ज्यो मन रीझे रे।

इस रचना को भीमसी माणेक नै प्रकाशित की है। हित सिखामण स्वाध्याय सं० १८९८ की रचना है। इसमें कुछ उपदेश है।

महावीर ना २७ भव नुं स्तवन (सं० १९०१ श्रावण पूर्णिमा)

उगणिस अंके वरस छे के पूर्णिमा श्रावण वरो,
में थुण्यो लायक विश्व नायक वर्द्धमान जिणेसरो।

यह स्तवन देव वंदन माला तथा नव स्मरण में प्रकाशित हैं। चंद्रशेखर रास (५७ ढाल सं० १९०२ विजय दशमी, राजनगर)। ये १९ वीं और बीसवी शती में रचनारत रहे। इनकी १९ वीं शती की कृतियों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। बीसवीं शती की रचनाओं का नामोल्लेख किया जा रहा है। उनका विवरण २० वीं शती में यथा स्थान दिया जा सकेगा। इनकी प्राय: सभी रचनाएं प्रकाशित हैं। २० वीं शती में लिखित रचनायें—

(१) हठीसिंह नी अंजन शलाका ढालिया अथवा हठीसिंह ना संघनुं वर्णन (सं० १९०३) यह सूर्यपुर रासमाला में प्रकाशित है।

सिद्धाचल गिरनार संघ स्तवन पांच ढाल सन् १९०५ माह शुल्क १५ बुद्धवार; इनकी अधिकांश कृतियाँ पूजा, स्तवन, चैत्र वंदन तथा संघ यात्रादि पर आधारित हैं जैसे संघवण हरकुंवर सिद्ध क्षेत्र स्तवन (१९०८) इत्यादि। इनके अलावा आपने नेमिनाथ राजिमती बारमास, हित शिक्षा छत्रीसी, छप्पन दिक कुमारी रास और गद्य में प्रश्नोत्तर चिंतामणि तथा संज्झाय, स्तवन, हुण्डी और अन्य विधाओं में नाना छोटी-मोटी रचनायें की है। सबका वर्णन करने के लिए एक अलग पुस्तक की अपेक्षा होगी। यहाँ इस संक्षिप्त परिचय द्वारा यह बतलाने का प्रयत्न किया गया है कि वीर विजय १९वीं २०वीं शती के महान जैन लेखकों में महत्त्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। इन्होंने नाना विषयों पर विविध विधाओं में सरस, शुष्क; मनोरंजक और उपदेश परक सभी तरह की सकैड़ो रचनायें की है।[३८४]

शिवचंद । –

इनका पूर्वनाम शंभुराम था, इन्होंने संस्कृत, हिन्दी में अनेक रचनायें की है इनकी गुरु परंपरा निम्नवत् है-

ये खरतरगच्छीय क्षेमकीर्ति शाखा के विद्वान् रुपचंद > पुण्यशील > समयसुंदर के शिष्य थे। इन्होंने नंदीश्वर पूजा, वीश स्थानक पूजा (सं० १८७१, भाद्र कृष्ण १०, अजीमगंज) और २१ प्रकारी पूजा (अेक विंशति विधान जिनेन्द्र पूजा) सं० १८७८ माघ शुक्ल ५ रविवार) आदि पूजा संबंधी पुस्तकें लिखी। तीसरी पूजा का उद्धरण आगे दिया जा रहा है-

आदि— मंगल हरिचंदन रुचिर, नंदन विपिन उदार,
बामानंदन पद पदम, बंदन करि जयकार।

रचनाकाल— वरस नाग रिषी बसु धरणी मित, सकल संघ सुख पावै,
माघ मास सित पंचमी दिनकर, वासर सहु दिन रावै।

इसमें खरतरपति जिनचंद, जिनहर्ष के अनंतर क्षेम कीर्ति शाखा के रुपचंद पुण्यशील और समयसुंदर गणि का वंदन किया गया है।

अंत— समरण करि जिन गुरु को वलि, तसु चरण कमल सुपसावै;
पूजा रची पाठक शिव चंदै परमानंद बधावै।

ऋषि मंडल पूजा अथवा चतुर्विंशति जिन पूजा (सं० १८७९ बीजा आसो द्वितीय आषाढ़ शुक्ल पंचमी, शनिवार, जयनगर) का प्रारंभ देखिए—

प्रणमी श्री पारस विमल, चरण कमल सुखदाय,
ऋषि मंडल पूजन रचूं, वर विधियुत चित लाय।

रचनाकाल— बरस नंद मुनि नाग धरणि मिता, द्वितीयाश्विन मन भाया,
धवल पक्ष पंचमि तिथि शनि युत, पुर जय नगर सुहाया।

अंत— सलिल चंदन पुष्प फल ब्रजै सुविलाक्षत दीप सुधूप कै,
विविध नव्य मधु प्रवरान्नकै जिनममीभिरहं वसुभिर्यजे।[३८५]

इस रचना को 'चौबीसी तथा बीशी संग्रह' में सा० प्रेमचंद केवलदास ने सं० १९३५, सन् १८७९ में पृ० ५७३-५८८ पर छपवाया।

आपकी एक गद्य रचना 'मत खंडन निवाद' सं० १८४१ का उल्लेख कामता प्रसाद जैन ने किया है किन्तु गद्य का उद्धरण नहीं दिया है।[३८६] इन्होंने समेतशिखर तथा सीमंधर स्तवन आदि मरुगुर्जर रचनाओं के अलावा संस्कृत में पद्युमलीला प्रकाश और भावना प्रकाश आदि लिखा है।[३८७]

शिवचंद ।। –

इन्होंने चारण शैली में मूलराज रावल की प्रशंसा में 'समुद्रबद्ध काव्य वचनिका' सं० १८५१ जैसलमेर में लिखा। इसके पद्य और गद्य का उदाहरण आगे दिया जा रहा है-

दोहा— "शुभाकार कौशिक त्रिदिव, अंतरिच्छ दिनकार,
महाराज इन घर तपौ, मूलराज छत्रधार।"

गद्य का नमूना—

"अरुण अर्थ तेस जैसे शुभाकार कहि है भलो हे आकार जिनको ऐसे, कौशिक कहिये इन्द्र सो, त्रिदिव कहिये स्वर्ग में प्रतपै। पुन: दिनकर अंतरिच्छ कहता जितने ताईं सूर्य आकाश में तपै, महाराज कहतां इन रीतै छत्र के धरनहार महाराज श्री मूलराज। घर तपो, कहिये पृथ्वी विषै प्रतयौ।" यह गद्य काफी अस्पष्ट है किन्तु प्राचीन है।[३८८] इन्होंने संस्कृत में विंशति पद प्रकाश और मौन एकादशी व्याख्यान आदि लिखा है। नाहटा ने 'मूलराज गुण वर्णन' नामक रचना का रचनाकाल सं० १८६१ बताया है और उसे शिवचंद्र की प्रथम रचना बताया है। लगता है कि मूलराज वर्णन और समुद्र वद्ध काव्य वचनिका परस्पर संवद्ध रचनायें है। दोनों नाम एक ही रचना का हो सकता है।

१. शिवजी लाल–

इनका वंश परिचय और गुरु परंपरा आदि इतिवृत्त अज्ञात है। इनकी तीन गद्य रचनायें उपलब्ध हैं- दर्शन सार भाषा, चर्चासार भाषा और प्रतिष्ठा सार भाषा। दर्शन सार भाषा की रचना जयपुर में सं० १९२३ में पूर्ण हुई थी। विक्रम की बीसवी शती में लिखित यह रचना पुरानी हिन्दी में लिखित है। इनके गद्य का नमूना इसलिए दिया

जा रहा हैं क्योंकि सन् १८६६ तक हिन्दी गद्य नये साँचे में नही ढली थी। कालचक्र नामक रचना में भारतेन्दु ने हिन्दी गद्य का नया रुप १८७३ में प्रस्तुत किया था। इसलिए भारतेन्दु पूर्व के हिन्दी गद्य के नमूने के रूप इसका ऐतिहासिक महत्त्व है—

> साँच कहता जीव के ऊपरि लोक दुखो व तुषों। साँच कहने वाला तो कहे ही कहा जग का भय करि राजदण्ड छोड़ि देता है वा जूंवा का भय करि राज मनुष्य कपड़ा पटकि देय है। तैसे निंदने वाले निंदा स्तुति करने वाले स्तुति करो, सांचा बोला तो सांच ही कहे।[३८९]

यह गद्य हिन्दी गद्य पुस्तकों विशेषतया टीका ग्रंथो में प्राप्त गद्य से अधिक सुबोध है, टीका ग्रंथों की भाषा तो ऐसी लद्धड़ है कि मूल भले समझ में आ जाय पर टीका समझ में ही नहीं आती।

शिवलाल–

ये विनयचंद के गुरु भाई पन्नालाल के शिष्य थे। इन दोनों गुरु भाइयों के गुरु अनोपचंद थे। विनयचंद भी अच्छे कवि थे। उनका वर्णन यथा स्थान किया जा चुका हैं। शिवलाल ने नागसी चौढालिया सं० १८७७ और सीता बनवास सं० १८८२ बीकानेर, की रचना की।[३९०] मो०द० देसाई ने सीता बनवास का नाम राम लक्ष्मण सीता बनवास चौपाई (सं० १८८२ माघ कृष्ण १, बीकानेर) बताया हैं जै०गु०क० के प्रथम संस्करण में रचनाकाल १८९३ बताया गया था; वह प्रति का लेखन काल होगा। नवीन संस्करण के संपादक ने उसे सुधार कर रचनाकाल कवि के अर्न्तसाक्ष्य के आधार पर सं० १८८२ को ठीक बताया है। अगरचंद नाहटा और जै०गु०क० नवीन संस्करण में सं० १८८२ को ही सही रचनाकाल माना गया है।[३९१]

शोभाचंद–

इनकी रचना 'शुकराज चौ०' सं० १८८२ का केवल नामोल्लेख मो०द० देसाई ने किया है किन्तु इस रचना का विवरण-उद्धरण नहीं दिया है।[३९२]

श्रीलाल–

आपने 'बंध उदय सत्ता चौ०' की रचना सं० १८८१ में की,[३९३] अन्य विवरण अनुपलब्ध हैं।

संपतराय–

इन्होंने सं० १८५४ में 'ज्ञान सूर्योदय नाटक' (छंद वद्ध)[३९४] की रचना की। गद्य विकास के प्रारंभिक काल में नाटक रचना का महत्त्व ऐतिहासिक है, परंतु खेद है

कि नाटक का विवरण उद्धरण न मिलने से यह कहना निराधार है कि नाटक के तत्त्वों का इस रचना में किस सीमा तक निर्वाह हो पाया है।

सत्यरत्न–

आपकी दो रचनाओं का नामोल्लेख मात्र अगरचंद नाहटा ने किया है समेतशिखर रास सं० १८८० और देवराज वच्छराज चौ०; दूसरी रचना का केवल प्रारंभिक पत्र उपलब्ध है।[३९५] मो०द० देसाई ने केवल एक रचना समतेशिखर रास[३९६] (सं० १८८० भाद्र शुक्ल ५) का नामोल्लेख किया है। दोनों विद्वानों ने किसी रचना का उद्धरण आदि नही दिया है।

सदानंद–

आप भूमिग्राम (भोगाँव) जिला मैनपुरी के निवासी श्री भवानीदास के पुत्र थे। इन्होंने सं० १८८७ में तोताराम जी के लिए 'कम्पिला की रथयात्रा'[३९७] का पद्यवद्ध वर्णन किया है। कविता सामान्य कोटि की है।

सबराज–

ये लोकागच्छीय श्रावक थे। इनके पिता का नाम हरषा था। इन्होंने 'मूलीबाई ना बारमास' (सं० १८९२ मागसर शुक्ल १३, गुरुवार) सायला में लिखा। उस समय वहाँ राजा वख्तसिंह का शासन था। इस बारमासे से मूलीबाई के संबंध में ज्ञात होता है कि वे दशा श्री माली वणिक रतनशा की पत्नी अमृतबाई की कुक्षि से पैदा हुई थीं और उनका विवाह नान जी कोठारी के साथ हुआ था। उनको गृहस्थ जीवन की निरर्थकता का बोध हुआ और उन्होंने सं० १८६५ में दीक्षा ली; जैन धर्मानुकूल जीवनयापन करते हुए सं० १८९० श्रावण शुक्ल १४ को संथारा द्वारा शरीर त्याग किया।

बारमास की प्रारंभिक पंक्तियाँ निम्नांकित हैं—

हुं तो नमुं सिद्ध भगवंत, मुकी मन आमलो रे,
गुण गाऊं मूलीबाई सती, सहु को सांभलो रे।

रचनाकाल इन पंक्तियों में दिया गया है—

संवत अठार बाणुअे जोड़या मागसीर मास रे,
तीथि बेरस ने गुरुवार, पख अजवास रे।
मूलीबाई तणो महिमा, चउदश गाजे रे,
भणे हरषा सुत सबराज, सायला मां विराजे रे।[३९८]

सबलदास–

आप आसकरण के शिष्य और पट्टधर थे। पोकरण के लूणियाँ आणंद राज की धर्म पत्नी सुंदरबाई की कुक्षि से सं० १८२८ भाद्र में इनका जन्म हुआ था। जोधपुर की यात्रा के समय इनकी आसकरण जी से भेंट हुई। बारह वर्ष की वय में उनसे दीक्षा प्राप्त किया और सं० १८७२ में आसकरण जी के दिवंगत होने पर जोधपुर में उनके पट्ट पर आसीन हुए। इनकी रचनाओं का विवरण आगे प्रस्तुत किया जा रहा है-

शील संञ्झाय १८८७ नागौर (यह रचना जिनवाणी पत्रिका के वर्ष १६ अंक ११ में प्रकाशित है); अन्ना चौढालिया (६२ ढाल, सं० १८९० नागौर); वल्लभचंद्र चौ० (सं० १८९०, बीशलपुर) त्रिलोक सुंदरी ढाल (सं० १८९२)।[३९९]

इनकी कुछ अन्य रचनाओं का भी उल्लेख मिलता है यथा, आसकरण जी महाराज के गुण, गुरु गुण स्तवन, कनकरथ राजा का चरित्र, जुग मंदिर स्वामी की संञ्झाय, विमलनाथ का स्तवन, खंदक जी की लावणी, तामली तापस की चौ०,शंख पोरबली को चरित, साधू कर्त्तव्य की ढाल इत्यादि। राजस्थान का जैन साहित्य में इनका जो उल्लेख मिलता है वह कुछ भिन्न है। उसमें कहा गया है कि सबल दास ने १४ वर्ष (न कि १२ वर्ष) में सं० १८४२ में दीक्षा ली। इन्होंने दीक्षा आसकरण से नहीं बल्कि रायचंद से ली थी और इनका स्वर्गवास सं० १९०३ में हुआ था।[४००]

इनकी कविता के नमूने के लिए त्रिलोक सुंदरी ढाल अथवा चौपाई (सं० १८९२, फलोधी) का आदि और अंत प्रस्तुत है-

आदि— विहरमान विसे नमुं, जयवंता जगदीस;
अतिसेवंत अनंत जिन, तारक विस्वा बीस।

अंत— शील उपदेश थी विस्तारो, पूज सबलदास जी चित लायो रे, लो।
ऊछो अधिको आयो हुवे तो मीछामि दुक्कड़ गायो रे।

रचनाकाल— अष्टादश सो बाणवे बरसे, कीयो फलोधी चोमासी रे,
सील री महिमा सुणे सुणावे, जीण घर लीला विलासो रे। लो।[४०१]

इसमें सबलदास जी का जिस आदर के साथ स्मरण किया गया है उससे वे ही इनके गुरु प्रतीत होते है न कि आचार्य रायचंद।

सबलसिंह–

ये खतरगच्छीय श्रावक थे। इन्होंने सं० १८६१ अक्षय तृतीया को मकसूदाबाद में 'बीसी' की रचना की।[४०२]

सरसुति (सुरसति)–

आपकी रचना हैं 'मधुकर कलानिधि' (सं० १८२२ चैत्र सुदी १), रचनाकाल इन पंक्तियों में है—

संवत अठारह सै बावीस पहल दिन चैत सुदी;
शुक्रवार दिन ग्रंथ उल्हास्यो सही।

यह रचना महाराना माधव के विनोदार्थ लिखी गई थी, यथा—

श्री महाराना माधवेश मन कै विनोद हेत,
सुरसति कीनी यह दूध ज्यों जमें दही।[४०३]

इस में शृंगार रस का वर्णन है, भाषा सुबोध हिन्दी है।

सरुपाबाई–

ये लोका० पूज्य श्री श्रीमल की भक्त थी। संभवतः उनकी शिष्या भी हो। इन्होंने पूज्य श्री श्रीमल की सज्झाय नामक रचना उनकी प्रशस्ति मे लिखी है।[४०४] यह रचना जैन ऐतिहासिक काव्य संग्रह के पृ० १५६-१५८ पर प्रकाशित है।

सांवत (सावंतराम) ऋषि–

श्री अगरचंद नाहटा ने इन्हें विनयचंद का शिष्य बताया है और इनकी चार रचनाओं-गुणमाला चौ० सं० १८८५ दिल्ली, सती विवरण सं० १९०७ लश्कर, मदनसेन चित्रसेन चौढालिया १८७०, मदनसेन चौ० १८९८ बीकानेर का नामोल्लेख किया है।[४०५] श्री मो०द० देसाई ने इन्हें बखताकरचंद का शिष्य बताया है और उनकी गुरुपरंपरा मदनसेन चौ० का उद्धरण देकर इस प्रकार बताया है-

'ताराचंद, अनोपचंद, विनयचंद, बखताकरचंद का शिष्य' संबंधित पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

स्वामी जी ऋष मुनीराज आचारज गुण उजला,
सव---नित ताराचंद जी निरमला।
तत शिष्य आज्ञाकर श्री श्री अनोपचंद जी,
तत शिष्य प्रबल प्रधान विनयचंद अमंद जी,
तत शिष्य नो बहु राग श्री बखताकरचंद जी,
तत शिष्य सावंत राम पांमे अती आनंद जी।

मदनसेन चौ० की रचना सं० १८९८ फाल्गुन शुक्ल ७, बीकानेर में हुई

थी। रचनाकाल इन पंक्तियों के आधार पर दिया गया है—

> संमत अठारे से जांण अट्ठाणु के मास में
> फागुन सुद शुभ तिथ सातम बीकानेर में,
> ग्रंथ रच्यो सुखदाय सद्गुरु ना परसाद थी;
> वलभ लगसी अेह जो गासे कंठ राग थी।

इसका आदि निम्नवत है-

> प्रथम नमी भगवंत ने गणधर गोतम सांम,
> गुरु चरण नित ससेता, बाधे अधिकी मांम।
> मदनसेन कुमार भलो पुन्ये लीला भोग,
> किम पामी लच्छी तणि तेहनो सहु संजोग।[४०६]

देसाई ने सती विवरण चौढ़ालिया (सं० १९०७ चैत्र शुक्ल ७, लश्कर) का नामोल्लेख मात्र किया है

साहिबराम पाटनी–

इनकी रचना 'तत्त्वार्थ सूत्र भाषा' (हिन्दी पद्य, जैन सिद्धांत सं० १८१८) से इनका वंश परिचय इस प्रकार है-ये बूँदी निवासी वैश्य थे और गोत्र पाटनी था। ये जैन धर्मावलंबी थे और वाणिज्य व्यापार करते थे, यथा—

> है अजाना जिन आश्रमी वर्ण वनिक व्यवहार,
> गोत पाटनी वंश गिरि है बूंदी आगार।

रचनाकाल इन पंक्तियों में दिया गया है—

> वसुदश शत परि दसरु वसु माघ विंशति गुणग्राम,
> ग्रंथ रच्यो गुरुजन कृपा सेवक साहिब राम।

इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ निम्नांकित हैं—

> सुमरण करि गुरुदेव द्वादशांग वाणी प्रणमि,
> सुरग मुक्ति मगमेव, सूत्र शब्द भाषा कही।
> पूर्वकृत मुनि राय, लिखी विविध विधि वचनिका,
> तिनहुं अर्थ समुदाय लिख्यौ, अंत न लख्यो परै।[४०७]

सुजाण–

आप लोकागच्छ के ऋषि भीम के शिष्य थे। रचना का नाम है 'शियल संज्झाय

(३२ कड़ी, सं० १८३२ चौमासुं, सुरत); इसका प्रारंभ इस प्रकार हुआ है—

शीयल रतन जतने करी राख्यो, बरजे विषय विकार जी,
शीलवंत अविचल पद पामे, विषय सले संसार जी।

रचनाकाल— संवत अठार ने बत्रीस वर्षे, सूरत बिंदिर चौमास जी,
स्थिवर भीम सुपसाय थी विनवे, कहे स्थिवर सुजाण जी।[४०८]

इसके नाम से ही जैसा स्पष्ट है, यह रचना शील का महत्त्व प्रतिपादित करती है।

सुजानसागर–

ये तपागच्छीय चरित्रसागर > सुंदरसागर > मेघसागर > श्यामसागर के शिष्य थे। इन्होंने ढालमंजरी अथवा राम रास अथवा ढालसागर (६ खण्ड, सं० १८२२ मागसर, शुक्ल १२, रविवार, उदयपुर) की रचना की जिसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ निम्नवत हैं—

मंगल सहजानंद सुख, चिदानंद निज धाम,
अहनिशि इकता तेहनी, करण हरण दुख ग्राम।
नमिअे आदि जिनेसरु, मिथ्या तिमिर दिनेश,
X X X X X X
जिनमुख कमल निवासिनी, समरुं सरसति देवि,
मिथ्या तिमिर विनास करि, ज्ञानकला प्रगटेवि।
X X X X X X X
कुण-कुण नृप इण वंश में, करि-करि उत्तम काज,
तरि संसार पयोनिधि, बैठे धर्म जिहाज।
अेहवा वंश विशुद्ध नृप, तिण की कथा विशाल,
कहण थयो षट् खंड करि, मोहन रास रसाल।

रचना के अंतिम अंश में पहले लिखी गई गुरु परंपरा कवि ने बताई है।

रचनाकाल— कर्यो ग्रंथ आग्रह करी धर्म ध्यान मनिधारी,
पद अर्थादिक पेखिने, सहु लीज्यो रे वर सुकवि सभारि।
शाक अठारा सय लही, विक्रम थी बावीस,
शित मृगसिर नी वरसै, आणंद योगे रे रविवार जगीस।

कलश— रघुवंश गायो सुजस पायो परमतत्त्व प्रकाशणो,

दुष दोष पूरो गयो दूरो, विमल ज्ञान विकाशणो।
जगि लील जागे ऋद्धि रागे, अमर पदवी आदरे,
रत्नत्रयी सु सुजान सागर, मुक्ति रमणी ते वरे।

चौपाई— खंड मिश्र आस्वादित खीर, श्रोता पामे पुष्ट शरीर,
पूरण खंड षष्टम परसाद, महिमा दृढ़ आगम मर्याद।

आपकी दूसरी रचना का नाम है "अध्यात्मनयेन चतुर्विंशति जिन स्तव;

आदि— समरस साहिब आदि जिनेंदा मेटण है भवफंदा रे,
शुद्ध नयातम अमृत कंदा, पवर प्रताप दिणेंदा रे।

इसकी अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

काची धात कलंक ज्युं प्रभु, निपजे गुण परकास जी,
गुण सहु जाणि सुजान को प्रभु, सफल फली सहु आस जी।
प्यारो लागे जी साहिबो।[४०९]

यह रचना 'जैन गुर्जर साहित्य रत्नो' भाग २ में प्रकाशित है।

सुदामो (विप्र)

जैनेतर कवि है, किन्तु मरु गुर्जर भाषा में जैन साधु शैली की रचना होने से इसको जैन साहित्य में लिया गया है। रचना का शीर्षक है; कृष्ण राधा नो रास (२४ कड़ी)। इसकी भाषा-शैली का उदाहरण देने के लिए कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

आज महापर्व भली करी हर जी रमसुं रे होली,
तेवतेवड़ी जांता मली गोरी नी टोली।
राधा जी रमवा संचरा सणगार सर्व सारी,
हंसा गमनी हर भणी चालंती ठमके।
X X X X X X
रयने ऊगो रवि छोइओ अंबर थयो रातो,
जमना जी ने कांठडे रास करीने मातो।
कृष्ण जी केरे कामनी राधा रमति राखो,
जेरे जोइओ ते मागजो, भांम थी मन भाषों।
गाई सीष ने साभंले, राधा हरनो रास,
विप्र सुदामो वर्णवे, तिने बइकुंठ बास।[४१०]

सुमतिप्रभ सूरि (सुंदर)–

ये बड़गच्छ के जिनप्रभसूरि > सुखप्रभ सूरि के शिष्य थे। रचना-चौबीसी (२५ ढाल, सं० १८२१ कार्तिक-शुक्ल ५, अहमदाबाद) के प्रारंभ में लिखा है—

अथ सुंदर कृत चौबीसी लिख्यते;।

इससे ज्ञात होता है कि सुंदर इनका उपनाम था। इसके प्रारंभ की पंक्तियाँ निम्नवत हैं—

आदीसर अवधारिअे दास तणी अरदास ऋषभ जी,
आस निरास न कीजिए, लीजिये जग जसवास ऋषभ जी।
X X X X X X X X
जाणी सेवक जगधणी, आपो अविचल वास री,
तरण तारण प्रभु तारीये, दाखे सुंदर दास री।

अंत— ढाल २५ वीं 'आदर जीत क्षमा गुण आदर' यह देशी,
अेहवा रे जिन चउवीसे नमतां, हुवे कोड कल्याण जी,
सय सगलाई भाजी जावै, अरिहंत मांनी आण जी।

रचनास्थान— राजनगर चौमास रहीने, अे मै कीधी जोड जी;
कवियण ने हुं अरज करुं छुं, मत काढ़ीअे खोड जी।

रचनाकाल— संवत अठार इकबीसा मांहे, उत्तम काती मास जी,
सोभाग्य पांचम परब तणो दिन, गाया गुण उल्लास जी।

इसमें कवि ने पूर्व लिखित गुरु परंपरा स्वयं बताई है। इसकी अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

तास पसाय सुमतप्रभ सूरे, गाया जिन चौबीस जी,
भणतां गुणतां सुणतां भवि जन ने, होवे शीयल जगीस जी।[४०११]

यह रचना जैन गुर्जर साहित्य रत्नो भाग २ (पाँच स्तवन में) प्रकाशित है। कवि ने इसमें सुंदर और सुमतिप्रभ दोनों नाम दिया है इससे स्पष्ट है कि सुमतिप्रभ और सुंदर एक ही है।

सुमतिसागर सूरि शिष्य–

इनकी एक रचना का उल्लेख मिला है 'चरण करण छत्रीसी' (५४ कड़ी);

इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ निम्नवत् है—

सुपास जिनवर करुं प्रणाम, गुण छत्रीसइ बोलुं नाम;
मन वच कायाइ करी, आगम वाणी हियइडइ धरी।

अंत— आंणी राखइं जिनतणी संजम खप्प अपार,
कर जोड़ी सही नित्त नमइ, तेउ तरइ भवपार।
श्री सुमतिसागर सूरीसर नमु, मानु अरिहंत-आण;
अधिकु-ऊछऊ जो हुई, ते जोयो सहु जांण।[४१२]

सुरेन्द्र कीर्ति-

दिगंबर संप्रदाय के आंबेरी गच्छ के भट्टारक थे; इन्होंने संस्कृत में 'समेतगिरि स्तवन' (३३२ श्लोक) की रचना की। मरु गुर्जर भाषा में इनकी कई रचनायें उपलब्ध हैं। इन्होंने अपनी मूल संस्कृत रचना समेतगिरि स्तवन का स्वयं मरु गुर्जर (भाषा) में भाषांतरण किया था। इसका विवरण इस प्रकार है—

''समेत शिखर जी का स्तोत्र की भाषा (हिन्दी, ३६ कड़ी सं० १८३६ फाल्गुन कृष्ण पंचमी, कासिमबाजार)

आदि— प्रथम अजित जिनेश पद चरम पास पदसार,
विचले पुत वंदौ सदा, शिषर सम्मेत मझार।

अंत— भट्टारक अंबेरि कै सुरेन्द्र कीर्ति अभिराम,
संस्कृत भाषा दोउनि के, करता है जसधाम।

रचनाकाल— अठारह सै छत्तीस मै, फागुण पंचमी नील,
भाषा कासमबजार मैं, कीहनी है जु रसील।

आपकी दूसरी रचना है 'विषापहार स्तोत्र भाषा' (४२ कड़ी सं० १८३६ माघ कृष्ण चतुर्दशी, कासिमबाजार); रचना का आदि इस प्रकार है—

श्री जिन ऋषभ मुनीस पद नमि करी सीस नमाय,
विषहारी श्रुति को रचूं, भाषा सब हित लाय।

रचनाकाल— अठार सै छत्तीस मैं, माघ चतुर्दशी नील;
कासमबजार सुथान मैं, भाषा करी रसाल।

तीसरी रचना है- सिद्धप्रिय स्तोत्र नवीन भाषा' (२८ कड़ी, सं० १८३६ महा शुक्ल ४, कासिमबाजार।

आदि— प्रथम जिणेसर आदिपति, वर्द्धमान जिन प्रांत,
ताहि बंदि भाषा करुं, हस्त स्वंभू कांत।

रचनाकाल— अठार सै छत्तीस मझार, माघ चतुर्थी सुकल की सार,
हीर पठन कुं भाषा करी जी, कास्मबाजार में मनहरी जी।

चौथी है- भूपाल चोबीसी स्तोत्र नवीन भाषा' (२९ कड़ी सं० १८३६ माघ १४ कासिमबाजार) इसका प्रारंभ देखिये—

परम धरम जिनराज को, जग में हो जयवंत,
जिन ध्रइ पद मो हिय वसो, वानी वदन विलसंत।

अंत— अठारै से छत्तीस सुसाल, माघ चतुर्दश सुकल सुकाल,
भाषा कीन्हि सब हित लाय, बुधजन बाचो निज हित लाय।[४१३]

इनकी चारो रचनायें सं० १८३६ में कासिमबाजार में रचित है यह इनके आशु रचनाकार होने का प्रमाण हो सकता है किन्तु इनकी दूसरी; तीसरी और चौथी रचना एक ही माह-माघ में लिखी गईं, यह कुछ शंका उत्पन्न करता है।

'अष्टाह्निका पूजा' नामक एक रचना के कर्त्ता भी सुरेन्द्रकीर्ति बताये गये है।[४१४] इसका रचनाकाल सं० १८५१ बताया गया है; स्पष्ट नही हो पाया है कि ये ही सुरेन्द्रकीर्ति हैं या कोई अन्य रचनाकार हैं, यह शोध का विषय है।

सूरत–

इनका इतिवृत्त अज्ञात है; इनकी एक रचना 'वाराखड़ी' का उद्धरण श्री देसाई ने दिया है, उसको प्रस्तुत किया जा रहा है-

आदि— प्रथम नमौ अरिहंत कूं नमौ सिद्ध आचार्य,
उपाध्याय सब साधु कौ, नमौ पंच प्रकार।
भजन करो श्री आदि को अंति नाम महावीर,
तीरथंकर चौबीस कौ, नमौ ध्यान धरि धीर।
X X X X X X
जा बानी के सुनत ही, वढ़त परम आणंद,
भई सुरति कछु कहै न कुं, बारखड़ी के छंद।

अंत— जो-जो दरसै सो सोही भासै तिन सिवपुर पहुँचावै,
सूरति सिद्ध कहै अैसे गुरुजन पुरानन गाये।

इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि कवि जैन धर्म का अनुयायी है किन्तु उद्धरणों से कही भी गुरुपरंपरा या कवि के जीवन वृत्त आदि का संकेत नही मिलता। रचना का विवरण बताते हुए अंतिम दोहे में कवि ने लिखा है कि इस रचना मे चालीस दोहे और ३६ छंद है, यथा—

वारखड़ी हित सुं कही नहिं गुनयन की रीस,
दोहा तो चालीस हैं, छंद कहे छत्तीस।[४१५]

वाराखड़ी अक्षरक्रम से लिखी जाने वाली एक विशेष काव्य विधा है।

सेवाराम (शाह)–

आपका 'धर्मोपदेश संग्रह' प्रसिद्ध है। वह रचना सं० १८५८ में की गई थी किन्तु कुछ भाग सं० १८६१ में लिखा गया। यह ग्रंथ जयपुर स्थित लश्करी देहरा नामक नेमिनाथ के मंदिर में लिखा गया था। उस समय जयपुर में प्रतापसिंह का शासन था। ग्रंथ की अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

लघुसुत सेवाराम यह ग्रंथ रच्यो भविसार,
पढ़ै सुने तिनु पुखि के, उपजत पुन्य अपार।[४१६]

आपकी एक अन्य रचना 'चौबीस तीर्थंकर पूजा' है। यह १८५४ मगसिर वदी ६ को पूर्ण हुई थी। इससे पता चलता है कि ये साह गोत्रीय श्रावक वखतराम के छोटे पुत्र थे। बख्तराम स्वयं अच्छे विद्वान् थे। उन्होंने 'मिथ्यात खंडन' और बुधविलास नामक ग्रंथों की रचना की थी। इनके बड़े भाई जीवनराम थे। उन्होंने भक्ति प्रधान अनेक मार्मिक पद जग जीवन उपनाम से लिखे हैं। संबंधित पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं—

तिन प्रभु को सेवग जु तो वखतराम इह नाम।
साह गोत्र श्रावक सुधी गुण मंडित कवि राम।
तिन मिथ्यात खंडन रच्यो लखि जिनमत के ग्रंथ,
बुधविलास दूजो रच्यो मुक्तिपुरी के पंथ।
तिनको लघु सुत जानियो सेवाराम सुनाम,
लखि पूजन के ग्रंथ बहु रच्यो ग्रंथ अभिराम।
ज्येष्ठ भ्रात मेरो कवि जीवन राम सुजानि,
प्रभु की स्तुति के पद रचे महा भक्ति वर आनि।
तामैं नाम धरयो जु है जगजीवन गुण खानि,
तिनकी पाय सहाय को कियो ग्रंथ यह जानि।

इससे प्रकट होता है कि इनका पूरा परिवार सुशिक्षित और रचनाशील था तथा प्रस्तुत ग्रंथ की रचना में सेवाराम की सहायता उनके भ्राता जीवनराम ने भी की थी।[४१७] श्री कामता प्रसाद जैन ने 'शांतिनाथ पुराण' का लेखक भी इन्हें ही बताया था। किन्तु वह रचना अन्य सेवाराम पाटनी की है न कि सेवाराम साह की; उसका वर्णन आगे किया जा रहा है।

सेवाराम पाटनी–

ये पं० टोडरमल के पंथानुयायी थे। इन्होंने हुंवड़ वंशीय अंबावत की प्रेरणा से 'शांतिनाथ पुराण' की रचना सं० १८३४ श्रावण कृष्ण अष्टमी को देवगढ़ के मल्लिनाथ चैत्यालय में पूर्ण की। उस समय देवगढ़ रियासत के शासक सावंतसिंह थे किन्तु वहाँ अनेक जैन मतावलंबी सुख सुविधा पूर्वक रहते थे। इस ग्रंथ की प्रति जैन सिद्धांत भवन, आरा में सुरक्षित है। टोडरमल की प्रशंसा में कवि ने लिखा है—

देश ढूढाहड़ आदि देस बोधे बहु देस,
रची-रची ग्रंथ कठिन टोडरमल्ल महेश।
ता उपदेश लवांस लहि सेवाराम सयान,
रच्यो ग्रंथ रुचिमान के हर्ष-हर्ष अधिकान।

रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है—

संवत अष्टादश शतक फुनि चौतीस महान,
सावन कृष्ण अष्टमी पूरण कियो पुराण।
अति अपार सुख सो बसे नगर देवगढ़ सार,
श्रावक बसैं महाधनी दान पुण्य मतिधार।[४१८]

इससे विदित होता है कि शांतिनाथ पुराण के रचयिता सेवाराम पाटनी थे न कि सेवाराम साह; जैसा कामता प्रसाद का अनुमान था।

आपकी दूसरी है 'मल्लिनाथ चरित्र भाषा' सं० १८५० भाद्र कृष्ण ५,

आदि— नमः श्री मल्लिनाथाय, कर्ममल विनाशने,
अनंत महिमासाय, जगत्स्वामनिर्निश।
मल्लिनाथ जिन को सदा वंदौ मन वच काय,
मंगलकारी जगत में, भव्य जीवन सुखदाय।
मंगलमय मंगलकरण, मल्लिनाथ जिनराज,
आरंभ्यो मै ग्रंथ यह, सिद्ध करो महराज।

इसके हिन्दी गद्य भाषा का नमूना देखें—

"समस्त कार्य करि जगत गुरु नै ले करि इन्द्र बड़ी विभूति सूं पूर्ववत पुर नै ले आवता हुआ। तहां राज आंगण कै विषै बड़ा सिंहासन पाई हर्ष करि सर्वांग भूषित इन्द्र बैठ तो हुई।" ग्रंथ की प्रशस्ति में लिखा है कि इनके पिता पाटनी गोत्रीय मायाचंद थे। मल्लिनाथ चरित्रभाषा में कवि ने लिखा है।

> मायाचंद को नंदन जानि, गोत पाटणी सुख की खानि,
> सेवाराम नाम है सही, भाषा कवि को जानौ इहि।
>
> प्रथम वास द्यौसा का जानि, डींग मांहि सुखवास बखानि,
> महाराज रणजीत प्रचंड, जाटवंश में अति वलवंड।

अर्थात् ये पहले घौसा के निवासी थे परंतु बाद में डींग जाकर सुखपूर्वक रहने लगे थे। रचनाकाल इस प्रकार बताया गया है-

> संवत् अष्टादश शत जानि और पचास अधिक ही मान,
> भादौ मास प्रथम पक्ष मांहि, पाचै सोमवार के मांहि।
> तब इह ग्रंथ संपूर्ण कियो, कविजन मनवंछित फल लियो।[४१९]

सेवाराम राजपूत–

इनकी भी रचना का नाम शांतिनाथ पुराण बताया है किन्तु जैसा पहले कहा जा चुका है यह रचना सेवाराम पाटनी की हैं। इनकी दो अन्य रचनायें उपलब्ध हैं-एक- हनुमच्चरित्र छंदोवद्ध सं० १८३१ और भविष्य दत्त चरित्र है। ये तीसरे सेवाराम हैं। ये देवलिया ग्राम जिला प्रतापगढ़ के निवासी थे।[४२०]

सौजन्यसुंदर–

आप रतिसुंदर के प्रशिष्य एवं मान्यसुंदर के शिष्य थे। इन्होंने 'द्रौपदी चरित्र' नामक ग्रंथ की रचना ४८ ढालों में की। इसका रचनाकाल १८१८ है अथवा १८८१? यह स्पष्ट नही है। रचनाकाल इन शब्दों में बताया गया है—

> संवत ससि सिद्ध युक्त अठारै, भादव सुकल मजारै जी,
> अष्टमी दिवस वृहस्पतिवारे, कविता रची सुखकारै जी।

इससे यह स्पष्ट है कि रचना भाद्र माह के शुक्ल पक्ष की अष्टमी, वार वृहस्पतिवार को पूर्ण हुई किन्तु संवत् १८८१ निकलता है जबकि जैन गुर्जर कवियों में सं० १८१८ दिया गया था। इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

वर्द्धमान ससि सम वदन, चंचल भव्य चकोर,
निरखित आनंदित नयन, जसु प्रणमुं कर जोर।
हंस गती हंसवाहणी, हंस समुज्वल देह,
कवीयण मन उज्वलकरण, सदा वसो ससनेह।

यह रचना ज्ञाताध्ययन से आशय लेकर लिखी गई है, यथा—

ज्ञाताध्ययन नो आसय आणी, कीधी कविता जाण जी;
सूत्रवचन जग में परमाणि, ते निश्चे गुणखाणी जी।

आप उवअेस गच्छ की सुंदर शाखा के विद्वान् थे, यथा—

उवअेसगच्छ-प्रभाकर छाजै अभिनव तेज विराजै जी।
श्री सिद्धसूर सूरीसने राजै, कीरति दिनप्रति गाजै जी।
सुंदर साखा जगहितकारी, रतिसुंदर गुणधारी जी,
तस पदपंकज आज्ञाकारी मान्यसुंदर व्रतधारी जी।
तासु कृपा कर ज्ञान उजाला, सौजन्य सुंदर सबिशाला जी,
चरित रच्यो तिण सुंदर ढाला सुणता मंगल मालाजी।

रचनास्थान— नगर पीपाड रह्या चौमासे, श्री संघ अधिक हुलासै जी,
साभंलता सुख संपति थासै, दिन प्रति लील विलासै जी।[४२१]

सौभाग्यसागर–

आप तपा० महिमासागर के शिष्य थें। इनकी रचना 'जंबूकुमार चौढालियु' सं० १८७३ पाटण में पूर्ण हुई। यह प्रकाशित है।[४२२] श्री मो०द० देसाई ने इसका उल्लेख किया है किन्तु कोई उद्धरण आदि नहीं दिया है।

हरकूबाई–

इनकी दो रचनाओं का उल्लेख श्री अ०च० नाहटा ने किया है-'महासती श्री अमरु जी का चरित्र' (सं० १८२०, किसनगढ़); दूसरी रचना ऐतिहासिक 'चतरु जी का संज्झाय' है।[४२३] दूसरी रचना ऐतिहासिक काव्य संग्रह के पृ० २१४-१५ पर नाहटा जी ने प्रकाशित किया है।

हरखचंद (श्रावक)–

रचना-चौबीसी (रागबद्ध सं० १८४३ से पूर्व); इसका आदि निम्नांकित है—

उठतत प्रभात नाम, जिनजी कौ गाइये

नाभिजी के नंद के चरन चित लाइये।
आनंद के कंद जी को, पूजत सुरींद वृंद,
अैसो जिनराज छोड़, और कूं न ध्याइये।
X X X X X X
आदिनाथ आदिदेव, सुरनर सारे सेव,
देवन के देव प्रभु, शिवसुख दाइये।
प्रभु के पादारविंद, पूजत हरखचंद,
मेटो दुखदंद सुख संपति बढ़ाइये।

अंत— शासन नायक समरीये हो, भजे भवमय भीर,
हरखचंद साहिबा हो तुम दूर करो दुखपीर।[४२४]

यह रचना 'चौबीसी बीशी संग्रह में प्रकाशित है।

हरचरणदास–

आपने हिन्दी के रीतिकालीन प्रसिद्ध कवि बिहारी दास की रचना 'सतसई' की टीका 'बिहारी सतसई की टीका' हिन्दी पद्य में सं० १८३४ में संपन्न की।[४२५]

हरचंद–

आपकी रचना का शीर्षक है "पंच कल्याणक पाठ"; यह स्तवन है, इसकी रचना सं० १८३३ ज्येष्ठ शुक्ल सप्तमी को पूर्ण हुई। इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

कल्याननायक नमौ, कल्प कुरुह कलकंद,
कल्मषदुर कल्यानकर, बुधि कुल कमल दिनंद।
मंगलनायक वंदिनौ, मंगल पंच प्रकार,
वर मंगल मुझ दीजिये, मंगल वरनन सार।

अंत— यह मंगलमाला सब जन निधि है
शिव शाला गल में धरनी;
बाला ब्रध तरुन सब जग कौ,
सुख समूह की है भरनी।

रचनाकाल— व्योम अंगुल न नापिये, गनिये मघवा धार।
उडगन मित भू पैडन्यौ, तयो गुन वरने सार।
तीनिं तीनि बसु चंद्र, संवत्सर के अंक

ज्येष्ठ शुक्ल दिवस, पूरन पढ़ौ निसंक।[४२६]

हरजसराय–

ये स्थानकवासी कवि थे। ये ओसवाल वैश्य थे। इनका निवास स्थान कुसुमपुर था। इन्होंने साधु गुण माला (हिन्दी पद्य, १२५ कड़ी सं० १८६४, चैत्र शुक्ल ५) और देवाधि देव रचना (हिन्दी पद्य, सं० १८७० चैत्र कृष्ण) तथा देव रचना नामक ग्रंथ लिखे।[४२७] इनकी रचना 'साधु गुणमाला' से कुछ उद्धरण आगे दिये जा रहे हैं-

आदि— श्री त्रैलोकाधीश को, बंदो ध्यावो ध्यान,
या सेवा साता सुधी, पावो नीको ज्ञान।
अलख आदि इस ईश को, उत्तम ऊचों अेक,
अेसो ओडक ओरनह, अंत न आजग टेक।

रचनाकाल— अठ दस वरषै चौसठे चैत मासे,
सस मृग सित पक्षे पंचमी पापनासे;
रच मुनि गुणमाला मोद प्राया कि सूरे,
हरजस गुण गाया नाथ जी आस पूरे।

अंत— सकल जगत पर अचल अमल वर,
अगम अलख पद अटल अकथ जस।
घर जल दहन पवनवनत समय,
सकल अटक तज परम सदन खस।
सरप अमर नर करण हरष जस,
वचन परम रस भवजन दस-दस।
जगतर वरहर परम अनघ भव,
भवजल तरुवर जसकर हरजस।[४२८]

हरिचंद–

१८ वीं (वि०) शती के अंतिम चरण में पुरानी हिन्दी नये रूप में ढल रही थी, उसमें से अपभ्रंश के शब्द और मुहावरे हटाये जा रहे थे। कवि हरिचंद ने अपभ्रंश-हिन्दी मिश्रित भाषा के साथ ही नये रूप में ढली हिन्दी में रचनायें करने में सक्षम थें। इनकी दो रचनाओं में इन शैलियों का प्रयोग दृष्टव्य है। प्रथम रचना पंच कल्याण और दूसरी 'पंचकल्याण महोत्सव' से उद्धरण उदाहरणार्थ आगे दिया जा रहा हैं—

(१) शाक्क चक्क मणि मुकट वसु, चुंबित चरण जिनेस,

शम्मादिक कल्याण पुण, वण्णउ भक्ति विशेष।
ग्रम्भ जम्म तप णाण पुण, महा अमिय कल्लाण,
चउविय शक्का आपकिय, मणवक्काय महाण।

(२) मंगलदायक वंदि के मंगल पंच प्रकार,
वर मंगल मुझ दीजिए, मंगल वरणन सार।
मो मति अति हीना, नही प्रवीना, जिन गुण महा महंत,
अति भक्ति भाव ते हिये चाव ते, नहि यश हेत कहंत।
सबके मानन को गुण जानन को, मो मन सदा रहंत,
जिन धर्म प्रभावन भव पावन, जण हरिचंद चहंत।

उक्त दोनों उदाहरणों से यह साफ प्रकट होता है कि प्रथम उद्धरण की भाषा शैली में सप्रयास अपभ्रंशाभास का प्रयत्न किया गया है जबकि द्वितीय उद्धरण की भाषा परंपरित (मरुगुर्जर) हिन्दी है। इसका रचनाकाल इन पंक्तियों में है—

तीन-तीन वसुचंद अे सवंत्सर के अंक,
ज्येष्ठ शुक्ल सप्तमि सुभग, पूरन पढ़ौ निसंक।''[४२९]

अर्थात् यह रचना सं० १८३३ ज्येष्ठ शुक्ल सप्तमी को पूर्ण हुई थी। एक जैन कवि हरिचंद १६-१७ वीं शताब्दि में हो गये है। जिन्होंने पद्धरी छंद में 'अनस्तमित व्रत संधि' नामक ग्रंथ प्राकृताभास भाषा शैली में लिखा था, यथा—

आइ जिणिंदु रिसहु पणवेप्पिणु, चउवीसह कुसुमजंलि देप्पिणु
वड्ढमाण जिण पणविवि भावि, कल मलु कलुसवि वछि उपाव।[४३०]

इस छंद की भाषा १९ वीं शती के कवि हरिचंद कृत 'पंचकल्याणक' की प्राकृताभास भाषा शैली से पर्याप्त मिलती जुलती है। इसलिए यह भी संभव है कि वह रचना (पंचकल्याणक सं० १८३३) १६ वीं-१७ वीं (वि०) के हरिचंद कवि की हो। यह विचारणीय प्रश्न है जिस पर जैन साहित्य के शोधार्थियों को ध्यान देना चाहिये।

हरदास–

आप संभवत: जैनेतर कवि हैं। इन्होंने सं० १८०१ में 'भंगीपुराण' की रचना की। यह ३३४ कड़ी की विस्तृत रचना है। इसका प्रारंभ इस प्रकार है-

आदि— पहिलो सरस मति प्रणमां, प्रणमुं ते सिर अक्षर परमां,
भाजण भरम गुणेवी भ्रमां, नमो ईस उभया दसन मां।

अंत— जपें हरदास दूनों कर जोड़ि, कीया अपराध अछिमिकोडि,
महेसर माय करो मन भाई, प्रभुजी राखें तोरें पाये।[४३१]

हर्षविजय–

तपा० हीरविजय सूरि शाखान्तर्गत शुभविजय> गुणविजय> प्रेमविजय> जिनविजय> प्रतापविजय> मोहनविजय के शिष्य थे। इन्होंने 'सांब प्रद्युम्न रास' (६४ ढाल, सं० १८२४-वदी २, सोमवार, उमता) का प्रारंभ इस प्रकार किया है-

आदि— प्रणमु शांति जिणेसरु, जग गिरुओ जगवास;
जम्म थकी भवभय टलया, नामें ऋद्धि विलास।
शव्दाशव्द रुप धारणी, अनुभूति मुख वास,
करि कवियण ने कारणे, आपो वचन विलास।

कवि ने इस रचना में अपनी गुरु परंपरा का सादर उल्लेख किया है। रचनाकाल निम्नांकित है—

संवत वेद जे वेदनें अर्धे मंगलीक इंदु प्रमाणो जी;
---द्वितीया वदनें पामी, चंद्रवार चित चोखे जी।
गातां गुण उत्तम ना प्राणी, दालिद्र दुषने सोषे जी।
ऊमंटराय नुं ग्राम वड़ेरु दोतरसोमें साथें जी
उमतां नगरी अधिकी जाणे संपूरण भर आथे जी।

अंत— जय-जय मंगल अधिकी प्रसरे, भणतां लील विलासो जी,
घरि-घरि ऊछव आणंद पूरे, थाये श्रीधर वासो जी।[४३२]

जै०गु०क० के प्रथम संस्करण में रचनाकाल सं० १८४२ बताया गया था किन्तु रचनाकाल कवि के स्वलेखानुसार सं० १८२४ ही आता है और विजय धर्म सूरि का समय सं० १८४१ तक ही था, इसलिए दोनों दृष्टियों से रचनाकाल सं० १८२४ ही उचित है।

हितधीर–

खरतरगच्छीय कुशलभक्त आपके गुरु थे। आपने सं० १८२६ में 'धन्ना चौपाई' की रचना सूरतगढ़ में की।[४३३]

हीरसेवक (हरसेवक)–

आपने 'मयणरेहारास' (१८८ कड़ी, सं० १८७८ से पूर्व, कुडली) लिखा, उसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ प्रस्तुत है-

आदि— जुआ मांस दारु तणी, करे वेश्या सुं जोष,
जीव हिंसा चोरी करे, परनारी नो दोष।
व्यसन सातमुं पर नारी नुं, प्रत्यक्ष पाय दीखायुं,
रावण पदमोत्तर मणिरथ राजा तीनुं राज गमायुं।

अंत में रचनाकाल इस प्रकार दिया गया है-

रचनाकाल—

ग्राम कुकड़ीअे कर्यो चोमासो, संवत चोदो तेरह मांयो,
कथाकारण आ ढाल ज कीनी, हरसेवक चित लायो

पाठांतर— गाम केकड़ी कियो चोमासो, वरस चवदोतरा मांहि,
किक्ष कालनी ढाल बांधी, हीयडे सोभत चीत लाई।[४३४]

रचनाकाल में पाठांतर के कारण अनिश्चय की स्थिति है। इसे सं० १७७४, १७१४ या १८१४ भी समझा जा सकता। जै०गु०क० के नवीन संस्करण के संपादक कोठारी ने इसे १९ वीं सदी की रचना बताया है।

हीरा–

आप बूँदी निवासी थे। आपने सं० १८४८ में[४३५] 'नेमिनाथ व्याहलो' नामक लघुरचना अत्यन्त मनोहर गीतात्मक शैली में की है। खेद है कि रचना की गेयता का उदाहरण देने के लिए उपयुक्त उद्धरण नहीं उपलब्ध हो सका।

हुलसा जी–

आपने सं० १८८७ में 'क्षमा व तप ऊपर स्तवन' की रचना पाली में पूर्ण की। इसकी हस्तप्रत आचार्य विनयचंद्र ज्ञान भण्डार जयपुर में सुरक्षित है।[४३६]

मुनि हेमराज–

आप तेरापंथ के संस्थापक भीषण जी के शिष्य एवं पट्टधर थे। आपने भारीमल का बखाण नामक एक ग्रंथ १३ ढालों में लिखा। यह रचना सं० १८७९ में पीपाड़ नगर में पूर्ण हुई। यह कृति ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। भाषा राजस्थानी प्रधान मरुगुर्जर है।[४३७]

हेमविलास–

आप खरतरगच्छीय साधु ज्ञानकीर्ति के शिष्य थे। सं० १८७९ में इन्होंने 'ढूढक

रास' की रचना ग्राम कुचेरा मे पूर्ण की।[४३८] इसका विवरण निम्नवत् है-

ढूढक रासों (सं० १८७९ माह बदी ८, कुचेर)

आदि— सरसति माता समरि करि, सद्गुरु वंदी पाय,
कथा कहुं ढुढया तणी, सहुने आने दाय।

रचनाकाल— संवत रस मुनि सिद्ध भू कहीये;
माह मास बदि आठम लहीये।
खरतरगच्छ बधे बड़शाखा, नगर कुचेर में कीनी भाषा।

मारु देस मझार बणायो, कुमति तणो अधिकार सुणायो
ग्यान कीरत गुरु आज्ञा दीन्ही, हेमविलास मुनि रचना कीनी।[४३९]

जै०गु०क० के प्रथम संस्करण में देसाई ने इस रचना के कर्ता का नाम हेमविमल बताया था किन्तु रचना में लेखक ने अपना नाम हेमविलास दिया है। अत: यही नाम नवीन संस्करण में मिलता है।

संदर्भ-

१. श्री अ०च० नाहटा-परंपरा पृ०-१२०.

२. सं०- अगरचन्द नाहटा- राजस्थान का जैन साहित्य पृ०-१७९.

३. मोहन लाल दलीचंद देसाई, जैन गुर्जरकवियो भाग-३ पृ०-३२९ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-११९ न०सं०.

४. मोहन लाल दलीचंद देसाई, भाग-३, पृ०-३०८ प्र० और भाग-६, पृ०-२७९ न०सं०.

५. कामता प्रसाद जैन-हिन्दी जैन सा०का०सं० इतिहास पृ०-२२०.

६. सं०अ०च० नाहटा- राजस्थान का जैन साहित्य पृ०-२८०.

७. श्री मो०द०दे०जै०गु०क० भाग-३, पृ०-५७ और भाग-६, पृ०-७३ न०सं०.

८. वही, पृ०-१५४२-४३ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-९०-९१ नं०सं०.

९. अ०च० नाहटा- परंपरा पृ०-११८.

१०. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३१५ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-३१० न०सं०.

११. अ०च० नाहटा- राजस्थान जैन साहित्य पृ०-१७९.

१२. उत्तमचंद कोठारी-हस्तलिखित ग्रंथसूची, प्राप्ति स्थान पार्श्वनाथ विद्यापीठ वाराणसी.

१३. मो०द० देसाई-जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१६१-१६३ प्र०सं०, भाग-६, पृ०-१५७ नं०सं०.

१४. वही, पृ०-१५८ न०सं०.

१५. वही, पृ०-१५९ न०सं०.

१६. वही, भाग-३, पृ०-६७-६८ प्र०स० और पृ०-८३ न०सं०.

१७. वही, भाग-३, पृ०-३१५-१६ प्र०स० और भाग-६, पृ०-३१० न०सं०.

१८. वही, भाग-३, पृ०-३१५-१६ प्र०स० और भाग-६, पृ०-२१४ न०सं०.

१९. वही, भाग-३, पृ०-२७६-२७७ और भाग-६, पृ०-२७४ न०सं०.

२०. कस्तूरचंद कासलीवाल- राजस्थान के जैनशास्त्रभंडारों की ग्रंथ सूची भाग-४, पृ०-१७६.

२१. अ०च० नाहटा-राजस्थान का जैन साहित्य पृ०-२३३ और मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३३७ एवं भाग-६, पृ०-३०५ न०सं०.

२२. मो०द० देसाई-जैन०गु०क० भाग-३, पृ०-१८९-९१ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-२१२-२१४ न०सं०.

२३. अगरचंद नाहटा-परपंरा पृ०-११५.

२४. मो०द० देसाई- जैन गुर्जर कवियो- भाग-३, पृ०-५७-५९ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-७३-७४ न०सं०.

२५. वही, भाग-३, पृ०-१५३६ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-७५.
२६. वही, भाग-३, पृ०-५७-५९ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-७५-७६ न०सं०.
२७. अ०च० नाहटा- राजस्थान का जैन साहित्य पृ०-१७९.
२८. वही, पृ०-१८५.
२९. मो०द०दे०-जै गु०क० भाग-३, पृ०-३३० प्र०सं०.
३०. अ०च० नाहटा-परंपरा पृ०-१२३.
३१. कामता प्र० जैन- हिन्दी जैन सा० का सं० इतिहास पृ०-२०२.
३२. कस्तूरचंद कासलीवाल- राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची भाग-४, पृ०-५५.
३३. अगरचंद नाहटा-राजस्थान का जैन साहित्य पृ०-२८२.
३४. ग्रंथ सूची उत्तमचंद कोठारी-प्राप्तिस्थान पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी.
३५. मो०द०दे० जैन गुर्जर कवियों भाग-६, पृ०-५-६ न०सं०.
३६. वही, पृ०-६-७.
३७. वही, भाग-३, पृ०-१-६ तथा १६६९ और भाग-६, पृ०-२-७ न०सं०.
३८. वही, भाग-३, पृ०-१५०-१५१ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-१४६-१४७ न०सं०.
३९. वही, भाग-३, पृ०-२९५-३०५ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-२८२-२९० न०सं०.
४०. वही, भाग-३, पृ०-१७२-१७३ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-१६३ न०सं०.
४१. अगरचंद नाहटा-परंपरा पृ०-११७.
४२. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग ३ पृ०-१०२-१०३ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-१०१-१०२ न०सं०.
४३. वही, भाग-३, पृ०-३१४ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-३०८ न०सं०.
४४. सं० अगरचंद नाहटा-राजस्थान का जैन साहित्य पृ०-२८२-२८३.
४५. अ०च० नाहटा-परंपरा पृ० ११९ और मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३३५ प्र०सं० भाग-६, पृ०-२२१-२२२ न०सं०.
४६. मो०द० दे०-जै० गु०क० भाग ३, पृ०१२-१४ प्र०सं०.
४७. वही, भाग-३, पृ०-३२० और १६७४ प्र०सं० और भाग ६ पृ०-३१४ न०सं०.
४८. वही, भाग-६, पृ०-१०९-११० न०सं०.
४९. वही, भाग-२, पृ०-३६४-६६, भाग-३, पृ०-११३-१८ और पृ०-१३३२ तथा १६७० और भाग-६, पृ०-१०९-११४.
५०. सं० अगरचंद नाहटा- राजस्थान का जैन साहित्य पृ०-२५३-५४.
५१. कस्तूरचंद कासलीवाल-राजस्थान के जैन शा०भं०की०ग्रन्थ सूची भाग-४, पृ०-

७९.

५२. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-६, पृ० २९१-२९३ न०सं०.

५३. वही, भाग-३, पृ०- ७९ प्र०सं० और जै०गु०क० भाग-६, पृ० २९१-९६ न०सं०.

५४. वही, भाग-३, पृ०१६५-१७३ प्र०सं० और जै०गु०क० भाग-६, पृ०-१३४-१४० न०सं०.

५५. ऐ०जै०गु० काव्य संग्रह.

५६. सं०अ०च० नाहटा-राजस्थान का जैन साहित्य पृ०-१८७.

५७. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३२२ और १५५० प्र०सं० और भाग-६, पृ०- ३१६ न०सं०.

५८. कामता प्रसाद जैन-हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ० २१३-२१५.

५९. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१०१-१०२ प्र०सं०.

६०. कामता प्र० जैन-हि०जै०सा०सं० इतिहास पृ०-२१६-२१७.

६१. अ०च० नाहटा-राजस्थान का जैन साहित्य पृ०-२८१.

६२. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३२९ प्र०सं०.

६३. वही, भाग-३, पृ०-१४-१५ प्र०सं०.

६४. वही, भाग-३, पृ०-१२५-१२७ और भाग-६, पृ०-१२०-१२१ न०सं०.

६५. वही, भाग-३, पृ०-३३७, प्र०सं० और भाग-६, पृ०-३१६-१७ न०सं०.

६६. वही, भाग-३, पृ०-१५४१-४३ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-१७२-१७३ न०सं०.

६७. वही, भाग-३, पृ०-१५१-१५२ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-१४५ न०सं०.

६८. वही, भाग-३, पृ०-२१९७-९८ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-५६९ न०सं०.

६९. वही, भाग-३, पृ०-२८५ प्र०सं०.

७०. वही, भाग-३, पृ०-३१३ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-३०९ न०सं०.

७१.अ वही, भाग-३, पृ०-३११-३१२ तथा १६७३ प्र०सं० और भाग-६ पृ० ३०७-०८ न०सं०.

७१.ब वही, भाग-३, पृ०-३११-३१२ तथा १६७३ प्र०सं० और भाग-६ पृ० ३०७-०८ न०सं०.

७२. डॉ० शितिकंठ मिश्र-हिन्दी जैन साहित्य का वृहत् इतिहास खण्ड-३ पृ०-९४ और मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३२२, भाग-५ पृ०-१९४ तथा भाग-६, पृ०-७२ न०सं०.

७३. अगरचंद नाहटा-राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची भाग ४ पृ०-१५४ और राजस्थान का जैन साहित्य पृ०-२५५.

७४. कामता प्रसाद जैन-हिन्दी जै० सा० का० सं० इतिहास पृ०-२०२.

७५. ऐ०जै० काव्य संग्रह.
७६. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३३२ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-१२७ न०सं०.
७७. वही, भाग-६, पृ०-४११ न०सं०.
७८. वही, भाग-३, पृ०-३, पृ०-३३२ प्र०सं०, भाग-६, पृ० १२७ और ४११ न०सं०.
७९. अ०च०नाहटा-परंपरा पृ०-११६-११७.
८०. कामता प्रसाद जैन-हि०जै०सा०का०सं० इतिहास पृ०-२११.
८१. अगरचन्द नाहटा- परंपरा पृ०-११९.
८२. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३३७ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-१४५ न०सं०.
८३. वही, भाग-३, पृ०-२७७-२८४ प्र०सं० वही भाग-६, पृ०-१७९-१८५ न०सं०.
८४. वही, भाग-३, पृ०-३१७-१८ प्र०सं० वही भाग-६, पृ०-३१३-३१४ न०सं०.
८५. वही, भाग-३, पृ०-३१०, १४५१-५२ प्र०सं० और भाग-६, पृ० ३०४-०५ न०सं० और अ०च०ना० परम्परा पृ०-१२३.
८६. डॉ० क०च० कासलीवाल-राजस्थान के०ग्र०भं० की सूची भाग-४, पृ०-१२.
८७. अगरचन्द नाहटा-परंपरा पृ० ११७ और - राजस्थान का जैन साहित्य पृ०-१७९.
८८. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१६७२ प्र०सं० वही भाग-६, पृ०-२१४ न०सं०.
८९. वही, भाग-३, पृ०-१६० प्र०सं० और भाग-६, पृ०-१५७ न०सं०.
९०. वही, भाग-३, पृ०-११०९ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-९० न०सं०.
९१. अ०च० नाहटा-परंपरा पृ०-११९.
९२. वही, राजस्थान का जैन साहित्य पृ०-१७९.
९३. डॉ० क०चं० कासलीवाल-राज० के ग्रं०भं० की सूची भाग-५, पृ०-६५७.
९४. उत्तम चन्द कोठारी-हस्तलिखित ग्रंथसूची (पार्श्वनाथ विद्यापीठ वाराणसी)
९५. अ०च० नाहटा-परंपरा पृ०-१२४.
९६. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३३३ और १५५९ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-१६५ न०सं०.
९७. वही, भाग-३, पृ०-३३६ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-२७४ न०सं० तथा अ०च०नाहटा-परम्परा पृ०-११९.
९८. कामता प्रसाद जैन-हिन्दी जै०सा०का०सं० इतिहास पृ०-२१८.

९९. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१७४-१७५ प्र०सं० और भाग-६ पृ०-१६७ न०सं०.

१००. वही, भाग-३, पृ०-१०६, प्र०सं० और भाग-६, पृ०-१०२ न०सं०.

१०१. सं०क०च० कासलीवाल- रा०के०जै०शा० भंडारों की ग्रंथ सूची भाग-४, पृ०-२३२.

१०२. वही, भाग-५, पृ०-३४.

१०३. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३०९, ३४१-४२ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-२९९-३०१ न०सं०.

१०४. वही, भाग-३, पृ०-१५२ और पृ०-३३० प्र०सं०.

१०५. कामताप्रसाद जैन- हि०जै०सा०का०सं०इ० पृ०-२०९.

१०६. डॉ० क०च० कासलीवाल-राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची भाग-४ पृ०-६१.

१०७. वही, भाग-५, पृ०-३९८-४००.

१०८. ऐ० जै० काव्य संग्रह- जिनचंदसूरि गीत.

१०९. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३६६ तथा १५६१-६२ प्र०सं०; वही भाग-६, पृ०-३११-३१२ न०सं०.

११०. वही, भाग-३, पृ०-३२८ और भाग-६, पृ०-११९ न०सं० तथा अ०च० नाहटा-परंपरा पृ०-११८.

१११. कमता प्रसाद जैन-हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ०-१९५-१९६.

११२. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-२० तथा ३३३-३३४ प्र०सं० भाग-६, पृ०-१७६-१७७ न०सं०.

११३. अ०च० नाहटा- परंपरा पृ०-१२५.

११४. मो०द०दे०- जै०गु०क० भा-३, पृ०-३३७ और १५६२-६३ तथा वही भाग-६, पृ०-२७१ न०सं०.

११५. वही, भाग-३, पृ०-२०-२१ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-१९-२० न०सं०.

११६. अ०च० नाहटा- परंपरा पृ०-११९.

११७. सं०अ०च० नाहटा- राजस्थान का जैन साहित्य पृ०-१९६.

११८. अ०च० नाहटा- परंपरा पृ०-११८.

११९. वही, पृ०-११९ और मो०द०दे०जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३१० प्र०सं० और भाग-६, पृ०-३०३ न०सं०.

१२०. नाथूराम प्रेमी- हिन्दी जैन सा० का इतिहास पृ०-७३-७४.

१२१. कामता प्रसाद जैन-हिन्दी जैन साहित्य का०सं० इतिहास पृ०-१८९-१९०.

१२२. क०च० कासलीवाल रा०के०जे०ग्र०म० की सूची भाग-५, पृ०-७४५.
१२३. कामता प्रसाद जैन- हिन्दी जैन साहित्य सं०इ० पृ०-१९०.
१२४. सं०अ०च० नाहटा- राजस्थान का जैन साहित्य पृ०-२५२-५३.
१२५. सं० कस्तूरचंद कासलीवाल-राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथसूची भाग-४, पृ०-४६,९९,१०४,१२४,१३०,३९५,४४६ तथा भाग-५ पृ० १८१, २२०, २४९, २५६, ७४५.
१२६. अ०च० नाहटा- परंपरा पृ०-१२१-१२२.
१२७. डॉ० क०चं० कासलीवाल-रा०के०जै०शा०मं० की ग्रंथसूची भाग-५, पृ०-६६०.
१२८. उत्तम चंद कोठारी, ग्रंथ सूची पृ०-३१ (पार्श्वनाथ विद्यापीठ वाराणसी).
१२९. अगरचंद नाहटा- परंपरा पृ०-११९.
१३०. मोहनलाल दलीचंद देसाई, जैन गुर्जर कवियों भाग-३, पृ०-३३८ तथा १५५९ वही, भाग-६, पृ०-२७९-२८० न०स०.
१३१. वही, भाग-३, पृ०-११-१२ प्र०सं० और वही, भाग-६, पृ०-११ न०सं०.
१३२. वही, भाग-३, पृ०-३२२, १५५४-५५ प्र०सं० वही भाग-६, पृ०-२०-२२ न०सं०.
१३३. मो०पं०दे०गै०गु०के० भाग-२, पृ०-६८८ प्र०सं०.
१३४. वही, भाग-६, पृ०-१४७ न०सं०.
१३५. डॉ० कं०चं० कासलीवाल- रा०के०जै०शा०मं० की ग्रंथ सूची भाग-४, पृ०-३४०.
१३६. वही, भाग-५, पृ०-९२.
१३७ अ०चं० नाहटा- परंपरा पृ०-११८.
१३८. मो०दे०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३२२ तथा १५५३-५४ प्र०सं० और वही, भाग-६, पृ०-८५-८६ न०सं०.
१३९. वही, भाग-६, पृ०-४०९ नं०सं०.
१४०. वही, भाग-३, पृ०-३२१ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-३१७ न०सं०.
१४१. वही, भाग-३, पृ०-३८६-३८८ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-३०१-३०३ न०सं०.
१४२. डॉ० क०चं० कासलीवाल- रा०के०जै०शा०मं० की ग्रंथ सूची भाग-५, पृ०-२७५-२७६.
१४३. सं०अ०प० नाहटा- राजस्थान का जैनसाहित्य पृ०-१८५ पर डॉ० नरेन्द्र भानावत का लेख राजस्थानो कवि.
१४४. मो०प० जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१५६६-६७ प्र०सं और भाग-६, पृ०-

३११-२० न०सं.

१४५. वही, भाग-३, पृ०-१६५७-६८ प्र०सं०.

१४६. वही, भाग-३, पृ०-२२-२५ तथा १५३५-३८ प्र०सं और वही भाग-६, पृ०-१६-१९ न०सं०.

१४७. वही, भाग-३, पृ०-३३७ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-३२३ न०सं०.

१४८. कामता प्रसाद जैन- हि०जै०सा० का संक्षिप्त इतिहास पृ०-२२१.

१४९. क०चं० कासलीवाल- रा०के जै० शास्त्र मं० की ग्रंथ सूची भाग-५, पृ०-१७६.

१५०. वही, भाग-५, पृ०-६९७.

१५१. अ०च० नाहटा- राजस्थान का जैन साहित्य पृ०-२१३.

१५२. मो०प०दे- जै०मु०क० भाग-३, पृ०-३३३ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-१७६ न०सं०.

१५३. मो०द०दे- जै०मु०क० भाग-२, पृ०-३६४-६६, भाग-३, पृ०-१३३-११८, और १३२२ और १६७० प्र०सं० वही, भाग-६, पृ० १०९-११४ न०सं०.

१५४. नाथूराम प्रेमी- हिन्दी जैन साहित्य का इहिास ३०७ और कामता प्रसाद जैन हि०जै०सा० का सं० इतिहास पृ०-१९६.

१५५. सं० अगर चंद नाहटा- राजस्थान का जैन साहित्य पृ०-२५५.

१५६. अ०चं० नाहटा- परंपरा ११६.

१५७. राजस्थान का जैन साहित्य पृ०-२८१-२८२.

१५८. मो०प०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३६०-७४ तथा १६७२ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-१९९-२१२ न०सं.

१५९. ऐ० रास संग्रह- संकलन की अंतिम रचना.

१६०. कामता प्रसाद जैन, हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ०-२२३-२४.

१६१. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-६, पृ०-४०९-११ न०सं०.

१६२. वही, भाग-३, पृ०-१५६८ प्र०सं०, और वही, भाग-६, पृ०-३२३-२४ नं०सं०.

१६३. कामता प्रसाद जैन- हि०जै०सा० का सं० इतिहास पृ०-२००-२०१.

१६४. वही, पृ०-२१७.

१६५. सं०क०च० कासलीवाल- रा०के०गै०शा०मं० की ग्रंथ सूची भाग-५, पृ०-१४२-१४३.

१६६. सं०अ०च० नाहटा- राजस्थान का जैन साहित्य पृ०-२१३.

१६७. सं०अ०च० नाहटा- राजस्थान का जैन साहित्य पृ०-२५१-५२.

१६८. का०प्र०जै० हि०जै०सा०का०सं० इतिहास पृ०-१८५-१८९.

१६९. सं०अ०च० नाहटा- राजस्थान का जैन साहित्य पृ०-२५१.
१७०. सं०क०च० का रा०के०जै०शा०मं० की ग्रंथ सूची भाग-४, पृ०-३२१.
१७१. वही, भाग-५, पृ०-१५३.
१७२. वही, भाग-४, पृ०-१०४.
१७३. वही, भाग-५, पृ०-८४४.
१७४. सं०क०चं० कासलीवाल- रा०के०जै०शा० मं० की ग्रंथ सूची भाग-५, पृ०-२४९.
१७५. अ०च० नाहटा- परंपरा पृ०-११९.
१७६. सं० राजस्थान का जैन साहित्य पृ०-१७९.
१७७. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१६६८ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-८ न०सं०.
१७८. सं०क० कासलीवाल रा०के०जै० ग्रंथ भण्डारों की सूची भाग-४, पृ०-९६.
१७९. मो०दे०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-२९४-९५ प्र०सं० और भाग-६, पृ०२९६-२९७ न०सं०.
१८०. वही, भाग-३, पृ०-३३४ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-२५६ न०सं०.
१८१. कामता प्रसाद जैन- हिन्दी जैन सा० का सं० इतिहास पृ०-२२०.
१८२. नाथूराम प्रेमी हिन्दी जैन साहित्य इतिहास पृ०-८०-८१.
१८३. सं० अगरचंद नाहटा- राजस्थान का जैन साहित्य पृ० २१२-१३.
१८४. सं०क०च० कासलीवाल- रा०के० जैन शा०मं० की ग्रंथ सूची भाग-५, पृ०-६९७.
१८५. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-२१८९ प्र०सं०.
१८६. वही, भाग-३, पृ०-३१० प्र०सं०, भाग-६, पृ०-३०५ न०सं०.
१८७. अ०च० नाहटा- परंपरा पृ०-१२०.
१८८. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-११८-१२३ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-११४-११९ न०सं०.
१८९. वही, भाग-३, पृ०-१५६६ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-३२२ न०सं०.
१९०. वही, भाग-३, पृ०-३३५ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-२५८ न०सं०.
१९१. वही, भाग-३, पृ०-१५५-१५७ प्र०सं० और वही भाग-५, पृ०-१८४-१८८ न०सं०.
१९२. डॉ० शितिकंठ मिश्र- हि०जै०सा० का वृ० इतिहास खण्ड-२, पृ०-२२४-२२५.
१९३. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-२, पृ०-३९३ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-१६७ न०सं०.

१९४. वही, भाग-३, पृ०-१९९-२०८, ३०६, १५४६, १६७३ तथा वही भाग-६, पृ०-१८६-१९५ न०सं०.

१९५. वही, भाग-३, पृ०-३१२-१३ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-२९७-२९८ न०स०.

१९६. वही, भाग-३, पृ०-३१३-३१४ प्र०सं०.

१९७. सं०अ०च० नाहटा- राजस्थन का जैन साहित्य पृ०-१८४-८५.

१९८. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३४२ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-३१८-१९ न०सं०.

१९९. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह- जिनलाभ सूरिगीतानि.

२००. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-६०-६३ प्र०सं० और वही भाग-६ पृ०-७७-८० न०सं०.

२०१. वही, भाग-३, पृ०-१०७-०८ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-१०३-०४ न०सं०.

२०२. वही, भाग-३, पृ०-३०८, १५४९-५० प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-२७८, २७९ न०सं०.

२०३. वही, भाग-३, पृ०-१२८-२९, ३२९, १२६०, १५२२ और वही भाग-६, पृ०-१२५-१२६ न०सं०.

२०४. वही, भाग-३, पृ०-२१८६-८९ प्र०सं०.

२०५. सं० डॉ० क०च० कासलीवाल-रा०के०जै० शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची भाग-५, पृ०-८०१.

२०६. नाथूराम प्रेमी- हिन्दी जै०सा० का इतिहास पृ०-८०-८१.

२०७. कामता प्रसाद जैन- हि०जै०सा० का सं० इतिहास पृ०-२१९.

२०८. सं०अ०च० नाहटा- राजस्थान का जैन साहित्य पृ०-२२१-२२२ और २४८-२५१ और सं०क०च० कासली रा०के०जै०शा०सं० की ग्रंथ सूची भाग-५, पृ०-२६७, वही, भाग-४, पृ०-१५७, वही, भाग-५ पृ०-३०४.

२०९. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३२१-२२ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-१६ न०सं० .

२१०. वही, भाग-३, पृ०-३१८-३२० प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-३१७-३१८ न०सं०.

२११. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-६-७ प्र०सं० और भाग-६ पृ०-७-८ न०सं०.

२१२. कामता प्रसाद जैन- हि०जै०सा० का संक्षिप्त इतिहास पृ०-२०३-२०४

२१३. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१६७२ और भाग-६, पृ०-१६७

न०सं०.

२१४. अगरचंद नाहटा- परंपरा पृ०-१२५.

२१५. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३०९ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-२९१ न०स०.

२१६. अ०च० नाहटा रा० जैन साहित्य पृ०-२२४.

२१७. कामता प्र० जैन- हि०जै०सा०सं०इति० पृ०-२१८-२२०.

२१८. अ०च० नाहटा- रा०जै०सा० पृ०-२१२.

२१९. का०प्र० जैन- हि०जै०सा०सं०इति० पृ०-२१७.

२२०. सं०क०च० कासलीवाल- रा०के०जै०शास्त्र मं० की ग्रंथ सूची भाग-४, पृ०-२३४ और वही भाग-५, पृ०-७४४.

२२१. वही, भाग-५, पृ०-३४१.

२२२. वही, भाग-५, पृ०-७२६-२७.

२२३. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-६, पृ०-४१२ न०स०.

२२४. का०प्र०जै०- हि०जै०सा० का सं० इति० पृ०-२२१-२२२.

२२५. अगरचंद नाहटा- राजस्थान का जैन साहित्य पृ०-२२२.

२२६. सं०क०च० कासलीवाल- रा०के०जै०शा०मं० की ग्रंथ सूची भाग-५, पृ०-२९६-९७.

२२७. कामता प्रसाद जैन- हि०जै०सा० का सं० इतिहास पृ०-२२४-२५.

२२८. कामता प्रसाद जैन- हि०जै०सा० का संक्षिप्त इतिहास पृ०-२०३.

२२९. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-८-९ प्र०सं०.

२३०. डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल- रा०के० जैन शास्त्र सं० की ग्रंथ सूची भाग-४, पृ०-१३४ और वही भाग-५, पृ०-२५५.

२३१. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१५५६-५७ प्र०सं० २ भाग-६, पृ०-३०६-०७ न०सं०.

२३२. क०च०का०- रा०जै०शा०मं० की ग्रंथ सूची भाग-५, पृ०-७२५.

२३३. वही, भाग-४, पृ०-५३ (भूमिका).

२३४. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-४८-५४ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-४१-४७ न०सं०.

२३५. कामता प्रसाद जैन- हि०जै०सा० का सं०इ० पृ०-१८२.

२३६. क०च० कासलीवाल- रा० के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची भाग-४, पृ०-२२१-२२.

२३७. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-७३-९८ और १६६९-७० प्र०स० और वही भाग-६, पृ०-४७-७२ न०स०.

२३८. वही, भाग-३, पृ०-१५६५ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-३२२ न०सं०.
२३९. अ०च० नाहटा- राजस्थान का जैन साहित्य २१७, २२३-२४.
२४०. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-६९-७० प्र०सं० और वही भाग-६ पृ०-८७-८८ न०सं०.
२४१. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-२८८-८९ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-२९०-९१ न०सं०.
२४२. क०च० कासलीवाल- रा० जैन शास्त्र मं० की ग्रंथ सूची भाग-४, प्रस्तावना पृ०-५३.
२४३. कामता प्रसाद जैन- हिन्दी जैन सा० का सं०इ० पृ०-२२१.
२४४. अ०च०ना० परंपरा पृ०-१२१.
२४५. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१९९, ३३४, १५४५-४६ और वही, भाग-४, पृ०-३२८ न०सं तथा भाग-६, पृ०-२५६-२५८ नं०सं० और शितिकंठ मिश्र हि०जै०सा० का वृ०इ० खण्ड तीन पृ०-३०५.
२४६. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१५२-१५३, १५४३ न०सं० और वही, भाग-६, पृ०-१४९.
२४७. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-७३ प्र० सं० और भाग-६, पृ०-९० न०सं०.
२४८. वही भाग-३ पृ०-१८१-१८४ प्र०सं० और वही भाग-६ १७३-१७५ न०सं०.
२४९. कामता प्रसाद जैन- हिन्दी जैन साहित्य का० सं इ० पृ०-२०६ और पृ०-२१९.
२५०. सं०क०च० कासलीवाल रा० के ग्रंथ भंडारों की सूची भाग ४ पृ०-२० और वही भाग-५ पृ०-७८.
२५१. क०प्र० जैन- हि०जै०सा० का सं० इतिहास पृ०-२२०.
२५२. वही, पृ०-२२५-२६.
२५३. अनेकांत वर्ष ६ पृ०-१३८.
२५४. कामता प्रसाद जैन-हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ०-१९७-२९८.
२५५. डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल-रा० के जैन शास्त्र मं० की ग्रंथ सूची भाग ४ पृ०-३३२.
२५६. वही, भाग-५, पृ०-६६९.
२५७. अगर चंद नाहटा- राजस्थान का जैन साहित्य पृ०-२२३ और पृ०-२२५.
२५८. सं०क०च० कासलीवाल- रा०जै०शा०मं० की ग्रंथ सूची भाग-४, पृ०-११७.
२५९. मो०द०दे०- जैन मु०क० भाग-३, पृ०-१६० प्र०-सं०.
२६०. कामता प्रसाद जैन - हि०जै०सा०क०सं० ३० पृ०-२२०.

२६१. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-१, पृ०-५६, भाग-३, पृ०-१५-१६, ४८४, १५९७-१५९८ प्र०स० वही, भाग-६, पृ०-११-१३ न०सं०.
२६२. वही, भाग-३, पृ०-३३० प्र० सं० और भाग-६, पृ०-१५७ न०सं०.
२६३. मोहन लाल दलीचंद देसाई- जैन गुर्जर कवियो भाग-३, पृ०-१३४-१३८ प्र०सं० और वही, भाग-६, पृ०-१३१-१३४ न०सं०.
२६४. डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल- रा० भण्डारा की ग्रंथसूची भाग-४, पृ०-४७.
२६५. कामता प्रसाद जैन हि०जै०सा० सं० इहिास पृ०-२१८.
२६६. मो०द० दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३२४, १५५७-५८ प्र०सं० और वही, भाग-६, पृ०-७६ न०सं०.
२६७. वही, भाग-३, पृ०-३२९ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-१५३ न०सं०.
२६८. मो०द०दे०- जै०मु०क० भाग-३, पृ०-१५४७ और भाग-६, पृ०-१२१-१२२ न०सं०.
२६९. मो०दे०दे०- जै०मु०क० भाग-३, पृ०-६५, ३२४-२५ प्र० सं० और वही, भाग-६, पृ०-८२- न०सं०.
२७०. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-६६-६७ प्र०सं० और वही, भाग-६, पृ०-८२-८३.
२७१. क०च० कासलीवाल रा० के जैन शास्त्र म० की ग्रंथ सूची भाग-५ और पृ०-८ और २७.
२७२. कामता प्रसाद जैन- हिन्दी जैन सा० का सं० इतिहास पृ०-२०८.
२७३. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१६३-१६५ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-१६१-१६३ न०सं०.
२७४. मो०द०दे०-जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास पृ०-६७८.
२७५. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३८५ प्र०सं० और
२७६. वही, भाग-६, पृ०-१६८ न०सं०.
२७७. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१३-१६ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-१३-१६ न०सं०.
२७८. अ०च० नाहटा-परंपरा पृ०-११७.
२७९. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३२३ प्र०सं० और भाग-६, पृ०- ७३ न०सं०.
२८०. वही, भाग-३, पृ०-६३-६४ प्र०सं० भाग-६, पृ०-८१-८२ न०सं०.
२८१. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१६७१ प्र०सं० और वही भाग-३, पृ०-१६६ न०सं०.
२८२. कामता प्रसाद जैन- हिन्दी जैन सा० का सं० इतिहास पृ०-२११-२१३.

२८३. उत्तमचंद कोठारी- हस्त लिखित ग्रंथों की सूची पृ०-३५, प्राप्ति स्थान-पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी.

२८४. कामता प्रसाद जैन- हि०जै०सा० सं० इतिहास पृ०-२१३.

२८५. वही, पृ०-२२०.

२८६. वही, पृ०-२१८.

२८७. वही, पृ०-२२०.

२८८. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-७०-७१ प्र०सं० और वही, भाग-६, पृ०-८६-८७ नं०सं०.

२८९. डॉ० क० च० कासली वाल- राजस्थन के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रंथसूची भाग-५, पृ०-७६४.

२९०. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१५४६-४७ प्र०सं० और वही भाग-३, पृ०-१७५-१७६ न०सं०.

२९१. वही, भाग-३, पृ०-३४-४४ प्र०सं० और वही, भाग-६, पृ०-२७-३५ न०सं०.

२९२. क०चं० कासलीवाल- राज० के शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची भाग-४, प्र० ५४ और ३१०.

२९३. ऐ० जैन काव्य संग्रह जिनलाभ सूरी गीतानि.

२९४. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०- ६५-६६ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-८४-८५ न०सं०.

२९५. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ० २७५- २७६ प्र०सं० और वही, भाग-६, पृ०-२७३-२७४ न०सं०.

२९६. वही, भाग-३, पृ०-३३२ प्र०सं० वही, भाग-६, पृ०-१६१ न०सं०.

२९७. वही, भाग-३, पृ०-१९६-१९९ तथा १५४४ प्र०सं० और वही, भाग-६, पृ०-२१९-२२१ न०सं०.

२९८. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-२८-३२ प्र०सं० और वही, भाग-६, पृ०-३८-४१ न०सं०.

३९९. वही, भाग-३, पृ०-१५२ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-१४८ न०सं०.

३००. वही, भाग-३, पृ०-१५३८ प्र०सं० और वही, भाग-६, पृ०-१४८ न०सं०.

३०१. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१३३-१३४ प्र०सं० और वही, भाग-६, पृ०-१४१ न०सं०.

३०२. वही, भाग-३, १५४४ प्र०सं० और वही, भाग-६, पृ०-४१ और पृ०-२१९ न०सं०.

३०३. कामता प्रसाद जैन हि०जै०सा० सं० इतिहास पृ०-२१८.

३०४. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१५५५-५६ प्र०सं० और वही, भाग-६, पृ०-३२० न०सं०.

३०५. वही, भाग-३, पृ०-१६७४ प्र०सं० और वही, भाग-६, पृ०-३२३ न०सं०.

३०६. क०च० कासलीवाल- रा०जै०शा०म० ग्रंथसूची भाग-५, पृ०-६३२.

३०७. कामता प्रसाद जैन- हि०जै०सा०सं० इतिहास पृ०-२१६.

३०८. मो०द० देसाई- जै०गु०क० भाग-२, पृ०-५५२, वही, भाग-३, पृ० १७५-१७८ प्र०सं० और वही, भाग-६, पृ०-१६८-१७१ न०सं०.

३०९. सं०अं०चं० नाहटा- रा०जै०सा० पृ०-२८०.

३१०. अगरचंद नाहटा, परपंरा पृ०-१२४.

३११. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३३३ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-१७९ न०सं०.

३१२. डॉ० नरेन्द्र भानावत- लेख पूज्य रत्नचन्द्र जी की काव्यसाधना- गुरुदेव श्री रत्नमुनि स्मृति ग्रन्थ पृ०-३१७ और सं० अ०च० नाहटा- राजस्थान का जैन साहित्य पृ०-१८६-१८७.

३१३. मो०द०दे०- जैन गु०क० भाग-३, पृ०-१६६८ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-१६ न०सं०.

३१४. वही, भाग-३, पृ०-२५-२८ प्र०सं० और वही, भाग-६, पृ०-२२-२५ न०सं०.

३१५. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-५६ प्र०सं० और वही, भाग-६, पृ०-७७ न०सं०.

३१६. वही, भाग-३, पृ०-१२७-१२८ प्र०सं० और वही, भाग-६, पृ०-११९ न०सं०.

३१७. अ०च० नाहटा- परंपरा पृ०-११६.

३१८. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-६, पृ०-१४२ न०सं०.

३१९. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१३९-४२ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-१४४ न०सं०;

३२०. वही, भाग-६, पृ०-४०८ न०सं०.

३२१. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१८६-१८८ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-१९६-१९८ न०सं०.

३२२. सं०ऐ० जैन काव्य संग्रह

३२३. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१६७ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-१५५ न०सं०.

३२४. वही, भाग-३, पृ०-३३५ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-२७३ न०सं०.

३२५. वही, भाग-६, पृ०-४०६-४०८ न०सं०.
३२६. वही, भाग-३, पृ०-१३८ प्र०सं०.
३२७. वही, भाग-३, पृ०-२४७-२४९ प्र०सं० और वही, भाग-६, पृ०-२५८-६१ न०सं०.
३२८. डॉ०क०च० कासलीवाल- राजस्थान के०जै०शा०भ० की ग्रंथ सूची भाग-५, पृ०-६८२-८३.
३२९. सं० क०च० कासलीवाल- राजस्थान के०जै०शा०भ० की ग्रंथ सूची भाग-५, पृ०-९२५-२६.
३३०. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१६६९ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-१४७ न०सं०.
३३१. डॉ० शितिकंठ मिश्र- हिन्दी (मरुगुर्जर) जैनसाहित्य का बृहद् इतिहास भाग-३, पृ०-४१०.
३३२. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-५५ प्र०सं० और भाग-५, पृ०-३३९-३४० न०सं०.
३३३. मो०दे०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१४२-१४९, ३२९-३० तथा १५३७ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-९१-९९ न०सं०.
३३४. अगरचन्द नाहटा- परंपरा, पृ० १२२-१२३.
३३५. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३१५ प्र०सं०; भाग-६, पृ०-३०९ न०सं०.
३३६. वही, भाग-३, १५४५ प्र०सं०; भाग-६, पृ०-२५६ न०सं०.
३३७. वही, भाग-३, पृ०-९-११ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-९-१० न०सं०.
३३८. अ०च० नाहटा- परंपरा, पृ०-१२०-१२१.
३३९. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१९१-१९६ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-२१४-२१८ न०सं०.
३४०. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-२४९, २५९ तथा १६७४ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-२६१-२७० न०सं०.
३४१. कामता प्रसाद जैन- हि०जै०सा० का सं० इतिहास, पृ०-२०८-२०९.
३४२. उत्तमचंद कोठारी की ग्रंथ सूची (प्राप्तिस्थान-पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी).
३४३. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१८४-१८६ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-१७६-१७८ न०सं०.
३४४. वही, भाग-३, पृ०-१८८-१८९ प्र०सं०.
३४५. वही, भाग-३, पृ०-४४-४८ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-३५-३८ न०सं०.

३४६. वही, भाग-३, पृ०-१५८-१५९ और ३३० प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-१५३-१५५ न०सं०.
३४७. सं० क०च० कासलीवाल- रा०के जै०शा० भ० की ग्रंथ सूची भाग-५, पृ०-९२६.
३४८. सं० अ०च० नाहटा- राजस्थान का जैन साहित्य पृ०-१८७-१८८.
३४९. सं० क०च० कासलीवाल- रा०के जै०शा० भ० की ग्रंथ सूची भाग-४, पृ०-२१३.
३५०. वही, भाग-४, पृ०-४१७.
३५१. कामता प्रसाद जैन, हि०जैन०सा० का सं० इतिहास, पृ०-२१९.
३५२. कामताप्रसाद जैन- हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ०-२०४-०६.
३५३. नाथूराम प्रेमी- हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास, पृ०-८१.
३५४. डॉ० क०च० कासलीवाल- रा०के जै०शा० भ० की ग्रंथ सूची भाग-५, पृ०-२९९.
३५५. डॉ० क०च० कासलीवाल- रा०के जै०शा० भ० की ग्रंथ सूची भाग-४, पृ०-४५३ और वही भाग-५, पृ०-७७७.
३५६. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३१२ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-३०६ न०सं०.
३५७. वही, भाग-३, पृ०-३३६ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-३२३ न०सं०.
३५८. वही, भाग-३, पृ०-१६० प्र०सं०, भाग-६, पृ०-१६० न०सं०.
३५९. वही, भाग-३, पृ०-१६७२ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-२७२-७३ न०सं०.
३६०. वही, भाग-३, पृ०-१५३-५४ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-१५२-५३ न०सं०.
३६१. सं० अ०च०ना०- ऐ०जै०काव्य संग्रह 'जिनलाभ सूरि गीतानि'
३६२. मो०द०दे०- जै०ग०क० भाग-३, पृ०-१०३-१०४ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-९९-१०० न०सं०.
३६३. कामता प्रसाद जैन- हिन्दी जै० सा० का सं० इतिहास, पृ०-२०६.
३६४. डॉ० क०च० कासलीवाल- रा० के जै० शा० भ० की ग्रंथ सूची भाग-५, पृ०-१४९.
३६५. सं०क०च० कासलीवाल- रा० के जै०शा०भ० की ग्रंथ सूची भाग-५, पृ०-४०३-४०४; वही भाग-४, पृ०-२०४.
३६६. कामताप्रसाद जैन- हि०जै०सा० का संक्षिप्त इतिहास, पृ०-२१५-१६.
३६७. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१२९-१३२ प्र०सं० और वही भाग-

६, पृ०-१२२-१२५ न०सं०.

३६८. डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल- रा० के जैन शास्त्र भ० की ग्रंथ सूची भाग-५, पृ०-६३६.

३६९. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३३७ प्र०सं०; वही भाग-६, पृ०-१३१ न०सं०.

३७०. अगरचंद नाहटा- परंपरा, पृ०-१२०.

३७१. मो०द०दे- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३०८, १५४८-४९ प्र०सं०; वही भाग-६, पृ०-३७४-३७५ न०सं०.

३७२. वही, भाग-३, पृ०-३१५ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-३०९ न०सं०

३७३. अ०च० नाहटा- परंपरा, पृ०-१२४.

३७४. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१५६२, भाग-६, पृ०-३५३ न०सं० और अ०च०ना०- राजस्थान का जैन साहित्य, पृ०-१८७.

३७५. सं० अगरचंद नाहटा- राजस्थान का जैन साहित्य, पृ०-२८०.

३७६. कामताप्रसाद जैन- हि०जै०सा० का सं० इतिहास, पृ०-२१९.

३७७. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-२८५-२८६ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-२८१ न०सं०.

३७८. मो०द० देसाई- जैन गुर्जर कवियों भाग-३, पृ०-१९ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-१-२ न०सं०.

३७९. वही, भाग-३, पृ०-१३२-१३३ प्र०सं०.

३८०. मो०द०दे०- जैन गुर्जर कविओं भाग-३, पृ०-३२-३४ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-२५-२६ न०सं०.

३८१. कामताप्रसाद जैन- हि०जै०सा० का सं० इतिहास, पृ०-१९०.

३८२. डॉ० क०च० कासलवाल- रा०के जै०शा० भ० की ग्रंथ सूची भाग-५, पृ०-८०६ और वही भाग-४, पृ०-२२९.

३८३. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-५४-५५ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-७२ न०सं०.

३८४. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-२०९-२४६ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०२२२-२५६ न०सं०.

३८५. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३०६-०८ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-२७६-२७८ नं०सं०.

३८६. कामता प्रसाद जैन- हिन्दी जैन सा० का सं० इतिहास, पृ०-२२१.

३८७. अ०च०-नाहटा- परंपरा, पृ०-११८.

३८८. सं० अगरचंद नाहटा- राजस्थान का जैन साहित्य, पृ०-२५४.

३८९. सं० अगरचंद नाहटा- राजस्थान का जैन साहित्य, पृ०-२८१.
३९०. अ०च० नाहटा- परंपरा, पृ०-१२४.
३९१. मो०द०दे०- जैन गु०क० भाग-३, पृ०-३१४ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-३०८ न०सं.
३९२. वही भाग-३, पृ०-११३ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-१०५ न०सं०.
३९३. सं० क०च० कासलीवाल- रा०के जैन० शा० भ० की ग्रंथ सूची भाग-४, पृ०-५४.
३९४. कामता प्रसाद जैन- हि०जै०सा० का सं० इतिहास, पृ०-२१९.
३९५. अगरचंद नाहटा- परंपरा, पृ०-११८.
३९६. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३१० प्र०सं० और भाग-६, पृ०-३०६ न०सं०.
३९७. का०प्र० जैन- हि०जै०सा० का सं० इतिहास, पृ०-२१५.
३९८. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३१६ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-३१३ न०सं०.
३९९. अ०च० नाहटा- परंपरा, पृ०-१२३.
४००. सं० अ०च० नाहटा- राजस्थान का जैन साहित्य, पृ०-१८६.
४०१. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३१८ तथा १५५२-५३ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-३१२ न०सं०.
४०२. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३३५ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-२७१ न०सं०.
४०३. सं० कस्तूरचंद कासलीवाल- राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारो की ग्रंथ सूची भाग-५, पृ०-६२७.
४०४. अ०च०ना०- ऐ० काव्य संग्रह, पृ०-१५६-१५८ और 'रा० जैन साहित्य' पृ०-१९५.
४०५. अ०च० नाहटा- परंपरा, पृ०-१२४.
४०६. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३२१ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-३१८, और ४१२-४१३ न०सं०.
४०७. सं० क०च० कासलीवाल- रा० के शास्त्र भ० की ग्रंथ सूची भाग-५, पृ०-५३.
४०८. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१३८-१३९ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-१४१-१४२ न०सं०.
४०९. वही, भाग-३, पृ०-१०८-११३ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-१०५-१०९ न०सं०.

४१०. वही, भाग-३, पृ०-२१९९-२२०० प्र०सं०.
४११. वही, भाग-३, पृ०-१०५-१०६ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-१००-१०१ न०सं०.
४१२. वही, भाग-३, पृ०-१५६८-६९ प्र०सं० और वही भाग- ६, पृ०-१ न०सं०.
४१३. वही, भाग-३, पृ०-१५३९-४१ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-१४९-१५२ न०सं०.
४१४. सं० क०च० कासलीवाल- रा०शा०भ० की ग्रंथ सूची भाग-४, पृ०-४६०.
४१५. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१५६४-६५ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-३२१ न०सं०.
४१६. कामता प्रसाद जैन- हिन्दी जै०सा० का सं० इतिहास, पृ०-२०६-०७ और सं०क०च० कासलीवाल- रा०के जैन शास्त्र भ० की ग्रंथ सूची भाग-४, पृ०-६४.
४१७. सं०क०च० कासलीवाल- रा०के जैन शास्त्र भ० की ग्रंथ सूची भाग-५, पृ०-८०८-०९.
४१८. सं०क०च० कासलीवाल- रा० के जै०शा०भ० की ग्रंथ सूची भाग-५, पृ०-३०१ और ३९१.
४१९. सं० क०च० कासलीवाल- रा० के जै०शा०भ० की ग्रंथ सूची भाग-५, पृ०-३६६-३६७.
४२०. कामता प्रसाद जैन- हि०जै०सा० का सं० इ०, पृ०-२१८.
४२१. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-७१-७३ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-८८-८९ न०सं०.
४२२. वही, भाग-३, पृ०-२८८ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-२८१-८२ न०सं०
४२३. सं० अ०च० नाहटा- राजस्थान का जैन साहित्य, पृ०-१९५.
४२४. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१५५३ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-१६५ न०सं०.
४२५. सं०क०च० कासलीसाल- रा० के शास्त्र भ० की ग्रंथ सूची भाग-४, पृष्ठ-५४ प्रस्तावना.
४२६. वही, भाग-४, पृ०-४००.
४२७. कामता प्रसाद जैन- हिन्दी जैन सा० का सं०इ०, पृ०-२१९.
४२८. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-२७४-२७५ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-२७१-२७२ न०सं०.
४२९. कामता प्रसाद जैन- हि०जै०सा० का सं०इ०, पृ०-४१-४२ और १९९
४३०. वही, पृ०-८६.
४३१. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-२१८४ प्र०सं० और वही भाग-६,

पृ०-५६४-६५ न०सं०.

४३२. वही, भाग-३, पृ०-१७३-१७४ तथा भाग-६, पृ०-१६३-१६५ न०सं०.

४३३. अ०च० नाहटा- परंपरा, पृ०-११७.

४३४. मो०द०दे०- जै०गु०क० भाग-१, पृ०-१७, भाग-३, पृ०-४१८ तथा १४२२ और वही भाग-६, पृ०-२९८ न०सं०.

४३५. सं० अ०च० नाहटा- राजस्थान का जैन साहित्य, पृ०-२१८.

४३६. वही " " " पृ०-१९५.

४३७. अ०च० नाहटा- परंपरा, पृ०-१२६.

४३८. अ०च० नाहटा- परंपरा पृ०-१२६.

४३९. मो०द० देसाई- जै०गु०क० भाग-३, पृ०-३१०, १५५१ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-३०४ न०सं०.

तृतीय परिच्छेद

अज्ञात पद्य और गद्य लेखकों तथा जैनेतर रचनाकारों की रचनाओं का संक्षिप्त विवरण

(क) अज्ञात पद्य लेखकों की रचनाओं का विवरण-

कुछ ऐसी भी रचनायें इस शताब्दि में की गई हैं जो महत्त्वपूर्ण हैं और उनकी प्रतियाँ जैन भण्डारों में सुरक्षित है परन्तु उनके लेखकों का नाम अज्ञात है। इस अध्याय में ऐसी ही कुछ रचनाओं का विवरण आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

'जैमल जी का गुण वर्णन' (सं० १८५३ के पश्चात् रचित यह कृति ३ ढालों में ५३ कड़ी की है।) इस कृति से ज्ञात होता है कि जैमल जी लाखिया ग्राम निवासी मोहनदास की पत्नी मोहना दे की कुक्षि से पैदा हुए थे। व्यापार के सिलसिले से वे मेड़ता आये तब वहीं पर उन्हें भूधर जी का सत्संग मिला। भूधर जी की देशना से जैमल को संयम की प्रेरणा हुई। सं० १७८८ मागसर बदी २ को बाइस वर्ष की अवस्था में उन्होंने मेड़ता में दीक्षा ग्रहण की। गुरु के साथ बीकानेर आये और शास्त्रों का गहन अध्ययन किया, सूत्र सिद्धान्तों को समझा। इस प्रकार अतिशय संयमपूर्वक सोलह साल तक गुरु की सन्निधि में रहकर तप एवं ज्ञान की साधना की। भूधर जी के निर्वाणोपरांत उनके पट्टधर हुए। इन्होंने जयपुर, दिल्ली, फतेहपुर, बीकानेर, मारवाड़, मेवाड़ और किशनगढ़ आदि स्थानों में विहार किया तथा उपदेश दिया और अनेक लोगों को जैन मत के प्रति श्रद्धालु बनाया। अंत में सं० १८४० में नागौर पहुँचे। सं० १८५२ में वे रोग ग्रस्त हुए। सं० १८५३ में संथारा लिया और निर्वाण प्राप्त किया। इस रचना में उनके इस परिचय के साथ उनके कुछ विशिष्ट गुणों का वर्णन किया गया है। इसका रचनाकार उनका कोई श्रद्धालु अज्ञात शिष्य है। रचना का प्रारंभ इन पंक्तियों से हुआ है-

अरिहंत सिध ने साध गुरु प्रणमुं बारंबार,
गुण कहूं श्री पूजना, सांभल जो नरनार।
पूज भूधर जी दीपता, वैरागी भरपूर
ज्यां पुरसारा पाटवी, पूज जेमल जी जगसूर।

रचना की अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं।—

संवत अठारे तेपने, नागोर सहर जास;
पूजा मनोरथ पूरने, कीयो सरगपुरी में बास।[1]

अध्यात्म चौपाई (१५१ कड़ी) का आदि–

इष्टदेव प्रणमी करी, आतम द्रव्य अबोध;
अनंत चतुष्टय रूप में, गुणे पज्जवनो थोभ।

अंत— कमंडल मेल्या पछी, व्यवहार सत्ता जाणि,
शुद्ध जप विचारतां, जे जिम होई निर्वाण।
को कहीने आधीनें नही, जे जम ग्रहे प्रस्ताय;
अेहे भावे बर्त्ते सदा, सधले मंगलीकथाय।[२]

इस रचना का कवि अज्ञात है, परंतु प्रति के आधार पर इसे श्री देसाई ने १९वीं शती की रचना माना है।

नवपद पूजा–

यह रचना गुजराती प्रधान मरुगुर्जर में रचित है। यह गद्य-पद्य युक्त रचना है। आदि- अथ नवपद की पूजा लिखयेत; प्रथम अरिहंत पद की स्तुति—

ऊप्पएण-सन्नाण महोमहाणं सपाडिहेश खडसडुआणं,
सद्देसणाणंदिय- सज्जणाणं, नमो नमो **ओम्** सपाजिणाणं।

अंत— हरख धरी अपच्छरावृंद **आवे स्नात्र** करीने,
इम आसा सभावे **जीहा** लगे गिर **जंबू दीपो**
हम तणां नाथ जीव **जीवो**।[३]

जैसा उदाहरणों से स्पष्ट है कि इसकी पद्यभाषा पर गुजराती प्राकृत का प्रबल प्रभाव है किन्तु गद्य की भाषा अपेक्षाकृत सुबोध मरुगुर्जर है। इसीलिए इसे मरुगुर्जर (पुरानी हिन्दी) की रचना माना गया है। इसके कर्त्ता का भी नाम-पता अज्ञात है।

शालिभद्र संझाय

(११ कड़ी की लघु कृति है।) इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ निम्नवत् हैं—

महिमंडल मांहि वीचरता रे, राजगृहि उद्यान,
सालिभद्र स्यूं परिवर्या रे, समोसर्या जिन वर्धमान।
सालिभद्र गाइइ करता ऋषि गुणग्यान रे, आनंद पाइइ।

अंत— अेह सुनी अणसण आदरी रे,
अणसरी सूर पदवास।

महाविदेह मां सीभस्येरे, लखमी लीला विलास रे।"[४]

रुपसेन की कथा (सं० १८०८) यह भी अज्ञात कवि कृत है। इसके आदि का दोहा प्रस्तुत है—

गवरीपूत्र समरूं गणनाह, वीरकथा मूझकरो पसाह।
नवतेरी नगरी नू रूप, राजा राज करे गणभूप।
भणसइ साठ अंतेवरी नार, करे राज रुडे वीस्तार।
पाषाणमइ गढ़ पोल प्रकार, जन्यमापूत्रे बेज रुयडे सार।
रुपसेन नइ रुपकुमार, राजा नइ मनि हर्ष अपार।
आगइ लाखी सीखामण हीई, बडे वीसामोता नवी दीये।
बइणीपूर पोतो ते राये, तब वलीआ नीसांणे धाये,
कव्यता कहै सोग इम टल्या, रुपसेन भावी भानइ मल्या।[५]

यह अज्ञात कवि जैनेतर प्रतीत होता है क्योंकि प्रारंभ में गणेश वंदना की गई है। संभतवः यह चारण परंपरा का कोई राजस्थानी कवि होगा क्योंकि इसकी भाषा पर डिंगल का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। यह जैन परंपरा का लेखक भले न हो पर रुपसेन की कथा जैन परंपरा की प्रसिद्ध कथा है- इसलिए जैन साहित्य में इसे स्थान देना उचित है।

अज्ञात लेखक कृत–

'शालहोत्र अथवा अश्व चिकित्सा'- (हिन्दी) १८ अध्यायों में सं० १८३२ से पूर्व लिखित शालहोत्र ग्रंथ है। इससे ज्ञात होता है कि जैन साहित्य में केवल धर्म-दर्शन ही नहीं बल्कि उपयोगी अन्य विषयों पर भी रचनायें हुई हैं। इसके कर्त्ता का नाम नकुल आया है। हो सकता है कि ये पाण्डवों के पाँच भाइयों में नकुल हों। उन्हें भी अश्व विद्या का ज्ञाता समझा जाता है।[६]

अज्ञात लेखक की रचना 'भोगल (भूगोल) पुराण' सं० १८४० से पूर्व लिखित एक गद्य कृति है और भूगोल शास्त्र पर आधारित है इसमें जैन मतानुसार सृष्टि की उत्पत्ति आदि विविध विषयों पर रोचक जानकारी हैं। यथा—

ॐ स्वामी भवण मंडाया, भौम मंडल का कथौं प्रमाण;
उत्पत्ति शिष्ट का कहौं बषांण।[७]
केती धरती केता आकास, केता मेरुमंडल कैलास"........इत्यादि।

इन अज्ञात कवियों ने नाना विषयों पर रचनाये की हैं जैसे सामुद्रिक सं०

१८४६, कोकशास्त्र सं० १८४९, जाम रावल रो बारमासो सं० १८५४ इत्यादि। बारमासे का प्रारंभ इस प्रकार हुआ है—

साल लै बारे मेघ श्रावण अंब धारा ऊछले;
बालहीया दादुर मोर बोले खाल चहुंदिस खलहले।

रचना की अंतिम पंक्तियाँ निम्नांकित हैं—

बीजली चमकैं वलै बादल अस्तिका दिन अधरें;
राजिंद यात्रा जाम रावल साम तिणरित संभरे।[८]

किसी अज्ञात कवि ने 'अमर सिंह शलोकों' की रचना की है यह ४३ गाथा की रचना सं० १८५७ से पूर्व की है।[९]

इस प्रकार हम देखते हैं कि अज्ञात लेखकों में जैन, जैनेतर और चारण परंपरा के मरुगुर्जर (हिन्दी) लेखक हैं। इसमें कोकशास्त्र, वार्त्ता, बारहमासा, शलोको आदि नाना काव्य विधाओं का प्रयोग मिलता है। किसी अज्ञात कवि ने 'जगदेव परमार वार्त्ता' लिखी है पर इसका रचना काल सं० १९११ से पूर्व बताया गया है जो हमारी समय-सीमा के बाद है इसलिए इसका विवरण छोड़ रहा हूँ। इसी प्रकार 'सदयवच्छ सावलिंगा की वार्त्ता' भी एक अज्ञात लेखक की रचना है पर यह कथा जैन साहित्य की सुपरिचित कथा है इसलिए इसका विवरण प्रस्तुत कर रहा हूँ—

आदि— शिवगति पांय लाग करि, सद्गुरु चरण पसाय;
सुखरंजन अनोपम तेहनी, कहीये बात बताय।

इसमें पद्य के साथ गद्य का भी प्रयोग किया गया है। इसकी अंतिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

राजा सदयवच्छर, सावलिंगा रे घणी प्रीत हुई।
धण्या सुख विलास कीधा, पूर्वलो लेख इण भव भोगव्यो।
सदयवच्छ सावलिंगा री वार्त्ता मन शुद्धे सांभले कहे वाचें तिणनें
घणों सुख होय होवें। खुस्याली ऊपजे। चतुर विचक्षण होवे।
सोग चिंता उद्वेग मिटे। घणा मंगलीक होवे।
मनवांछित सुख पामे। घणां विलास पामे।

अंत— नयणे सनेही जगत में पूर्व पुन्य प्रमाण;
कवि चतुराई केलवी, रचीस बात संयाण।[१०]

अज्ञात कवि कृत 'विसह थी माता जी नो (अथवा भवानी नो) छंद (६५ कड़ी); रुक्मिणी हरण २१८ कड़ी; नाग दमण ११८ कड़ी और नरसीजी रा माहेरा' आदि अनेक रचनायें इस शती में रचित उपलब्ध हैं। इनमें से कुछ का रचनाकाल नहीं है किन्तु देसाई महोदय ने इन्हें १९वीं (वि०) की रचनाओं में स्थान कुछ सोच समझ कर दिया होगा।[११] इनमें से कुछ की दो चार पंक्तियाँ नमूने के लिए उद्धृत कर रहा हूँ—

रुक्मिणी हरण–

उरवसी मेनका रंभा जसी अप्सरा,
मोहणी रोहणी रंभरा मूझरा।
सुणैह कहैक नारद मिलै सा सदा,
नाद अहिला पहिला दसुं नार रा।

अंत— आवते थै हरौ रस वरण-वरण,
मांडीयो द्वारामती मह महण,
करण लीधो जिही तिमो वसु हठ करी;
साइंपै सखीयो त्याग व्रज सुंदरी।[१२]

'नागदमण' की प्रारंभिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

वरतो सारद वीनवुं, सारद! करि सुपसाय;
पवाडो पनंगा सरस, यदुपति कीधो जाय।

उल्लेखनीय है कि ये रचनायें जैसे रुक्मिणी हरण, नागदमन आदि कृष्ण लीला पर आधारित वैष्णव साहित्य से संबंधित हैं। चूंकि ये रचनायें जैन भंडारों से प्राप्त है और लेखक अज्ञात है तथा भाषा मरुगुंर्जर तथा शैली जैन साहित्य जैसी है इसलिए इनमें से कुछ रचनाओं का नमूने के रुप में उल्लेख कर दिया गया है। कुछ इसी प्रकार की गद्य रचनायें भी अज्ञात लेखकों की प्राप्त हुई है। उनका विवरण आगे अलग से देने से पूर्व एक कोकशास्त्र (२५५कड़ी) की अंतिम पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं- जिसमें रति या संभोग के ८४ आसनों का उल्लेख है। यथा—

इम अनेक कामेश्वर तणां, आसन बोलूं थोड़ा-घणां।
कामकला प्रीछी जो भोग, जिम स्त्री सूषपामे संभोग।
जीवें नर स्त्री होय जोवना, मानमत्ता सारंग लोचना।
चौरासी आसन परमांया, कोकदेव कहों सुण राजान।[१३]

(ख)- १९वीं शती में रचित जैनेतर कवियों की कतिपय प्रमुख मरुगुर्जर रचनाओं का विवरण–

हरदास-

भंगीपुराण (३३४ कड़ी, सं० १८०१,)

आदि— पहिलो सरसतिमात प्रणमां,
प्रणमुं ते सिर अक्षर परमां।
भाजण भरम गुणेवी भ्रमां,
नमो ईस उमया दसन मां।

अंत— जपैं हरदास दूनो कर जोड़ि,
कीया अपराध अछिमि कोडि।
महेसर माफ करो मन माइ,
प्रभुजी राखै तोरे पाये।[१४]

इनकी भाषा में 'माफ' जैसे शब्द मिलते हैं; भाषा मिश्र है। प्रह्लाद ने वेताल पचीसी की रचना सं० १८०७ में पुरानी हिन्दी में किया।[१५] १८वीं सदी में भी एक प्रह्लाद नामक कवि हो गये हैं। इनका रचनाकाल मिश्रबन्धु विनोद में सं० १७३० बताया गया है।[१६]

वसु (वस्तो विप्र) रचना- विक्रम राय चरित्र (३७२ कड़ी सं० १८२४ से पूर्व), इसका प्रारंभ देखिये-

श्री वरदि वरदायक सदा, गजवदन गुण गंभीर,
एकदंत अयोनी संभव, सबल साहस धीर।

सरसती सामिणी वीनवूं, बहु करनि पसाय,
उजेणी ने राजीऊ, वरण किसि विक्रम राय।
स्वेत अंबर पंगरया, हंसवाहन माय;
कवि विप्र वसु अेम भणि, कर जोड़ि लागूं पांय।

अंत— अे विक्रमराय तणो चरित्र, भणि गुणि तस पुन्य पवित्र;
कवि वस्तो कहि कर जोड़ि, विक्रम नामि संपद कोड़ि।[१७]

इस रचना में कवि ने अपना नाम वसु, वस्तो दोनों दिया है। उज्जयिनी के

राजा विक्रमादित्य और वेताल पचीसी, सिंहासन वत्तीसी जैसी कथाओं को अनेक कवियों ने पुरानी हिन्दी में पद्यवद्ध किया।

विष्णु

रचना— 'चंदराजा ना दूहा' - यह पुरानी हिन्दी में विविध छंदों में पद्यपद्ध रचना है। यह १०६ कड़ी की रचना सं० १८२८ फाल्गुन कृष्ण १३ भौमवार को भुज में पूर्ण हुई। इसका प्रारंभ इस प्रकार है।

आदि— अलख निरंजन अेक तुं, देत सुबचन दात;
सरसति को समरन करुं, रचौं चंद की बात।

जैन धर्म के ग्रंथ में, कथा सुचौपइ जात,
'विसन' सोइ भाषा करी, चंदराय की बात।

इससे व्यक्त होता है कि प्रसिद्ध जैन कथा 'चंद चौपई' पर आधारित है। इसकी अंतिम पंक्तियाँ निम्नाङ्कित हैं—

कच्छ देस शुभ नाम भुज, तपेगो होउज्युं राय;
तिहि ठोर यह बात को, भाषा करी बनाय।

कवि ने अपना परिचय इन पंक्तियों में दिया है—

वल्लासुत जो विष्ण जी लोहरवंसी लेख,
चंदराय की बात यह, प्रगट करी तिहि पेख।

रचनाकाल— संवत अठारे विस अठ, फागुन तेरस साम,
भोमवार को प्रगट भई, चंद बात तिहि नाम।
चंदराय की बारता, विष्णु रची सो भाव,
आली सुत तकि अछ्र गावत मेरी अे साख।[१८]

सुदामो (विप्र)- रचना ' राधा जी नो सलोखो' (सं० १८२९ के आसपास) अपर नाम 'कृष्ण राधा नो रास' (२४ कड़ी); का आदि—

आज महापर्व मली करी हरि जी रमसुं रे होली;
तेव तेवडी जांता मली, गोरी नी टोली।

अंत— हरि गोवाल हुंकारिया, ग्वाले गोपी ने घेरी,
राधाइ हलधर मागीया, रास रमसुं फेरी।

रयने ऊगो रवि छोइयो, अंवर थयो रातो,
जमना जी ने कांठड़े रास करीनो मातो।
कृष्णा जी केरे कामनी राधा रमति राखो,
जे रे जोइ अे ते मागजो, भाम थी मन भाखो।
गाई सीष ने सांभलो, राधा हरि नो रास,
विप्र सुदामा वर्णवे, तिने वइकुंठे वास।[१९]

मिश्र बन्धु विनोद में 'सुदामा जी की वारखड़ी' का रचनाकाल सं० १९१७ से पूर्व बताया गया है।[२०] पता नहीं बारहखड़ी के रचनाकार सुदामा हैं अथवा किसी अज्ञात कवि ने सुदामा पर यह बारहखड़ी लिखी है। इसका प्रारंभ इस प्रकार हुआ है- "अथ श्री सुदामा जी की वाल्यषडि लिख्यते"। इसका आदि देखिये—

क का कलिजुग नाम अधारा, प्रभु समरो भव उतरो पारा।
सांध्य संगत्य करी हरिरस पीजे, जीवन जनम सुफल करि लीजे।

अंत— स सा सद्गुरु के चरना, रसनायक कहां लगि बरना।
श शा सोच विचार मट जबहिसे दीपक ज्ञान दियो जबहिसे।
नासो तिमर तब भयो प्रकासा, मानो रवि पूरण प्रभासा।[२१]

कृष्णदास- रचना 'कृष्ण रुक्मिणी विवाहुलो अथवा रुक्मिणी विवाह (सं० १८३० से पूर्व)

आदि— विद्रभ देस कुंदणपुर नगरी भीमष नृप तहां नवनिधि सगरी,
पंचपुत्र जाकइ कन्या रुषमणी, तीन लोक तरण सिरि हरणी।

रुक्मिणी की सुंदरता का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है—

मिरगराज कटि तटि मृगज लोचन, मिरगअंग बदन सुदे सही,
कहत कृस्नादास गिरधर उपज्य विद्रभ देसही।

अंत— रुषमणि जामउंती सत्यभामा सदाभद्रा आणी,
लक्षमनि कलही नितविदा, अे आंठउ पटराणी

रुकमणि व्याहु कथो कृष्णइजन, सीष सुणइ अर गावइ;
अर्थ कामना मुगतिफल, च्यारि पदारथ पावइ।
भगति हेति अउतार विमल रस, भूतल लीलाधारी;
गिरवरधर राधा वालंभ परिजन जाडो बलिहारी।

इस रचना को शास्त्री काशीराम करसन जी ने प्रकाशित किया है।[२२]

लाल- अभय चिंतामणि! गर्भ चेतावणी (८५ कड़ी)

आदि— गरभावास की मास में रच्यो रहयो ऊर्ध्व दस मास,
हाथ पाव सुक च्यार हैं, द्वार न आवै सांस।'

इन पंक्तियों से ज्ञात होता है कि इस रचना का नाम 'गर्भ चेतावणी' उचित है। राजस्थानी जैन साहित्य के इतिहास में गर्भ चेतावणी काव्य की परंपरा मिलती है। यह उसी प्रकार का काव्य है। अतः अभय चिंतामणि नाम अशुद्ध लगता है। इसकी अंतिम पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

लार पडयौ छोड़े नहीं, भरभर रालै बाध;
लाल कहै जम सुंजे ऊगरइ, जिनकै संबल साथ।
संभल जिनकै संग है, ते सुख पावत जीव,
जिहां जाइं विहाइं सुषी, राखै समरथ पीव।
जे भवतारण नुं आवसी, जे जमलोक न जाय,
सदा सनेही पीव नैं, सहजै रहै समाय।[२३]

कबीर पंथियों जैसी यह कविता संभवतः दादू संप्रदाय के लालदास कवि की 'चिंतावणी' है जिसकी सूचना राजस्थानी साहित्य की रुपरेखा के पृ० १३६ पर दी गई है। वहाँ इसका रचनाकाल सं० १८३४ बताया गया है।

थोभण (दास)–

रचना- बारमास अथवा कृष्ण बिरह ना महिना (सं० १८८४ से पूर्व)

आदि— कारितक मासे मेहलि चाल्या कंत रे वाला जी;
प्रीतडली तोड़ि आंण्या अंत मारा बाला जी।
प्रीऊ जी माहरा! स्यूं चाल्या परदेस अे बाला जी;
मंदिरीया मां हूं वालेवेस मारा बाला जी।

अंत— सुख सज्या मां नंदना लाल बाला जी,
वीठलवर! हसी लडावो लाड मारा वाला जी।
जन्म जन्मनां चरणे राखो वास रे वाला जी।
थोभण ना सांमी पूरो आस मारा वाला जी।''[२४]

अजयराज–

रचना- सामुद्रिक भाषा ग्रंथ (सं० १८९० से पूर्व)

आदि— अे बालक सुभ लच्छन पूरे, देषत जाइ दोष दुष दूरे,
आगम अगम आदि सुभ साखी, या सामुद्रिक ग्रंथ में भाखी।
आगम लच्छन अंग जनावे, सवे अवधि पूरे फल पावे,
ताका अब कछु कहूं विचार, समझत कहत सुनत सुखकार।

अंत— जो जाने सो जांन, दाता होहि अजान पुनि,
जानपनो अरु ध्यान, अजेराज दुविधि निपुन।
जो कोऊ या ग्रंथ को चतुर पढे चित लाय,
लछन तिय पुरुष के, समझे सबि सभाय।''[२५]
इति सामुद्रिक भाषा ग्रंथ पुरुष स्त्री वर्णन संपूरण।

भोजे-

इनकी रचना का नाम चाबखा है यह पद संग्रह है। इसमें कुल १६ पद संग्रहीत हैं। ये पद प्राय: ३,४ से लेकर ५,७ कड़ी तक के हैं। इनमें से कुछ भक्ति, प्रपत्ति पर और कुछ वैराग्य और संसार की क्षणभंगुरता पर आधारित मार्मिक पद है। कुछ पदों की प्रथम पंक्तियाँ आगे प्रस्तुत हैं—

प्राणिया भजि लनि करतार, आ सपनु छे संसार।
अथवा-गुरव्वा जनम जियो छे तारो, बांधी कर्म तणो भारो।
अथवा-पटल षरषरो थासे रे, बाजी हाथ थि जासे।

अंतिम पद की प्रथम पंक्ति निम्नाङ्कित है—

वाणिया जोई करो बेपार, आगल छे पंडाद्वार। इत्यादि

यह रचना 'प्राचीन काव्य माला ग्रंथ ५ और भोजा भक्त नो काव्य प्रसाद' (सं० मन सुखलाल सांवलिया) तथा अन्यत्र से भी प्रकाशित एक लोकप्रिय काव्य कृति है। यह सं० १९०० अर्थात् हमारे लेखन की अंतिम अवधि की कृति है इसलिए उस समय तक की काव्य प्रवृत्ति एवं काव्य भाषा आदि का स्वरुप समझने के लिए महत्वपूर्ण है। अत: इसका उल्लेख सोदाहरण करना आवश्यक प्रतीत हुआ।

इस प्रकरण के साथ अज्ञात पद्य लेखकों और जैनेतर लेखकों की कृतियों का विवरण समाप्त किया जा रहा है। आगे कविपय ज्ञात अज्ञात गद्य लेखकों का विवरण एवं उद्धरण देकर यह संकेत करने का प्रयत्न किया जायेगा कि उन्नीसवी शती का अंत होते-होते मरुगुर्जर (पुरानी हिन्दी) का युग समाप्त हो गया और आधुनिक हिन्दी (खड़ी बोली), राजस्थानी एवं गुजराती का गद्य-पद्यात्मक-साहित्य स्वतंत्र रूप से विकसित हुआ।

नाना विधाओं में रचित उस विशाल जैन साहित्य का एकत्र विवरण देना दुष्कर है अत: उसके भिन्न-भिन्न प्रदेशों में विकसित साहित्यिक इतिहास का विवरण गद्य, पद्य, उपन्यास, नाटक आदि भिन्न-भिन्न साहित्य रूपों में प्रस्तुत करना युक्तियुक्त होगा।

(ग) मरुगुर्जर (हिन्दी) की कतिपय ज्ञात एवं अज्ञात लेखकों की गद्य रचनाओं का विवरण–

१९वीं शती में भारत के विभिन्न प्रदेशों की आधुनिक भाषाओं में गद्य का विकास हुआ। बंगला, हिन्दी, गुजराती, मराठी के अतिरिक्त तैलगु, कन्नड आदि द्रविड़ भाषाओं में भी गद्य का विकास समुचित रीति से इसी शताब्दि में संभव हुआ। इन भाषाओं के साहित्येतिहास ग्रंथों का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि कतिपय अखिल भारतीय कारण थे जिनकी वजह से इन भाषाओं में गद्य का विकास इस शती में संभव एवं सुगम हुआ।

इस खण्ड के प्रथम अध्याय में राजनीतिक परिस्थितियों का उल्लेख करते समय यह बताया गया है कि मुगल साम्राज्य के पतन के साथ कई छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्य स्थापित हो गये। अवध, बंगाल की नबाबी, राजपूतों, सिक्खों, जाटों की स्वतंत्र रियासतें और दक्कन में निजाम, मैसूर और मराठों की स्वतंत्र रियासतें इसी अवधि में स्थापित हुईं। इसी शती में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का राज्य विस्तार भी हुआ। कम्पनी का प्रभाव क्रमश: बढ़ता गया और देशी रियासतों पर कम्पनी का शिकंजा कसता गया। दिल्ली दरबार के उजड़ने पर तमाम व्यापारी, कलाकार, साहित्यकार दिल्ली छोड़कर देशी रियासतों में जाकर आश्रय लेने लगे इसलिए वहाँ दिल्ली की भाषा-खड़ीबोली के प्रचार प्रसार का अवसर मिला। स्थानीय भाषाओं में साहित्य, व्यापार, कारोबार और शिक्षा शुरु हुई इसलिए स्थानीय भाषाओं में गद्य के विकास का अवसर मिला।

कम्पनी सरकार ने शिक्षा प्रचार का उद्यम किया। अनेक विषयों की शिक्षा के लिए प्रादेशिक भाषाओं में गद्य के विकास का अच्छा अवसर मिला। पद्य में भूगोल, गणित, विज्ञान, इतिहास आदि विषयों की शिक्षा देना असंभव था, इसलिए गद्य का विकास हुआ।

अंग्रेजों ने फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना की और वहाँ बंगला, हिन्दी, मराठी आदि भाषाओं की गद्य पुस्तकें तैयार हुई ताकि अंग्रेज अफसरों को विभिन्न प्रदेशों की भाषाओं का समुचित शिक्षण दिया जा सके। इस प्रकार प्रादेशिक भाषाओं में गद्य का विकास आसान हुआ।

अंग्रेजों ने ईसाई धर्म प्रचार के लिए विविध प्रादेशिक भाषाओं में गद्य में पैम्फ्लेट छपवाये, प्रकीर्णक बाँटे, जो प्राय: जनता को समझाने के लिए स्थानीय बोलचाल की

गद्य भाषा में होते थे। इस प्रकार वे भी भारतीय भाषाओं के गद्य विकास में परोक्ष रूप से सहायक हुए।

उनके धर्म प्रचार का विरोध करने के लिए राजस्थान, गुजरात, बंगाल, पश्चिमोत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र आदि प्रदेशों में कई संस्थायें स्थापित हुईं। पत्र पत्रिकायें निकलीं; पुस्तकें, प्रकीर्णक छापें गये जिनमें भारतीय धर्म-संस्कृति का समर्थन, प्रचार-प्रसार और मंडन तथा ईसाइयों के तर्कों का खण्डन किया गया। इस प्रकार खण्डन-मंडन से प्रादेशिक भाषाओं के गद्य का पुष्ट विकास तेजी से हुआ।

धर्म दर्शन के अलावा राजनीति, अर्थनीति, विज्ञान, तकनीकी और प्राविधिक शिक्षा आदि विविध विषयों से संबंधित अभिव्यक्ति पद्य में संभव न थी इसलिए गद्य का विकास आवश्यक हो गया था। इस संक्रमण काल में अंग्रेजों, मुसलमानों और हिन्दुओं के पारस्परिक संवाद का माध्यम गद्य ही था जिसके माध्यम से पारस्परिक कारोबार, विचारों का आदान प्रदान और भाव विनिमय संभव था। इसलिए यह शताब्दी भारतीय आधुनिक भाषाओं के इतिहास में गद्य के विकास के लिए स्मरणीय है। आगे जो मरुगुर्जर गद्य के ज्ञात-अज्ञात लेखकों की रचनाओं का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है उससे स्पष्ट होगा कि पुरानी हिन्दी (मरुगुर्जर) गद्य का भी इस शती में अच्छा विकास हुआ। भाषा प्रसाद गुण संपन्न हुई, सुबोध हुई और भदेसपन, गवांरुपन तथा अस्पस्टता आदि दुर्गुणों से मुक्त होकर ॠजु रुप में लिखी जाने लगी।

लेखकों का विवरण देते समय पद्य रचनाओं के साथ उनकी प्रमुख गद्य रचनाओं का परिचय या नामोल्लेख कर दिया गया है, फिर भी बहुत सी ज्ञात-अज्ञात लेखकों की गद्य रचनायें छूट गई थी। उनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास आगे किया जा रहा है।

गद्य रचनायें--

जंबू अज्झायण बाला व बोध- बालावबोध गद्य की वह टीका शैली है जो अत्यन्त सरल होने के कारण बालकों के लिए भी सुबोध होती है। प्रस्तुत बाला व बोध की मूल रचना पद्मसुंदर द्वारा प्राकृत में की गई थी। इसके प्रारंभ और अंत की पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं।

आदि--- ते काल ने विषे-ते समय ने विषे राजगृही नगर ने विषे होत्था।

इस एक पंक्ति के देखने से स्पष्ट होता है कि पूरी पंक्ति में केवल 'काल' का अर्थ 'समय' बताया गया है और कोई अंतर नहीं है। इसकी अंतिम पंक्ति देखिए—

अेहवो जंबू चरित्र सांभली से सदहस्यें ते,
प्राणी आराधक जीव जांणवा तो प्राणी मोक्ष जास्ये।[२६]

गुणट्ठाणा द्वार, श्रीपाल कथा टव्वा, भरतेश्वर बाहुवलि वृत्ति स्तवक आदि गद्य कृतियों के नाम से स्पष्ट है कि टव्वा, वृत्ति आदि भी टीका के ही विभिन्न गद्य रुप हैं। भरतेश्वर बाहुबलि वृत्ति की मूल रचना शुभशील ने सं० १५०९ में संस्कृत भाषा में की थी, प्रस्तुत रचना उसी की टीका है।

गौतम पृच्छा बाला० का मूल ग्रंथ प्राकृत में था, इसकी गद्य भाषा का नमूना प्रस्तुत है—

तीर्थनाथ श्री महावीर ने नमस्कार करी नई....
इह गौतम तेह वे स्वरुप सांभलो स्या पदार्थ
थी भला भुंडा सुख दुख। अथ हवें श्री महावीर[२७]
नी वाणी नी अतिशय ऊपरि डोकरी नी कथा लखीइ छे।

धर्म परीक्षा कथा बाला०, अष्टाह्निका महोत्सव टव्वो और व्याख्यान श्लोक आदि इसी प्रकार की अज्ञात लेखकों द्वारा लिखित टीका संबंधी गद्य कृतियाँ हैं। प्राय: ये सभी गद्य रचनायें टीकायें हैं। मूल गद्य रचना का मरुगुर्जर गद्य साहित्य में प्राय: अभाव है। कुछ धार्मिक मान्यतायें भी ऐसी थी जिनके चलते मूल रचनायें नहीं हो सकीं।

सम्यकत्व परीक्षा बाला० का मूल ग्रंथ विवुधविमल द्वारा संस्कृत में लिखा गया था। यह सं० १८१३ की रचना है।

आदि— प्रणम्य पार्श्वनाथेशं गुरुणां चरणांबुजं
भव्यजीवोपकाराय सम्यक बोधो वितन्यते।

'संघयणी रयण टव्वो' का मूल ग्रंथ श्री चंद्र कृत प्राकृत भाषा में है। भव वैराग्यशतक बाला०, मौन अेकादशी कथा बाला०, रोहिणी व्रतोद्यापन, सप्तव्यसन कथा समुच्चय टव्वो, कार्तिक पंचमी कथा टव्वो, विंब प्रवेश विधि, कल्पसूत्र टव्वार्थ आदि अनेक रचनायें इसी प्रकार की हैं जिनके गद्य के नमूने अत्यल्प हैं जिनके द्वारा गद्य का स्वरुप और भाषा की प्रकृति आदि का विश्लेषण संभव नहीं है। जहाँ दो चार पंक्तियाँ गद्य की प्राप्त हैं उनसे अर्थ स्पष्ट कम होता है बल्कि लद्धड़ गद्य शैली के कारण अर्थ मूल की तुलना में और दुर्बोध हो जाता है। जो हो, जिन्हें अधिक जिज्ञासा हो वे लोग इनकी पाण्डुलिपियाँ ढूढ़ कर तत्कालीन गद्य का स्वरुप समझ सकते हैं। अत: उनका नाम और जहाँ जितना संभव और सुलभ है वहाँ उद्धरण-विवरण भी प्रस्तुत करने का

प्रयत्न किया जा रहा है।

'कल्यान्तर्वाच्य व्याख्यान' का आदि—

प्रथम कल्पवाचना नो विधि लिखीइ छइ।
कल्प कहिता आचार कहीई छे।

अंत— इति कल्पवाचना विधि', अे श्री कल्पसूत्रे
त्रिणि अधिकार कहिया ते गाथा।

गुर्वावली-

इसमें विजयदेवसूरि, विजयप्रभसूरि से लेकर विजयधर्मसूरि तक का क्रमिक उल्लेख है। विजय धर्म सं० १८०९ में पट्टासीन हुये थे अत: रचना उसी समय के आसपास की होगी। इसका आदि इस प्रकार है—

श्री गुरु परंपरा पट्टावली लिखीइ छे!

इसमें प्रकृत की गाथा देकर तत्पश्चात् अर्थ दिया गया है, यथा—

अे श्री पंजुसण कल्प गुरुपरंपरा आव्यो थको आज वंचाइ छे।
साभलीइ छेइ। ते माहे श्रीमंत सुमनुं हेतु ते कारण थी गुरुपरंपरा कहीस्ये।[२८]

उत्तराध्ययन टब्बार्थ-

आदि— संयोग कहतां सयाग वाहर मतापिता,
परीसाह्यदिसह बातु तेणइ लवणेकर
दृव्य भाव विहमकर धर रहित......
वांछा रहित इह लोक विषइ, परलोक विषे निश्रित
रहित, वसांलै करै ताछपुं चंदनइ करै लेप्युं बिउ
ऊपरि सरिखु भाव, जम्यै अणजम्यै सरिखो भाव।

अंत— च्यारि महाव्रत रुप, जे धर्म, जेहवो पंच महाव्रत रुप
अे उयदेस्यो वर्धमानइ, तेहने धर्म पार्श्व महामुनिनो उपदेसउं कहिउ।[२९]

कल्पसूत्र बाला०-

आदि— भगवंत श्री महावीर तित्र ज्ञान हुंती
मति श्रुति अवधि, इम जाणइ। जे चवीसि पणि

चववा वेला न जाणइ चव्या पीनै जाणै ज चव्या।
जिणै रात्रिइ श्रमण भगवंत श्री महावीर देवानंद
नामइ ब्राह्मणी जलधंर जेहनो गोत्र तेहनी कुखै
गर्भ पणइ अवतर्यो तिणै रात्रिमइ विषै देवानंदा ब्राह्मणी
सिज्यानै विषै अतिहि सूता नहीं अति जागता नहीं।[३०]

कल्पसूत्र टीका–

अंत— श्री नेमनाथ, वर्षाकाल तणें
चोथ मास, सातवें पखवारे, काती महीने, अंधार पख;
बारस तणें दीहाड़े, अपराजित विमान, तिहां वतीस सागर नो
आउखो भोगवी चवता हुआ, इही जंबूदीपे, बोही भरत क्षेत्रे
सारीपुर नगरे समुद्रविजे राजा भार्ज्या सेवादेवी, आधी राते
तणे समै विसाखा नक्षत्र चंद्रमा तणे संजोगे गर्भपणे
अवतर्या। चवदे सूपना दीठा।[३१]

'सम्यकत्त्व कौमुदी कथानक' बाला०–

आदि— श्री वर्धमान चतुर्विशिंति तीर्थंकर ने नमस्कार करीने,
किंसा छे वर्धमान, जगत कहीयै तीन त्रिभुवन
का स्वामी छइ, हु कौमुदी सम्यकत कथा कहुं छुं किसवास्ते,
जे सम्यकत घारी श्रावक छे तिउकु दृष्टकरण के वास्ते,
इस जंबुदीपैं भरत क्षेत्र विषइ मगध देसइ राजगृही
नगरी छो, तिस नगरीये निरंतर महामहोछव होइ।
प्रभूत घणा वर प्रधान भगवंत का देहरा हुइ।[३२]

आगे कुछ अज्ञात लेखकों के द्वारा रचित बाला व बोध और टव्वों की सूची मात्र प्रस्तुत की जा रही है ताकि यह अनुमान किया जा सके कि मरुगुर्जर में पर्याप्त गद्य साहित्य अन्य विभाषाओं की तरह १९वीं (वि०) शती में जैन विद्वानों द्वारा लिखा गया पर वे इतने निस्पृह साधु लेखक थे जिन्होंने न रचनाओं में अपना नाम-पता दिया, न लेखन द्वारा यश कामना की, अस्तु; सूची— नवतत्व बाला०, संबोध सत्तरी बाला०, अणुत्तरो बेवाई सूत्र बाला०, दीपमालिका कल्प बाला०, षडशीति कर्म ग्रंथ बाला०, मुहूर्त्त मुक्तावली बाला०, कल्पसूत्र बाला०, रत्न संचय बाला०, दशवैकालिक सूत्र बाला०, जंबूचरित्र बाला०, जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति बाला०, दंडक पर बाला०, जंबूद्वीप संग्रहणी बाला०, औपपातिक सूत्र बाला०, चाणक्य नीति बाला०, पुराण श्लोक संग्रह बाला०,

नवतत्व बाला०, पट्टावली, शत्रुंजय महात्म्य बाला०, जंबू अध्ययन चरित्र बाला०, नंदी सूत्र बाला०, प्रज्ञापना सूत्र बाला०, चित्रसेन चरित्र बाला०, चउशरण पयन्ना बाला०, भगवत् गीता भाषा टीका, योग विधि, दंडक नोटवार्थ, ज्ञानपंचमी कथा बाला०, पांच कर्म ग्रंथ बाला, गौतम पृच्छा बाला०, दशवैकालिक सूत्र बाला०, विवाह पडल बाला० ऊववाई सूत्र बाला०, नवकार बाला०, दश प्रत्याख्यान बाला०, जीव विचार बाला०, जगदेव परमार नी वार्त्ता, विवेक मंजरी वृत्ति बाला०, रुपसेन कथा पर बाला०, सकलार्हत बाला०, धन्य (धन्ना) चरित्र सस्तवक; आवश्यक सूत्र बाला०, जीव विचार बाला०, ज्ञाता सूत्र बाला०, दानकल्पद्रुम बाला०, प्रतिष्ठा विधि, षट्पंचाशिका सस्तबक, सूसढ़ चरित्र बाला०, जीव विचार टबो, संत्तर भेदी पूजा बाला०, गणिपति चरित्र बाला०, रुपसेन चरित्र बाला०, चमत्कार चिंतामणि बाला०, क्षेत्रसमास बाला०, आराधना सूत्र बाला०, नंदी सूत्र बाला०, चित्रसेन पद्मावती बाला०, पक्खी सूत्र बाला०, भवभावना बाला०, गिरिनार कल्प बाला०, महीपाल चरित्र बाला०, क्षेत्रसमास बाला०, उत्तम कुमार चरित्र बाला०, स्वप्रविचार स्तबक, सूक्तावली स्तबक, अक्षयतृतीया कथा बाला०, शांतिनाथ चरित्र बाला०, वृद्धचारणक्य नीति पर बाला०, चतुर्मासी व्याख्यान, होली कथा, उपदेश प्रासाद टव्वा सहित, सप्तस्मरण बाला०, विवेक विलास बाला०, श्रीपाल रास बाला०, उपदेश रसाल जीवाभिगम सूत्र बाला०, लघु संग्रहणी बाला०, लघु चाणक्य नीति स्तबक, प्रश्नोत्तर ग्रंथ, भाव षट् भिंशिका पर बाला०, बंकचूलिया बाला०, आत्मशिक्षा बाला०, सत्तरीसय स्थानक, मुनिपति चरित्र, नारचंद्र स्तवक, शांतिनाथ चरित्र बाला० भक्तामर मंत्र कल्प इत्यादि सैकड़ों बाला व बोध, टव्वा, स्तबक और टीका आदि गद्य ग्रंथ इस शती में जैन पंडितों ने प्रस्तुत किए। कुछ मूल ग्रंथों की कई विद्वानों ने टीकायें, टव्वा, स्तबक आदि लिखे इसलिए ग्रंथों के नाम एकाधिक बार आ गये हैं। कुछ ग्रंथों पर तो बीसों टव्वा, बाला व बोध लिखे गये जैसे कल्पसूत्र, सम्यकत्व, नवतत्व, ज्ञातासूत्र, दंडक आदि प्रसिद्ध आगम ग्रंथों पर अनेक लोगों ने टीकायें की। दु:ख इस बात का है कि इनके लेखकों का नाम और इतिवृत्त ज्ञात नहीं हैं और गद्य के नमूने भी सुगमता से सुलभ नहीं है; इसलिए इतिहास लेखन के लिए अपेक्षित सामग्री के अभाव में केवल सूची संग्रह से संतोष करना पड़ रहा है। फिर भी इस विस्तृत सूची से यह बात तो पुष्ट और प्रमाणित होती ही है कि अन्य आ० भा० भाषाओं की तरह इस भाषा शैली में भी जैन विद्वानों ने प्रचुर गद्य की रचना की।

इस शती में केवल प्रचुर परिमाण में रचना नहीं हुई बल्कि उनकी भाषा शैली भी उत्तरोत्तर परिष्कृत प्रसाद गुण संपन्न और मुहावरेदार होती गई। कुछ उदाहरणों द्वारा अपनी बात प्रमाणित करना आवश्यक समझता हूँ। ज्ञानानंद कृत श्रावकाचार (सं० १८५८) की भाषा का नमूना पहले प्रस्तुत है—

सर्व जगत की सामग्री चैतन्य सुभाव बिना
जडत्व सुभाव में धरे फीकी जैसे लून बिना
अलौनी रोटी फीकी। तीसो ऐसो ज्ञानी पुरुष
कौन है सो ज्ञानामृत नै छोड़ उदाधीक आकुलता
सहित दुषने आचरै? कदाचित न आचरै।[३३]

श्री जयचंद्र जी की गद्य रचना का एक नमूना—

जीव कर्म रहित होय तब तौ ऊर्द्ध गमन स्वभाव
है, सो ऊर्द्ध ही जाय, अर कर्म सहित संसारी है सो
विदिशा कू बर्जि करि चारि दिशा अर अध ऊर्द्ध
जहाँ उपजना होय तहाँ जाय है।

इस गद्य खण्ड की भाषा परिमार्जिक और प्रसाद गुण संपन्न है। यह रचना सं० १८५० की है।[३४]

इस उद्धरणों से यह भी स्पष्ट होता है कि पुरानी हिन्दी का झुकाव क्रमशः खड़ीबोली की तरफ हो रहा था। सच तो यह है कि १९वीं शती (वि०) में खड़ीबोली गद्य भाषा के रुप में अखिल भारतीय मान्यता प्राप्त कर रही थी और स्वतंत्रता संग्राम काल से लेकर देश के स्वतंत्र होने तक उसे राष्ट्रभाषा और कारोबार की भाषा के रुप सभी प्रान्तों के महापुरुष मान्यता दे चुके थे। उनके उद्धरणों से ग्रंथ का कलेवर बढ़ाना व्यर्थ है।

इस शती के पश्चात् अखिल भारतीय साहित्य एक नये युग में प्रवेश करने जा रहा था। इस काल की गद्य भाषा शैली में ही नहीं अपितु पद्य की भाषा शैली में भी समुचित परिष्कार परिवर्तन, परिवर्द्धन हुआ और राजस्थानी, गुजराती, खड़ीबोली आदि का साहित्य स्वतंत्र रुप से विकसित हुआ। इसलिए मरुगुर्जर (पुरानी हिन्दी) साहित्य की सीमा इसी शती के साथ समाप्त होती है। इसकाल के साहित्यकारों ने अपनी विविध प्रकार की रचनाओं द्वारा नवयुग के साहित्यिक विकास के लिए पर्याप्त अनुकूल क्षेत्र तैयार किया जिसका संक्षिप्त सर्वेक्षण-भाषा, शैली, काव्य विद्या और छंद अलंकार आदि की दृष्टि से आगे किया जा रहा है।

उपसंहार

हिन्दी जैन साहित्य का महत्त्व एवं मूल्याङ्कन–

मरुगुर्जर (पुरानी हिन्दी) भाषा में जैन काव्य साहित्य का विशाल एवं संपन्न भण्डार है जो विविध काव्यरुपों, देशियों और ढालों में प्रणीत है। इसके संपन्नता और विशालता की प्रशंसा महामना पं० मदन मोहन मालवीय, विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर और डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या जैसे मनीषियों ने मुक्त कंठ से की है। ग्रियर्सन ने इसकी सराहना करते हुए कहा था। 'इसमें ऐतिहासिक महत्त्व का विपुल साहित्य भरा पड़ा है।'[३५] १२वीं शती (विक्रमीय) में इस देश में शैवमत का व्यापक प्रचार था; पूर्वी भारत में तंत्र-मंत्र प्रधान वज्रयानी संप्रदाय का और पश्चिमी भारत के राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक जैसे प्रदेशों में संयम प्रधान जैन धर्म का प्रचुर प्रभाव था।

इस धार्मिक विविधता में अद्भुत एकता थी। धर्म के नाम पर कोई उपद्रव नहीं होता था। सर्वधर्म समभाव यहाँ के संस्कृति की प्राचीन विशेषता थी, किन्तु इसी समय मुसलमानों ने धर्म के नाम पर अत्याचार और क्रूर व्यवहार प्रारंभ कर दिया। उन्होंने आक्रमण और विद्वेष, लूटपाट, आगजनी, तोड़फोड़ द्वारा मध्यदेश के साहित्य, कला, संस्कृति का विनाश कर दिया जो साहित्य या सांस्कृतिक अवशेष उस काल का उपलब्ध होता है वह प्राय: राजस्थान और गुजरात आदि पश्चिमी प्रदेशों का है जो तब तक मुसलमानी आक्रमण से या तो बचे थे या सफलतापूर्वक आक्रमणों का सामना करके अपने संस्कृति को बचाने में सक्षम रहे। ऐसी स्थिति में राष्ट्रभाषा हिन्दी का ऐतिहासिक विकास क्रम एवं उसके साहित्य का प्रामाणिक इतिहास जानने का अत्यन्त विश्वसनीय और सुलभ साधन पुरानी हिन्दी (मरुगुर्जर) का जैन साहित्य है जो विविध ज्ञान भंडारों में श्रद्धापूर्वक सुरक्षित रखा गया है।

पहले कहा जा चुका है कि किसी भाषा और उसके साहित्य का विकास राज्याश्रय, धर्माश्रय या जनाश्रय में होता है और सुरक्षित रहता है। हिन्दी को केवल जनाश्रय पर निर्भर रहना पड़ा किन्तु मरुगुर्जर (पुरानी हिन्दी) की कहानी उससे भिन्न रही। इसे गुजरात, मालवा और राजस्थान में राष्ट्रकूट, परमार और सोलंकी शासकों का संरक्षण प्राप्त हुआ। मान्यखेट के राष्ट्रकूट शासकों के मंत्री प्राय: जैन हुआ करते थे। वे लोग जैन मुनियों और कवियों का सम्मान करते थे। बरार में उन दिनों जैन वैश्यों का प्राधान्य था, उन्होंने मरुगुर्जर जैन साहित्य को पर्याप्त प्रोत्साहन-संरक्षण प्रदान किया। राष्ट्रकूटों के पतन के पश्चात् सोलंकी शासकों के समय जैनधर्म को राजधर्म की मान्यता मिल गई थी। इसलिए राष्ट्रकूटों की छत्रछाया में जिस तरह स्वयंभू और पुष्पदंत जैसे जैन महाकवियों

का अभ्युदय हुआ उसी प्रकार सोलंकी शासक सिद्धराज और कुमारपाल के शासन काल में आचार्य हेमचन्द्र जैसे महान् प्रतिभाशाली, कलिसर्वज्ञ विद्वान् एवं संत का आविर्भाव संभव हुआ।

राजाश्रय के अलावा इस साहित्य को जैन धर्माचार्यों ने पर्याप्त संरक्षण एवं पोषण दिया। जैन धर्म में दान के सप्त क्षेत्रों में तृतीय क्षेत्र शास्त्रलेखन एवं संरक्षण का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक साधु एवं श्रावक के लिए शास्त्राध्ययन, लेखन, संरक्षण आवश्यक धार्मिक कृत्य माना गया है। अत: जैन मंदिरों और ग्रंथ भण्डारों में हस्तप्रतियों के लेखन और संरक्षण का उत्तम प्रबन्ध किया जाता था। जैनसंघ द्वारा स्थापित-संचालित ग्रंथभण्डारों में जैसलमेर और बीकानेर के विशाल ज्ञानभण्डारों के अलावा अभय जैन ग्रंथालय, अनूप पुस्तकालय, प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान आदि संस्थानों ने इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान किया है। इनके ग्रंथागारों में अपार जैन साहित्य सुरक्षित है।

जैन धर्मावलंबी अपने उदार, अहिंसावादी, अनेकांतवादी और सहिष्णु दृष्टिकोण के कारण कभी धार्मिक संघर्ष में नहीं उलझे। जैन साधु संयमी, तपस्वी और प्रभावशाली हुए जिनका राजदरबारों में भी पर्याप्त प्रभाव था। साथ ही जैन श्रेष्ठी श्रावकों की भी मुसलमानी दरबारों में अच्छी साख थी जिसके कारण जैन ग्रंथ भण्डारों पर मुसलमानों की क्रूर दृष्टि शायद ही कभी पड़ी। इसलिए यह साहित्य राज्याश्रय,धर्माश्रय प्राप्त कर खूब फला फूला और सुरक्षित रहा। जबकि मध्यदेश का हिन्दी साहित्य मुसलमानी आक्रमणों के फलस्वरुप नष्ट हो गया। गाहड़वाल राजाओं ने भी स्थानीय साहित्य की तुलना में संस्कृत भाषा और साहित्य को अधिक महत्व दिया। इसलिए मध्यदेश की भाषा और उसके साहित्य को जानने के लिए पश्चिमी प्रदेश की मरुगुर्जर भाषा उसके साहित्य का महत्व अक्षुण्य है।

इन ग्रंथ भण्डारों में सुरक्षित हस्तप्रतियों में समस्त उत्तर भारत के महत्वपूर्ण इतिहास की प्रामाणिक सामग्री के साथ ही भाषा विकास एवं साहित्यिक प्रवृत्तियों की क्रमिक कड़ियाँ सुरक्षित है। इनके आधार से हम उत्तर भारत के इतिहास, भाषा, साहित्य और संस्कृति का सही स्वरुप समझ सकते हैं। इनके संबंद्ध में अप्रमाणिकता का प्रश्न ही उठता क्योंकि ये धर्मबुद्धि से प्रेरित अत्यन्त श्रद्धापूर्वक लिखी गई और सुरक्षित रखी गई है जबकि अन्य साहित्य की उतनी प्राचीन एवं प्रामाणिक प्रतियाँ उपलब्ध न होने के कारण मूल ग्रंथ का वास्तविक पाठ और उसकी भाषा का सही स्वरुप निर्धारित करना कठिन कार्य है। ये हस्तप्रतियाँ प्रत्येक शताब्दी में प्रत्येक चरण की सन्-संवत्वार उपलब्ध होने के कारण ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक अध्ययन का ठोस आधार प्रस्तुत करती है। यह खेद की बात है कि इस विशाल एवं प्रामाणिक साहित्य के प्रति हिन्दी के

साहित्येतिहासकार और पाठक उदासीन रहे हैं और अभी भी हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हेमचन्द्र, सोमप्रभसूरि, मेरुतुंग, विद्याधर और शाङ्गधर का संक्षिप्त परिचय देकर हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस विशाल साहित्य का खाता बन्द कर दिया है।

वस्तुतः इस विशाल साहित्य में जैनधर्म की कोरी उपदेशपरक रचनायें ही नहीं है बल्कि विपुल सरस काव्य साहित्य भी है जो सहृदयों के सहानुभूतिपूर्ण कृपादृष्टि की प्रतीक्षा कर रहा है। आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने जोर देकर लिखा है— " इस साहित्य को अनेक कारणों से इतिहास ग्रंथों में सम्मिलित किया जाना चाहिए। कोरा धर्मोपदेश समझ कर छोड़ नहीं देना चाहिए। धर्म वहाँ केवल कवि को प्रेरणा दे रहा है। जिस साहित्य में केवल धार्मिक उपदेश हो उससे वह साहित्य निश्चित रुप से भिन्न है, जिसमें धर्म भावना प्रेरक शक्ति के रुप में काम कर रही हो, जो हमारी सामान्य मनुष्यता को आन्दोलित, मथित और प्रभावित कर रही हो।" आचार्य द्विवेदी का मत था कि धार्मिक प्रेरणा या आध्यात्मिक उपदेश को हमेशा काव्य का परिपंथी नहीं समझा जाना चाहिए अन्यथा हमारे साहित्य की विपुल संपदा चाहे वह स्वयंभू, पुष्पदंत या धनपाल की हो या जायसी, सूर, तुलसी की हो, साहित्य क्षेत्र से अलग कर दी जायेगी। इसलिए धार्मिक होने मात्र से कोई रचना साहित्य क्षेत्र से खारिज नहीं की जा सकती।

लौकिक कहानियों को आश्रय करके धर्मोपदेश देना इस देश की प्राचीन प्रथा रही है। मध्ययुग में साहित्य की प्रधान प्रेरणा धर्मसाधना ही रही है और धर्मबुद्धि के कारण ही आजतक प्राचीन साहित्य सुरक्षित रह सका है। जैन साहित्य के संबंध में आ० द्विवेदी का यह अभिमत शत-प्रतिशत सही है।

साहित्य के प्रति जैन साहित्यकारों का दृष्टिकोण–

जीवन और जगत के प्रति जैनाचार्यों का एक विशेष दृष्टिकोण है। संसार की नश्वरता, समत्वदृष्टि, जीवदया और नैतिक संयम-नियम पर उनका विशेष ध्यान रहता है। वे साहित्य को केवल कला-विनोद नहीं बल्कि मानव के परमपुरुषार्थ-मोक्ष प्राप्ति का एक सबल साधन मानते हैं। उन लोगों ने शृंगार के रस राजत्व को अस्वीकार कर शान्त या शम को साहित्य का प्रधान लक्ष्य माना है। शांति की आज संसार को सबसे अधिक आवश्यकता है। इसलिए जैन साहित्य आज सर्वाधिक प्रासंगिक है। जैन साहित्यकारों का मत है कि शृंगार और शम के स्वस्थ समन्वय से ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। ये लोग जीवन की मादकता, इन्द्रिय लिप्सा और कामुक उद्वेगों का परिहार अंततः शम में करते हैं। जैनकाव्यों के नायक अपने यौवन में युद्ध, संभोग आदि सभी प्रवृत्तियों में लिप्त होते हैं और कवि वीर, शृंगार आदि के विमर्श का अवसर निकाल लेते हैं किन्तु अंत में घटनाक्रम अपने चरम पर पहुँच कर 'शम'

में पर्यवसित हो जाता है।

अपभ्रंश के प्रसिद्ध जैन कवि स्वयंभू के महाकाव्य 'पउमचरिउ' में लक्ष्मण को शक्ति लगने पर स्वयं पद्मराम जब करुणा समुद्र में ऊभचूभ करने लगते हैं तभी उन्हें जीवन की नश्वरता और शरीर की क्षणभंगुरता का बोध होता है और वे तत्क्षण परमशान्ति प्राप्त कर लेते हैं। इसी प्रकार स्थूलिभद्र घोर शृंगारी नायक थे किन्तु अंत में कोशा वेश्या के प्रसंगोपरांत वे परमसंयमी, निष्काम तथा अनासक्त हो जाते हैं। इस प्रकार साहित्य द्वारा व्यक्ति के मुक्ति की साधना का मार्ग प्रशस्त किया गया है।

जैन कवियों ने कर्म के साथ साहित्य का सुंदर समन्वय किया है। स्वयंभू, पुष्पदंत, जोइन्दु, धनपाल, शालिभद्रसूरि, विनयप्रभसूरि, मेरुनन्दन, समयसुंदर, हीरविजय, यशोविजय आदि अनेक श्रेष्ठ जैन कवियों को साहित्य से खारिज करके हम अपने पैरों पर स्वयं कुल्हाड़ी नहीं मार सकते।

जैन साहित्य में अन्य भाषा-साहित्य की भाँति धर्मोपदेश, नियमव्रत संबंधी उपदेश और श्रावकाचार परक पुष्कल साहित्य भी है किन्तु समस्त जैन साहित्य इसी कोटि का निश्चय ही नहीं है। वह विपुल और बहुआयामी है। धार्मिक और दार्शनिक विषयों पर उन्होंने प्रचुर सरस काव्य, नाटक, रास, चतुष्पदी चरित आदि भी लिखे हैं।

यह विशाल साहित्य शास्त्र भण्डारों में बन्द पडा था। इसकी जानकारी वृहत्तर पाठक समाज को देने का श्रेय सर्वप्रथम यूरोपीय विद्वानों को है। सन् १८४५ में अंग्रेज विद्वान् ने वररुचि के प्राकृत प्रकाश का सुसंपादित संस्करण प्रकाशित करके इसका श्री गणेश किया। इसके बाद जर्मन पंडित पिशेल ने १८७७ ई० में हेमचन्द्राचार्य के हिद्ध हेम का संपादन-प्रकाशन करके प्राकृत-अपभ्रंश के अध्ययन की नींव डाली। जैकोबी ने समराइच्च कहा, पउमचरिउ की भूमिकाओं के साथ उनका संपादन-प्रकाशन करके इन ग्रंथों के काव्य पक्ष की तरफ पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया। भारतीय विद्वानों ने भी इस तरफ प्रयत्न प्रारम्भ किया और महत्वपूर्ण कार्य किया। उनमें हरप्रसाद शास्त्री, पी०डी० गुणे, प्रो० हीरालाल जैन, राहुल सांकृत्यायन, भायाणी, बागची, देसाई और मुनि जिन विजय, उपाध्ये तथा नाहटा आदि ने महत्वपूर्ण योगदान किया है। अब तो भण्डार भी खुल गये हैं, विद्वान् भी प्रयत्नशील हो गये हैं अत: आशा है कि निरंतर नये-नये ग्रंथों की खोज, शोध, संपादन-प्रकाशन से इसके अध्ययन का क्षितिज क्रमश: विस्तृत होता जायेगा।

जैन साहित्य का मूल्य– (जन साहित्य)

इस साहित्य की कुछ बहुमूल्य विशेषतायें हैं जिन्होंने इसे समग्र भारतीय साहित्य

में विशिष्ट महत्व प्रदान किया है। इसकी मुख्य विशेषता है काव्य में सामान्य मनुष्य को सम्मान देना। संस्कृत साहित्य में सामान्य व्यक्ति को प्राय: काव्य का नायक नहीं बनाया जाता था। मरुगुर्जर जैन साहित्य में नियम-संयम का पालन करने वाला कोई भी अचारवान् श्रावक या श्रेष्ठि अथवा साधारण व्यक्ति काव्य का चरित नायक बनाया जाने लागा। इस क्रांतिकारी उदार दृष्टिकोण के कारण जैन साहित्य को सच्चे अर्थ में जनता का साहित्य माना जाना चाहिये। आज के जनवादी और प्रगतिशील साहित्य की नींव जैन साहित्य ने डाली थी। देशी भाषाओं के आधुनिक साहित्य को मरुगुर्जर जैन साहित्य से यह बहुत बड़ी विरासत प्राप्त हुई हैं।

धार्मिक सहिष्णुता इसकी दूसरी महत्वपूर्ण विशिष्टता है। जैनाचार्य अनेकांतवादी-उदार दृष्टिकोण के कारण कभी धार्मिक कट्टरता को महत्व नहीं देते। **कर्मवाद** में अटूट आस्था जैन साहित्य की तीसरी विशेषता है। जैन साहित्य डंके की चोट पर घोषित करता है कि मनुष्य अपने कर्म का फल अवश्य पाता है। कर्म से ही वह बन्धन में पड़ता है और उससे ही मुक्त भी हो सकता है। कोई दूसरा न उसे बाँधता है और न छोड़ता है। मनुष्य के पुरुषार्थ पर ऐसा दृढ़ विश्वास संसार के अन्य धर्माश्रित साहित्य में दुर्लभ है। मनुष्य अपने सत्कर्मों द्वारा मुक्त, शुद्ध चैतन्य भगवंत बन सकता है। जैन दर्शन और धर्म तथा साहित्य यह बार-बार घोषित करता है कि मनुष्य भगवान बन सकता है। वे भगवान को अवतरित कराकर मनुष्य बनाने में नहीं बल्कि मनुष्य को अरिहंत बनाने में पूर्ण विश्वास व्यक्त करते हैं। जैन भक्त अपने वीतराग भगवंत से कुछ याचना नहीं करता बल्कि उसके सदाचरण पर रीझकर उसके प्रति श्रद्धा-भक्ति निवेदित करता है। कर्मों का कर्त्ता और उसके फल का भोक्ता स्वयं जीव है। वह अपने कर्म पर विश्वास करके निरंतर संयम, नियम और धर्माचरण द्वारा अपनी मुक्ति का मार्ग स्वयं प्रशस्त करता है। साधक तीर्थंकर के गुण, कीर्तन स्तवन के द्वारा निज में जिनत्व का बोध करता है।

जैन धर्म में आत्मा और परमात्मा को एक माना गया है- 'अप्पा सो परमप्पा' यह निर्गुण परंपरा के ज्ञानमार्गियों की घोषणा 'अह ब्रह्मास्मि' के मेल में है। इनका ब्रह्म निर्गुण और सगुण से परे प्रेम स्वरुप है। जैन भक्त कवियों में आनंदघन, भैया भगवतीदास, बनारसीदास आदि अनेक उच्चकोटि के कवि हो गये हैं। इस भक्ति में सगुण और निर्गुण का तथा ज्ञान और कर्म का सच्चा समन्वय है।

समस्त जैन शास्त्र अनुयोगों में विभक्त है- यथा—प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग। प्रथमानुयोग का संबंध साहित्य से है। समस्त धार्मिक कथा-साहित्य प्रथमानुयोग के अन्तर्गत गिना जाता है। महापुराण, पुराण, चरित काव्य, रुपक

काव्य, कथाकाव्य, संधिकाव्य, रासो, स्तोत्र-स्तवन आदि विविध साहित्य-रुप प्रथमानुयोग के अन्तर्गत आते हैं। इस धार्मिक-साहित्य में शलाका पुरुषों या पात्रों को आदर्श या माध्यम बनाकर सामान्य व्यक्ति को संयम और तपश्चर्या का संदेश दिया जाता है। करणानुयोग में विश्व का भौगोलिक वर्णन है। चरणानुयोग का संबंध श्रावकों और साधुओं के अनुशासन-नियमन से है। द्रव्यानुयोग तत्वज्ञान की चर्चा करता है। इस प्रकार इन चार अनुयोगों में केवल प्रथमानुयोग का संबंध साहित्य से है। आगे जैन साहित्य (प्रथमानुयोग) के कुछ विशिष्ट तत्वों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

कथानक रुढ़ि–

काव्य में कथानक रुढ़ियों का महत्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी साहित्य की प्राय: सभी कथानक रुढ़ियों का पूर्व रुप मरुगुर्जर जैन साहित्य में उपलब्ध होता है। चित्रदर्शन, स्वप्नदर्शन, गुणश्रवण से प्रेमोत्पत्ति, शुक का संदेश-उपदेश, नायक की सिंहल द्वीप यात्रा, समुद्रयात्रा में तूफान से जहाज का ध्वस्त होना, नायक नायिका का वियोग, मिलन, विमाता का कोप, देवी देवताओं की कृपा, शाप आदि नाना कथानक रुढ़ियों का पूर्वरुप हमें मरुगुर्जर जैन साहित्य में मिलता है।

कथा शिल्प–

मरुगुर्जर जैन साहित्य से हमें विरासत के रुप में कथाशिल्प, काव्यरुप और छन्द, ढाल, देशी आदि काव्य उपकरणों का प्रभूत अवदान प्राप्त हुआ है। अधिकतर जैन चरित काव्य संधियों में विभक्त है। प्रत्येक संधि अनेक कड़वकों से मिलकर बनती है। कड़वक की समाप्ति धत्ता से होती है। इस प्रकार की शैली सूफी प्रेमाख्यानों में खूब प्रचलित हुई। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि चरित काव्य के लिए जैनकाव्य में अधिकतर चौपाई और दोहों की पद्धति ग्रहण की गई है। पुष्पदंत के आदि पुराण और उत्तरपुराण से प्रेरणा लेकर यह परंपरा सूफियों के प्रेमाख्यान और तुलसी के मानस तथा छत्रप्रकाश, ब्रजविलास आदि परवर्त्ती आख्यान ग्रंथों में चलती रही।

छंद योजना–

छंदों के क्षेत्र में अपभ्रंश और मरुगुर्जर जैन साहित्य की देन मौलिक है। मात्रिक छंदों में तुक अथवा अन्त्यानुप्रास के द्वारा लय और संगीत का संचार काव्य में पहिली बार यहीं किया गया। अन्त्यानुप्रास का प्रयोग न तो संस्कृत काव्य में मिलता है और न प्राकृत में; अत: परवर्ती भाषा-साहित्य को महती और मौलिक देन है। जिस प्रकार श्लोक का संबंध संस्कृत काव्य से, गाथा या गाहा का प्राकृत काव्य से है उसी प्रकार दूहा या दोहा, चौपाई, सोरठा, छप्पय आदि मात्रिक छंद मरुगुर्जर में आये। अत: हिन्दी

आदि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के काव्य साहित्य में मात्रिक छंदों का अन्त्यानुप्रास के साथ प्रचुर प्रयोग मरुगुर्जर साहित्य का प्रभाव है।

काव्यरुप–

काव्यरुपों की दृष्टि से मरुगुर्जर जैन साहित्य बड़ा सम्पन्न तथा विविधतापूर्ण है। जैन कवियों ने लोकगीतों से देशी-धुनों और तर्जों को लेकर ढालें बनाईं और काव्य में उनके प्रयोग द्वारा संगीत का नूतन संचार किया। काव्य रुपों को छंदों के आधार पर रास, फागु, चउपइ, बेलि, चर्चरी, आदि; रागों की दृष्टि से बारहमासा, झूलण, लावणी, बधावा, प्रभाती, गीत, पद आदि और नृत्य की दृष्टि से गरबा, डांडिया, धवल, मंगल आदि नाना भागों में बाँटा जा सकता है। इसी प्रकार कथा प्रबंध के आधार पर प्रबंध, खण्ड, पवाडा, चरित, आख्यान, कथा, संवाद आदि, छंद संख्या के आधार पर अष्टक, बीसी, चौबीसी, बहोत्तरी, छत्तीसी, बावनी, सत्तरी, शतक आदि नाना काव्यरुप प्रचलित हैं। उपासना की दृष्टि से विनती, नमस्कार, स्तुति, स्तवन, स्तोत्र इत्यादि, इसी प्रकार ऐतिहासिकता के आधार पर पट्टावली, गुर्वावली, तलहरा इत्यादि। काव्यरुपों की ऐसी विविधता शायद ही किसी भाषा के साहित्य में उपलब्ध हो। यह संपूर्ण संपदा हिन्दी, गुजराती और राजस्थानी आदि भाषाओं के काव्य साहित्य को मरुगुर्जर जैन साहित्य से अनायास प्राप्त हो गई है।

उपरोक्त दृष्टियों से विचार करने पर यह साहित्य अत्यन्त महत्वपूर्ण और मूल्यवान हैं किन्तु इसका मूल्यांकन वास्तविक रुप से अब तक नहीं हो पाया है जिसके कारण मरुगुर्जर जैन साहित्य पूर्णतया प्रकाश में नहीं आ पाया हिन्दी भाषा और साहित्य के अनेक महत्वपूर्ण पक्ष भी अंधेरे में रह गये हैं। आवश्यकता है कि मरुगुर्जर जैन साहित्य के विविध काव्यांगों और पक्षों पर गहन अध्ययन, विवेचन और शोध कार्य किया जाय और उसके काव्य, कला, साहित्यरुप आदि की प्रासंसिगकता तथा आ० भारतीय आर्य भाषाओं के वैज्ञानिक अध्ययन तथा उनके साहित्य की काव्य रुढ़ियों, छंदों अलंकारों का आधार वहाँ ढूढ़ा जाय।

संदर्भ

१. मो०द०दे०-जैगु०क० भाग-३, पृ-१५३८ प्र०सं० और वही भाग ६ पृ०- १९८-१९९ न०सं०.

२. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१५५६ और वही भाग-६, पृ०-३२०-३२१ न०सं०.

३. वही भाग-६, पृ०- ४१३.

४. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-६, पृ०- ४१४ न०सं०.

५. वही भाग-३, पृ०- २१८५ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-५६५ न०सं०.

६. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-३, पृ०-२१८६ और वही भाग-६, पृ०-५७०.

७. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-३, पृ०-२१८७ प्र०सं० वही भाग-६, पृ०-५७१ न०सं०.

८. वही भाग-३, पृ०-२१९० और भाग-६, पृ०-५७३ न०सं०.

९. वही भाग-३, पृ०-२१९३ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-५७३ न०सं०.

१०. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-६, पृ०-५७५ न०सं०.

११. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-३, पृ०-२१८४-२२०१ तक और वही भाग-६, पृ०-५६४-५७९ तक न०सं०.

१२. वही भाग-३, पृ०-२१९५ प्र०सं०, भाग-६, पृ०-५७८ न०सं०.

१३. वही भाग-३, पृ०-२१९३ प्र०सं०, भाग-६, पृ०-५७६ न०सं०.

१४. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-३, पृ०-२१८४, प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-५६४ न०सं०.

१५. वही भाग-३, पृ०- २१८५ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-५६५ न०सं०.

१६. मिश्रबन्धु-मिश्रबन्धु विनोद पृ०-५०३.

१७. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-३, पृ०-२१४४-/४५ प्र०सं० और भाग-६, पृ०-५६६ न०सं०.

१८. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-३, पृ०-१०२ और वही भाग-६, पृ०-५६७ न०सं०.

१९. वही भाग-६, पृ०-५६८ न०सं०.

२०. मिश्रबन्धु-मिश्रबन्धु विनोद पृ०-११४८.

२१. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-३, पृ०-२१९९-२२०० प्र०सं० और भाग-६, पृ०-५६८ न०सं०.

२२. वही भाग-३, पृ०-२१९७-९८, प्र०सं० और वही भाग, पृ०-५६९ न०सं०.

२३. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-३, पृ०-२१९२ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-५७१ न०सं०.

२४. वही भाग-३, पृ०-२१८९ प्र०सं० और वही भाग-६, पृ०-५७२ न०सं०.

२५. वही भाग-३, पृ०-२१९४ और वही भाग-६, पृ०-५७४ न०सं०.

२६. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-६, पृ०-४१९ न०सं०.

२७. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-६, पृ०-४१६ न०सं०.

२८. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-६, पृ०-४२२ न०सं०.

२९. मो०द०दे०-जै०गु०क० भाग-६, पृ०-४२३ न०सं०.

३०. वही पृ०-४२४.

३१. वही पृ०-४२४ न०सं०.

३२. वही पृ०-४२५ न०सं०.

३३. कामता प्रसाद जैन हिन्दी जैन सा० का सं० इ० पृ०-२२७.

३४. कामता प्रसाद जैन हिन्दी जैन सा० का सं० इ० पृ०-२२७.

३५. "There is enormous mass of literature in Various forms---of Consider able hirtorical importance" B.A. briersun, Linghistic suruey of India.

व्यक्ति नामानुक्रमणिका

नाम	पृष्ठ संख्या
अकबर द्वितीय	३
अक्षय कुमार दत्त	१७
अगरचंद	२८
अतिसुख दास	१०५
अजय राज	२७१
अजित	२१४
अनूपचंद	१९१
अनोपचंद-	२८,२०८
(शाह) अब्दुल लतीफ-	२२
अमरचंद	१०७
अमरचंद लोहड़ा	२८
अमरविजय I	२८
,, ,, II	२८,१९७
अमरसिंधुर	२९
अमीविजय	३२, ६०
अमोलक ऋषि	३२
अमृतधर्म	६४
अमृतमुनि	३०
अमृतविजय	३०,१७५
अमृतसागर	३१
अलीमुहम्मद खाँ	९
अलीवर्दी खाँ	८
अविचल	३२
अहमदशाह अब्दाली	२
आणंद	३३
आणंद वल्लभ	३३
आणंदविजय	३४
आनंदघन	२८४
आनंदसुख राय	१२७
आनंदसोम	४६
आलमगीर (द्वितीय)	२
आलमचंद	३४
आसकरण	३४,३६,२२५
आसफजाह	६
इन्द्रजीत	३७
इलासुंदर	७९
ईश्वरचंद्र विद्यासागर	१७
उदयचंद	४४
उत्तमचंद कोठारी	३०
उत्तम मुनि	३७
उत्तमचंद भंडारी	३७,४४
उत्तमविजय	२,३८
,, I	३८
,, II	४०
,, III	१३९,७९
उदय ऋषि	४३
उदयचंद भंडारी	४४
उदयकमल	४३
उदयतिलक	२८
उदयरत्न	४५,११६
उदयसागर	४५,११२
उदयसूरि	२८
उदयसोम सूरि	४६
उद्योतसागर सूरि	४६
एलबुकर्क	१०
ऋषभदास निगोता	४७,१३०
ऋषभविजय	४९
ऋषभसागर	५१
ऋद्धिवल्लभ	१५९
ऋद्धिविजय	७७
औरंगजेब	९
(शाह) कचरा	१५८
,, ,, I	३८
कनकधर्म	५२

नाम	पृष्ठ संख्या	नाम	पृष्ठ संख्या
कनकसागर	१८०	क्षमामणिक्य	६४
कनीराम ऋषि	५२	क्षमारत्न	१८२
कपूरविजय	१६९	क्षमासमुद्र	४३
कबीरचंद	१३१	क्षेमवर्द्धन	६५
कमलनयन	५३, ५४	क्षेमविजय	६६
करमसी	१७३	खुशालचंद	६९, ६६
कर्पूरविजय	५४	खुशालविजय	४०, ६७
कल्याण	५५	खुस्यालचंद	६७
कल्याणचंद	१२८	खेतसी	११८
कल्याण सागर सूरिशिष्य	५५	खेमविजय	६७
कवियरा	५६	गणेशरूचि,	६८
कस्तूरचंद कासलीवाल	३७	गिरिधरलाल	६८
कस्तूरचंद	५७	ग्रियर्सन	२८०
कांतिविजय	५८	गुणचंद्र	६९
कान	५६	गुमानचंद्र	६९
कार्नवालिस	१५	गुलाबचंद	११५
(शास्त्री) काशीराम करसनजी	५९	गुलाबराय	६९
कीर्तिराम	१७५	गुलाबविजय	६९, १६८
कुमारपाल	२८१	(साध्वी) गुलाबो	६८
कुँवरविजय	६०	गुलाल	७०
कुशलकल्याण	११२	गोपाल हरि देशमुख	१८
कुशलदास (कुशलोजी)	१२०	गोपीकृष्ण	७०
कुशलभक्त	२४०	गोविंददास	७१
कुशलविजय	६ १	गोविंद सिंह	९
केशरीसिंह	६१	चंपाराम (दीवान)	७३
केशोदास	६१	चंद्र	७३
केसर	७०	चंद्रसागर	७४
कृष्णदास	५९,२७०	चतुरविजय	७१
कृष्णमुनि	१९२	चारित्रनंदन	७५
कृष्णविजय	११८, ५९	चारित्रसुंदर	७६
कृष्णविजय शिष्य	६०	चेतन कवि	
क्षमाकल्याण	६२	चेतनविजय	७६
क्षमाप्रमोद	२८, ६४	(ऋषि) चौथमल	७८

नाम	पृष्ठ संख्या	नाम	पृष्ठ संख्या
छत्रपति शिवाजी	४	जिनोदय सूरि	९०
जगत्कीर्ति	१९९	जीतमल-।	९१
जेगजीवन	१७३	,, -॥	९१
,, (गणि)	७८	(संत) जीवा	१४४
जगन्नाथ	७९	जीवाजी	९२
जगरूप	७८	(ऋषि) जेमल	९२
जड़ावजी	७९	जैकोबी	२८३
जयकर्ण	८०	जैनचंद	९४
जयचंद्र	२७८	जोइन्दु-	२८३
,, छाबड़ा	४८, ८०	जोगीदास	९४, १०७
जयंत कोठारी	७८	जोधराज	१४३
जयमल्ल	८२	,, कासलीवाल	९५
जयरंग	८३	जोरावर मल	९६
जयराम	६७	ज्योतिबा फुले	१८
जयसागर	८४	ज्ञान उद्योत (उद्योतसागर)	९६
(सवाई) जयसिंह	८	ज्ञानचंद-।	९८
जयाचार्य	९१	,, -॥	९८
जयानंद सूरि	२०३	ज्ञानसागर	९६, ९८, १०४, ४६
जशवंतसागर	५१	ज्ञानसागर शिष्य	१०४
जसराज	१५५	ज्ञानानंद	१०५, २७८
जिनकीर्ति सूरि	८५	झूमकलाल	१०५
जिनचंद सूरि	८६	(कर्नल). टाड	९८
जिनतिलक सूरि	९०	टीपू.	५, ६, १३
जिनदास गंगवाल	८६	टेकचंद	१०६
जिनदास गोधा	८६	टोडरमल	८१, १०७, २३४
जिनलाभ सूरि	८६, १२०, ५२	डलहौजी	१४
जिनविजय	३८, ७१	डालूराम	१०९
(मुनि) ,,	२८३	डुंगरविजय	२१०
,, सूरि	८५	डूंगा वैद	१०९
जिनसौभाग्य	१८३	तत्त्वकुमार	११०
,, ।	८८	तत्त्व हंस	११०
जिनहर्ष	५६, १८३	तिलक सूरि	२००
,, सूरि	८८	तिलोकचंद	११०
जितेन्द्र भूषण	८९	तेजविजय	११०

नाम	पृष्ठ संख्या
,, शिष्य	१११
त्रिलोक कीर्ति	१११
थानसिंह	१११
थोभण	११२, २७१
दयामेरू	११२
दयाराम	२२
दर्शनलाभ	११०
दर्शनविजय	५८
दर्शनसागर	११२
दादाभाई	१८
दिनकर सागर	११४
दीप	११४
दीपचंद कासलीवाल	११५
दीपविजय	११५, ११८
दुर्गादास	१२०, १७७
देवचंद	५६, १२०
(श्रीमद) देवचंद	१०३,१५८
देवरत्न	१२१
देवविजय	१२२
देवहर्ष	१२३
देवीचंद	१२४
देवीदान नाइता	१२५
,, ॥	१२६
,, खंडेलवाल	१२६
(भहा०) देवेन्द्रकीर्ति	१९६
देवेन्द्रनाथ ठाकुर	१७
दौलतराम	१०८
,, कासलीराम	१०८
द्यानत	११४
धनपाल	२८३
धर्मचंद ।	१२७
,, ॥	१२८
धर्मदास	१२८
धर्मपाल	१२९

नाम	पृष्ठ संख्या
धर्मसागर	३१
धर्मसिंह	११४
धीरविजय	१३०
धीरसागर	१४७
नंदराम	१३०
नंदलाल	१३०
,, छाबड़ा	१३०
नथमलबिलाला	२००, १३०
नयनंदन	१३१
नयनचंद्र	८३
नयनसुखदास	१३१
नयविजय	१५१
नवलविजय	७१
नवलशाह	१३२
नादिरशाह	२
नाथाजी	१७०
निधि उदय	७६
निर्मल	१३५
निहालचंद	१३४
,, अग्रवाल	१३५
नेमचंद	१३५
नेमविजय	१३६
नेमि चन्द पाटनी	१३५
(ब्रह्म) ,,	१३६
न्यायसागर	८४
पन्नालाल	२२३,१३२,१३८
पद्मलाभ	१९६
पद्मभगत	१३८
पद्मविजय	१३८, १९४
पद्मसुंदर	२७४
परमल्ल	१४३
पार्श्वदास	१४३
पासो पटेल	१४४
पीटर महान	२०

नाम	पृष्ठ संख्या	नाम	पृष्ठ संख्या
पुण्यविजय	१७८	भगुदास	१५२
पुष्पदंत	२७८	भक्तिभद्र	२१०
प्रकाश सिंह	१४	भक्तिविजय	१५१
प्रागदास	१४५	भागीरथ	१५३
प्रतापसिंह	१४५	भानविजय	१५२
प्रधानसागर	११४, २०८	भारमल	११८
प्रेममुनि	१४५	भारामल्ल	१५३
प्रेमराज	१४६	(राजा) ,,	१५४
(डॉ०) प्रेमप्रकाश गौतम	१०८	भावसिंह	१५८
प्रेमविजय	१५२	भीखजी	१५४
फकीरचंद	१४६	(ऋषि) भीम	२२७
फत्तेचंद	१४७	भीखणजी	२५, २४१
फतेन्द्रसागर	१४७	भीमराज	१५५
फर्रूखशियर	१२	भुवनभूषण	२०५
बंदासिंह	९	भूधर	१५५
बखतरामसाह	१४८	,, दास खंडलवाल	१५६
बख्तराम	२३३	भूधरमिश्र	१५६
बख्तावरमल	१४९	,,	१८८
बखशीराम	१४९	,, ऋषि	८२
बनारसीदास	८१, १२७, २८४	भोजे	२७२
बहादुर शाह ।।।	१९	मकन	१५६
ब्रह्मसागर	२००	मणिचंद्र	१५८
बाल कृष्ण	१४९	मतिरत्न मणि	१५८
(पांडे) बालचंद	१३०	मतिलाभ	१५९
बालाजी बाजीराव	४	,, (मयाचंद ।)	१६०
बिहारीदास	२३७	,, -।।	१६०
बुधजन -(विरधीचंद)	१४९	,, -।।।	१६०
बुद्धिलावण्य	१५१	मतिसागर	१६०
बूलचंद	१५१	पं०मदनमोहन मालवीय	२८०
बेकन	१६	मनरंगलाल	१६१
बेंथम	१६	मनराखनलाल	१६२
बाल्तेयर	१६	मनसुखसागर	१६२
भगवतीचरण वर्मा		मन्नालाल सांगा	१६२
(भैया) भगवतीदास	२८४	मयाराम (भोजक)	१६२

नाम	पृष्ठ संख्या	नाम	पृष्ठ संख्या
मलूकचंद	१६३	यशोविजय	१३०, २८३, ४०
महानंद	१६३	रामविजय	४९
महावीर स्वामी	२३	(साध्वी) रंभाजी	८०
महादजी सिन्धिया	५	रंगविजय	१७५, १७३, १३६
महिमासागर	२३६	रघुनाथ	१५४
माखन (कवि)	१६८	,, राव	४
माणक	१६७	रघुपति	१७६
माणिक्य सागर	१६८	रणजीत सिंह	९, १०
माणेक विजय	१७९, १६८	रत्नकुशल	४३, १९८
माधवराव	४	रत्नचंद -।	१७७
मानविजय -।	१६९	,, -॥	१७८
,, -॥	६९, १६९, २०२	(आचार्य) रत्नचंद	७९
मानसिंह	१७३	(आचार्य) रत्नचंद	७९
मान्यसुंदर	२३५	रत्नधीर	१७८
मार्टिन लूथर	२४	रत्नविजय	३०, ११६
माल	१७०	,, -॥, ॥।	१७९
मालसिंह	१७२	रत्नविमल	१८०
मीरकासिम	१२	रत्नशेखर सूरि	१३७
मीरजाफर	१२	रत्नसौभाग्य	६४, २०२
मुकुंदमोनाणी	१५८	रत्नसमुद्र	६४
मुर्शिदकुली खा	७	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	२८०
मुहम्मद शाह	२	राजकरण	१८२, १८३
मूलचंद	१२८	राजशील(पाठक)	१८३, १८४
मूलराज रावल	२२२	राजरत्न	१८१
मेघ	१७२	राजविजय	१५६
,, राज	१७२	राजहंस	११०
मेघविजय	१७३	राजेन्द्र विजय	१८४
मेरूतुंग	२८२	राजेन्द्र सागर	१८४
मेरूनंदन	२८३	रामचन्द्र -।	३३, १८५
मोतीचंद (यति)	१७३	,, -॥	
मोहन	१७४	(आ०) रामचंद्र शुक्ल	२८२
,, मोल्हा	१७४	रामपाल	१८६
मोहनविजय	२४०	(राजा) राममोहन राय	१७
यशः कीर्ति (भट्टारक)	१७४	रामवर्मा	६

नाम	पृष्ठ संख्या	नाम	पृष्ठ संख्या
रामविजय -।	१८७	वराहमिहिर	१६०
,, -।।	१८७	वल्लभविजय	२०३
रायचंद	९१, २८३, १८७	,, वसतो (वस्तो)	२०३
ऋषि रायचंद	६६	वसु (,,)	२६८
राहुल सांकृत्यायन	२८३	वाजिद अलीशाह	७
रूप	१९०	वान	२०४
रूपचंद	१९२	वारिश शाह	२२
(ब्रह्म) रूपचंद	१९१	विक्टोरिया	१९
रूपविजय	३२	विजय कीर्ति	२०५
लखमीचंद	१८५	विजय जिनेन्द्र सूरि	३४
लखमीविजय	१९६	विजय धर्म	२१३, ६८, १३९
लक्ष्मीचंद	२०४	विजयदेव सूरि	३०
लक्ष्मीदास	१९६	विजयनाथ माथुर	२०६
लक्ष्मीविमल	२०४	विजय रत्न	१२१
लब्धि	१९७	विजयलक्ष्मी सूरि	२०६
लब्धि विजय	१९७	विद्याधर	२८२
लवजी	२५, १९७,	विद्यानंदि	२०८
लाभ विजय	५४	विद्यानिधान	१७६
लाल	२७१	विद्यासागर	४५
लालजीत	२०२	विद्याहेम	४५, २०८
(पांडे) लालचंद (सांगानेरी)	२००	विनय	२०९
लावण्यकमल	१९८	विनयचंद -।	२०९
लालचंद -।	१९८	,, -।।	२०९
,, -।।	१९९	विनयप्रभसूरि	२८३
,, -।।।	२००	विनयभक्ति	२१०
लालदास	२६१	विनयविजय	६६
लालविजय	२०२	विनीत विजय	१२२
लाल विनोद	२०२	विनोदसागर	५१
लावण्यकमल	१९८	विपिन चन्द्र	४४
लावण्यरत्न	१५१	विमल विजय	४०
लावण्य सौभाग्य	२०२	विलासराय	२००
लीलाधर	१६०	विबुधविमल सूरि	२०४
लोकाशाह	२४	विवेकविजय	३०, २१०
वरसिंह	१४५	विशुद्धविमल	२११

नाम	पृष्ठ संख्या	नाम	पृष्ठ संख्या
विष्णु	२१२, २६९	समयसुंदर	३३, ३४, २२१, २८३
वीर	२१५	सरसुति (सुरसति)	२२६
वीरविजय	२१६	सरूपाबाई	२२६
वीरविमल	२११	स्वयंभू	२७८
वीरसुंदर	१६०	सहजानंद	२५
वेलेजली	१३	सहस्रकीर्ति	१२९
वृंदावन	२१३	सावंत (सावंतराम ऋषि)	२२६
वृद्धिविलास	२१२	साहिबराम पाटनी	२२७
शार्ङ्गधर	२८२	सिद्धराज	२८१
शांतिदास	२६	सिराजुद्दौला	८
शालिभद्र सूरि	२८३	सुखप्रभ सूरि	२३०
शाह आलम	२	सुजाण	२२७
शिवचंद -I	२२१	सुजानसागर	२२८
,, -II	२२२	(संत) सुंदरदास	१४३
शिवजीलाल	२२२, २२३	सुदामो (विप्र)	२६९, २२९
शुजाउद्दौला	७, १३	सुनीति कुमार चाटुर्ज्या	२८०
शुभचंद	९८	सुमतिप्रभ सूरि	२३०
शुभविजय	२१६	सुमतिविजय	४०
शोभर्षि	१७४	सुमतिसागर सूरि शिष्य	२३०
शोभाचंद	२२३	सुरेन्द्र कीर्ति	२३१
श्यामसागर	२२६	सुरेन्द्रभूषण	८९
श्री भूषण	१०४	सुरेन्द्रविजय	२८
श्रीमल	२२६	सूरजमल	९, ६९
श्रीलाल	२२३	सूरत	२३२
संपतराय	२२३	सेवाराम (साह)	२३३,
सआदत खाँ	७	,, पाटनी	२३४
सकलकीर्ति	१७४, १३२, १८६, ७४	,, राजपूत	२३५
सत्यरत्न	२२४	सोमप्रभ सूरि	२८२
सदानंद	२२४	सौजन्यसुंदर	२३५
सदाविजय	२८	सौभाग्यसागर	२३६
सफदरजंग	७	हजारीप्रसाद द्विवेदी	२८२
सबराज	२२४	हरकूबाई	२३६
सबलदास	२२५	हरखचंद	२३६
सबलसिंह	२२५	हरचंद	२३७

नाम	पृष्ठ संख्या
हरजसराय	२३८
हरदास	२३८, २६८
हमीरमुनि	२०९
हरदास	२३८, २६८
हरजीमल	१७८
हरप्रसाद शास्त्री	२८३
हरिचंद	२३८
हर्षचंद	२८, १२७, १३४
हर्षविजय	२४०
(कैप्टेन) हाकिन्स	११
हितधीर	२४०
हितविजय	२०३
हीरबर्धन	६५
हीरविजय	६५, २८३
हीर सेवक-	
हीरा	२४१
हीरालाल जैन	२८३
हुलसा जी	२४१
हेनरी विवियन डेरीजियो	१७
हेमचन्द्र	२८१, २८२
हेमराज	२४१
हेमविजय	१११
हेमविलास	२४१
(लार्ड) हेस्टिंग्ज	१३
हैदरअली	४,१३

ग्रन्थ अनुक्रमणिका

नाम	पृष्ठ संख्या
अंजन शलाका स्तवन अथवा	२२०
मोति शा ना ढालिया	-
अंजना चौपाई	२०९
अंतरंग करणी अथवा	
जीव ने करणीनो संवाद	१७१
अंबड रास	१९२, १९४
अइमत्ता ऋषि संज्झाय	६३
अक्षर बत्तीसी	२८
अकृत्रिम जिन चैत्यालय पूजा	२०२
अखंड चरित्र-	६३
अजितनाथ जन्माभिषेक	१९६
अढाई द्वीप का पाठ	५३
अढाई व्याख्यान	३३
अठाई लब्धि पूजा	१९२
अठार पाप स्थानक नी संज्झाय	१२८
अठारह नाते की कथा	२००
अड़सठ आगम नी अष्ट-	
-प्रकारी पूजा	११७
अणबिंधियाँ मोती	९१
अतिचार मोटा	१२२
अध्यात्म गीता टीका	९८
,, ,, बालावबोध	१०३,६१
अध्यात्म चौपाई	२६४
अध्यात्मनयेन चतुर्विंशति-	
- जिन स्तव ---	२२९
अध्यात्म बारहखड़ी	७६,१०६,१२७
अध्यात्म प्रश्नोत्तर	६१
अनाथी मुनिरी सतढालियो	८०
अन्ना चौढालिया	२२५
अनुकंपा ढाल अथवा चतुष्पदी	१५४
अनुयोगद्वारसूत्र बाला०	१७४
अन्योक्ति बावनी	२१०
अभय चिंतामणि अथवा	
गर्भ चेतावणी	२७१
अमरसिंह शलोको	२६६
अयवंति सुकुमाल चौढ़ालिया	८२
अर्जुनमाली चौ०	८२
अलंकार आशय	३६
अवंति सुकमाल चौढ़ालिया	९३
अष्टकर्म तपावली स्वाध्याय-	१५५
अष्टपाहुड	८०
,, भाषा	८१
अष्टप्रकारी पूजा	३९,१२२,६०,१३९, २१६, २१७,
,, ,, रास	१४७ १९५
,, ,,विधि	४७, ९७
अष्टमी कथा	९४
अष्टमी स्तव	१५१, २०२
अष्टापद पूजा	११७
अष्टाह्निका (संस्कृत)	६४
,, कथा।	१३०
,, पूजा।	२३२
,, महोत्सव टव्वो	२७५
अर्हंतपाशा केवली	२१५
आगम सार	५६
आगम शतक	२०१
आठ कर्म की चौसठ प्रकारी पूजा	२१८
आठ प्रवचन माता ढाल	१८७
आत्मख्याति समयसार	८०
आत्मज्ञान पंचासिका	४४
आत्मप्रबोध भाषा	४४
आत्मरत्नमाला	४४

नाम	पृष्ठ संख्या
आत्मसार मनोपदेश भाषा	४४
आत्मानंद शताब्दी स्मारक ग्रंथ	१६५
आत्मानुशासन वचनिका	१०७
आत्मनिंदा-	१०३
आदिनाथ जीनो रास	११२
,, स्तवन ।	१२९
आदिपुराण	२८५
,, भाषा ।	१२७
आध्यात्मिक संज्झायों	१५८
आनंदघन चौबीसी, बाला०	१०२, ९८
आनंद काव्य महोदधि	१९६
आबू यामा स्तवन	१८७
आराधना३२ द्वारनो रास	४७
,, सार टीका	८६
आलंदी ढाल	२०९
आवश्यकसूत्र बाला०	२७८
आषाढ़भूति चौढालियो	१८८,१७०,२०९ १५४, ६७
आसकरणजी महाराज के गुण	२२५
इक्कीस प्रकारी पूजा	७६, ९६, ४६, १८४
इरियाव ही भंगा	१३१
इलाकुमार रास	२०२
इलापुत्र रास	१८०
इलायची चरित्र	१७८
ईष्ट छत्तीसी	१५०
उत्तम कुमार रास	१८२
उत्तमविजय निर्वाण रास	१३९
उत्तराध्ययन टव्वार्थ	२७६
,, सूत्र ढालबंध	९२

नाम	पृष्ठ संख्या
उदायन राजर्षि चौ०	३४
उदेपुर की गजल	११७
उपदेश छत्तीसी	६७
,, प्रासाद	२०६
,, टव्वा	२७८
उपदेश बीशी	१८६,१९०
उपदेश रसाल जीवाभिगमसूत्र बाला०	२७८
उपदेशात्मक ढाल	१२०
ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह	५२, ७५
अेलाची कुमार छढालियु	१७०
ऋषभ चरित्र	१८९,१२०
ऋषभदेव स्तवन	११८, ६३
ऋषिदत्ता ढाल	७८
ऋषिमंडल पूजा अथवा चतुर्विंशति जिनपूजा	२२१
कथासंग्रह	१०४
कनकरथ राजा का चरित्र	२२५
कपट पचीसी	१९०
कम्पिला की रथयात्रा	२२४
कमलावती संज्झाय	९४
कर्मदहन पूजा	१०६
कर्म निर्जरा संज्झाय संग्रह	२११
कलावती चौढालियु	१७२, १८८
कल्पसूत्र टव्वा	१६६,२७५,२७७
कल्याणक चौबीसी	१६५
कल्याणसागर सूरि रास	४५
,, ,, निर्वाण रास	१६८
कामोद्दीपन	९८
कावी तीर्थ वर्णन	११७
कुंभिया के श्रावक की संज्झाय	५२
कुमति निवारक सुमति ने उपदेश	७२, ७३
कुशलसूरि स्थान नामगर्भित स्तव	२९
कृपण पचीसी	१९०
कृष्ण रूक्मिणी मंगल	१३८

नाम	पृष्ठ संख्या
,, ,, विवाहलो	५९, २७०
कृष्ण विरहना महिना	२७१
केवल सत्तावनी	१९१
केशी गौतम चौढालिया	६९
,, ,, चर्चा ठाल	३६
केशरियाजी लावनी अथवा	
ऋषभदेव स्तव	११६
केशरिया नो रास	१११
कोणिक राजा भक्ति गर्भित वीर स्तव	२१८
कोक पद्य	४४
कोक शास्त्र संज्झाय	२६६
क्षमातप ऊपर स्तवन	२४१
क्षेत्र समास बाला०	६४, २७८
खंदक जी की लावणी	२२५
खंधक चौढालियु अथवा चौपाई	९३
,, मुनि संज्झाय	४९
,, ऋषि चौपई	८२
खंभात चैत्य परिपाटी	१४२
खरतरगच्छ पट्टावली (संस्कृत)	६२
गजसिंह कुमार रास	१२१, १६९
,, राजा रास	१६०
गज सुकुमाल चरित्र	१७७
,, ,, संज्झाय	१५८
गणधरवाद बाला०	६४
गणिपति चरित्र बाला०	२७८
गिफ्ट टू मोनो थिइस्ट (अंग्रेजी)	
गिरनार गजल	५५
गुणकरंड गुलावली चौ०	११५
गुणमाला चौ०	२२६
गुरुगुण स्तवन	२२५
गुरूपदेश श्रावकाचार	१०९
गुर्वावली	२७६
गुणसेन केवली रास	१९४
गोमट्टसार वचनिका	१०७

नाम	पृष्ठ संख्या
गौड़ी पार्श्वनाथ छंद	१९१
,, पार्श्व स्तव अथवा	
काजल मेधानुं स्तव	१३६
गौड़ी पार्श्व वृहत् स्तव	२८
,, पार्श्वनाथ स्तव अथवा	
मेघ काजल संवाद नुं स्तवन	१७३
गौतम कुलक बाला०	१४२
गौतम पृच्छा बाला०	१४२,२७५,२७८
,, रास ।	१२०
गौतम स्वामी संज्झाय	१९०
चंडाबल स्तुति	७८
चंद चौपाई समालोचना	१०२
चंदनबाला चरित्र	१७७
,, चौढालिया	२०९
चंदन मलयागिरि चरित्र	१७७
चंदन राजा ना दूहा	२६९,२१२
चंद्रकुमार की वार्ता	१४५
चंदनो गुणावली पर कागल अथवा	
चंदराज गुणावली लेख	११८
चन्द्र चौपाई	९८
चन्द्रगुप्त चौढालिया	६९
,, सोल सपना संज्झाय	९४
चन्द्रप्रभ काव्य (न्यायभाग)	८०
,, पुराण भाषा	८९
,, छंद	१३५
चन्द्रलेखा रास''	५४
चन्द्रशेखर रास	२२०
चंपकमाला चौ०	७९
चउशरण पयन्ना बाला०	२७८
चर्चाबोल विचार अथवा	
तेरापंथी चर्चा	११८
चर्चासार भाषा	२२२
चर्चा समाधान	१५६
चतुर्विंशति तीर्थंकर पूजा	१३६

नाम	पृष्ठ संख्या
,, जिनपूजा पाठ	२१४, २१५
चतुर्विंशति स्तुति	१७२
चतरू जी का संज्झाय	२३६
चतुरखंड चौ०	९०
चमत्कार चिंतामणि बाला०	२७८
चरण करण छत्तीसी	२३०
चार कषाय छंद	५८
चारित्र छत्तीसी	१०१
चारित्र नंदी	७६
चारित्रसार वचनिका	१६२
चारूदत्त चरित्र	१५४
,, श्रेष्ठी रास ।	१७४
चावखा	२७२
चित्त चिंतवणी चौसठी	१५५
चित्त समाधि पंचवीसी अथवा संज्झाय	१८८
चिन्तामणि स्तवन	८७
चित्रसेन चरित्र बाला०	२७८
चित्रसेन पद्मावती रास	२१२, १८७, २७८
,, ,, बाला० ।	१५२,
चेतन प्राणी संज्झाय	१९०
चेलणा चौढालियु	१८७
चैत्यवंदन चौबीसी	६३
,, संग्रह	१७९
,, स्तुति स्तवनादि संग्रह	८६
चौदह श्रोताओं की ढाल	७८
चौमासा व्याख्यान	३३
चौबीस गुणस्थान चर्चा	७१
,, जिन चरित्र	११४, २०८,
चौबीस तीर्थंकर पूजा	१२५, २३३
,, ,, का पाठ	१६१
,, जिनदेह वरण स्तव	१६४
,, जिन नमस्कार	६२
,, जिन ना कल्याणक स्तव	१४०
,, दण्डक भाषा	१२७

नाम	पृष्ठ संख्या
,, महावीर स्तवन	११९
,, जिन स्तवन	८०
चौबीसी	८५, ९१, ९८, १०१, १५३, १७९, १६५, २०८, २१०, २३०, २३६
चौबीसी बीशी संग्रह	१५३
,, की रचना	११८
चौबीसी भूपाल स्तोत्र नवीन भाषा	२३२
छंद प्रबंध	४४
छंद विभूषण	४४
छंद शतक	२१४
छप्पन दिक कुमारी रास	२२१
छत्र प्रकाश	२८५
छोटी साधु वंदना	३६
जंबू अंझायण बाला०	२७४
जंबू अध्ययन चरित्र बाला०	२७८
जंबू कुमार चौढालिया	२३६
,, संज्झाय ।	५२
जंबू चरित्र	७८
जंबू जी की संज्झाय	१२०
जंबू स्वामी चरित	७७, १३०
जंबू स्वामी की पूजा	१४५
,, की सतढालियो	८०
जंबूद्वीपपन्नति	१४४
जंबू स्वामि शलोको	१९८
जगदेव परमार नी वार्ता	२७८, २६६
जयजस	९२
जयवाणी	८२
जयंती चौढालिया	२०९
जयति हुअरा स्तोत्र भाषा	६३
जयघोष की सात ढाल	३६
जयानंद केवली रास	१४२
जलंधर नाथ भक्ति प्रबोध	४४
जाम रावलनो बारमासो	२६६

नाम	पृष्ठ संख्या
जिनकुशल सूरि (दादाजी)	
अष्टप्रकारी पूजा	१०२
जिनकुशल सूरि निशानी	४५
जिन गुण स्तवनावली	
सत्यविजय ग्रंथमाला	२१८
जिनगुण विलास	१३०
जिन त्रिंशत वाणी गुण	
नामार्थ गर्भित स्तव	२१६
जिनदत्त चरित्र	१४९
जिनदत्त सूरि चरित्र	१०२
जिनपालित जिनरक्षित रास	४५
जिन प्रतिमा स्थापन ग्रंथ	१०३
,, ,, ,, विधि।	९८
जिन बिंब स्थापना अथवा पूजा स्तव	८६
जिनमत धारक व्यवस्था वर्णन स्तव	१०१
,, ,, ,, ,, बाला०	१०३
जिनरिख जिनपाल चरित्र	७८
जिनलाभ सूरि पट्टधर जिनचंद्र सूरि गीत	७५
जिनलाभ सूरि गीतानि	२०४,१२०
,, ,, दवावैत	२१०
जिनविजय निर्वाण रास	३८
जिनस्तुति	१७८
जिनेन्द्र काव्य संदोह भाग	१-१७९
जिनेन्द्र भक्ति प्रकाश	१४२
जीवंधर चरित	१२७,१३०
जीवविचार बाला०	२७८
,, टब्बो।	२७८
,, भाषा दोहा।	१२७
,, वृत्ति।	६४
,, स्तवन भाषा	३४,३५
जुगमंदिर स्वामी की संज्झाय	२२५
जूठा तपसीनो सलोको	२०३
जैन ऐ० रासमाला	१४०,१९५

नाम	पृष्ठ संख्या
,, ऐ० गुर्जर काव्य संचय	१६८
,, ,, काव्य संग्रह	२२६
जैन गुर्जर साहित्य रत्नो	२२९
,, ,, ,, रत्न	८५
जैन चैत्य स्तव	७३
जैन भास्कर स्तवनावली	१५७
जैन सार बावनी	१७६
जैन स्वाध्याय मंगल माला	१७०
जैन संज्झाय माला	१५७,४१
जैन संज्झाय माला	१५७,४१
जैन विविध ढाल संग्रह	१८८
जैमलजी का गुण वर्णन	२६३
जोबन पचीसी	१८९
जैसलमेर गजल	५५
ज्ञानदर्शन चरित्र संवाद रूप वीर स्तव	२०६
ज्ञानपंचमी	२०८
,, कथा बाला०	२७८
,, मौन ग्यारस होली व्याख्यान	३३
,, संज्झाय	२०८
,, स्तव	१७३
,, स्वाध्याय	१६५
ज्ञानपचीसी	१८८
ज्ञानप्रकाश	१३०
ज्ञान प्रदीपिका	४४
ज्ञान प्रभाकर	४४
ज्ञानविलास	१०५
ज्ञान सत्तावनी	४४
ज्ञानार्णव	८०
,, हिन्दी टीका	९८
ज्ञान सूर्योदय नाटक	२२३
,, ,, ,, की वचनिका	१४३
डीसा की गजल	१२३,१२४
ढंढक चौढालिया	४५

नाम	पृष्ठ संख्या
ढुंढक रास	३२,२४२
ढूंढक रास अथवा लुंपक लोपक	
तपगच्छ ज्योत्पत्ति वर्णनरास	४१
ढूंढिया उत्पत्ति	१९६
ढूंढ़िया मत खंडन	१४९
तत्त्वार्थबोध वचनिका	१४९
तत्त्वसार भाषा	११४
तत्त्वार्थसूत्र भाषा	२२७
तामली तापस की चौ०	२२५,, ,,
" " चरित्र	७८
तारक तत्त्व	३६
तीन चौबीसी पूजा	१३६
तीन लोक पूजा	१०६
तीर्थमाला	८४
तीसचौबीसी पूजा	२१४
तेजसार रास	१८५
,, कुमार चौ०	७०
तेजसाह चौ०	१८०,१८१
तेतलीपुत्र चौ०	८२
तेरह अभिग्रह संज्झाय	१२०
त्रिक चातुर्मास देववंदन विधि	२१८
त्रिलोकसार भाषा	६७
त्रिलोक सुंदरी ढ़ाल	२२५
,, चौ०	५३
त्रेपन क्रिया कोश	१२७
त्रैलोक्य दीपक काव्य	६१
त्रैलोक्य प्रतिमा स्तवन	३४
त्रैलौक्य सार वचनिका	१०७
थंभणो पारसनाथ, सेरीसो	
पार्श्वनाथ, संखेसरो पाश्वनार्थ स्तवन	१३६
थावच्चा चौ०	६२
थावच्चा चौढालिया	२०९

नाम	पृष्ठ संख्या
दंडक भाषा गर्भित स्तव	१००
दंडक संग्रहणी बाला०	३३
दयादान की चर्चा	७८
दशत्रिक स्तवन	१९८
दश प्रत्याख्यान स्तव	१८५
,, ,, बाला०	२७८
दशवैकालिकसूत्र बाला०	२७८
,, ,, ,, ढालबंध।	९२
दर्शनकथा	१५४
दर्शन पचीसी	१५०
दर्शनसार भाषा	२२२
दशाध्यानसूत्र टीका	१०६
दशार्णभद्र की संज्झाय	२१७, १६४
दस श्रावकों की ढ़ाल	३६
दादाजी स्तवन	८७
दानकथा	१५४
दानकल्पद्रुम बाला०	२७८
दामनख ढाल	१७७
दीपजस	९२
दूषण दर्पण	४४
दुरियर स्तोत्र टब्बा	१८७
देवकी ढ़ाल	१८९
देवदत्ता ढ़ाल	१७७
देवदत्ता चौ०	८२
देवराज बच्छराज चौ०	२२४
देववंदन माला नवस्मरण संग्रह	२०३
देवविलास या देवचन्द्रजी	
महराज नो रास	५६
देवागम न्याय	८०
देवानंद चौढ़ालिया	२०९
द्रव्यसंग्रह	८०
द्रौपदी चरित्र	२२५
धनपाल शीलवती नो रास	४१
धन्ना चरित्र सस्तवक	२७८

नाम	पृष्ठ संख्या	नाम	पृष्ठ संख्या
धन्यकुमार चरित वचनिका	८९	नागसी चौढ़ालिया	२२३
धम्मिलकुमार रास	२२०	नाथ चन्द्रिका	३६
धर्मदत्त चन्द्रधौल चौ०	६४	निक्षेप विचार वारव्रत चौ०	१५४
धर्मपरीक्षा बाला०	२७५	निगोद विचार गीत	६४
,, रास	१९२-१९३,१३७	निर्मोही ढ़ाल	१७७
धर्म प्रश्नोत्तर श्रावकाचार भाषा	७४	निहाल बावनी अथवा-	
धर्मोपदेश संग्रह	२३३	-गूढ़ा बावनी	१०२
नंदन मणियार	७८	नोकरवारी स्तवन	१२०
,, ,, चौ०	१९०	न्यू टेस्टामेन्ट (अंग्रेजी)	१७
नंदराय वैरोचन चौ०	२०९	नेमिगीत चौ०	३०
नंदिषेण चौबई	१७७	नेमिजिन स्तवन	११८
,, चौढ़ालिया	२०९	नेम रासो	३२
नंदीश्वर द्वीप पूजा	९४,१२८	नेम स्तव	७९
नंदीश्वर पूजा	१०९,१२१	नेमिचन्द्रिका	१६१
,, महोत्सव पूजा	११७	नेमिचारमासा	२०२
नंदीसूत्र बाला०	२७८	नेमिजी का चरित्र	३३
नयचक्र वचनिका	२१०	नेमराजुल बारमासा	३२,१६५
नयचक्र भावप्रकाशिनी टीका	१३५	नेमिराय जी सप्तढालिया	३६
नरसी जी रा माहेरा	२६७	नेमिनाथ चरित्र बाला०	६७
नर्मदा सती चरित्र	१८९	,, ,, ।	१४२
नवकार बाला०	२७८	नेमचरित्र चौ० अथवा नेमरास	९३
,, रास	१११	नेमिनाथ चौ०	८२
नवतत्त्वभाषाटीका	१८७	,, चौबीसी	३०
,, बाला०	२७८	,, जी के कवित्त	१०५
,, चौपई	१५४,१५५	नेमिनवरसो	१८७
,, भाषा गर्भित स्तव	१००	नेमिनाथ पुराण	१४९
,, ,, दोहा	१२७	,, फागु	२०८
,, स्तवन	१५९,२१०,८७	नेमिश्वर भगवान ना चंद्रावला	१९७
नवपद पूजा	९२,२६४,७६,१०१	नेमिनाथ रसबेलि	४२
नवाणु प्रकारी पूजा	२९	नेमिनाथ रास	१३९
(शत्रुंजय महिमा गर्भित) नवाणु		,, विवाहलो या गरबो	२१७
-प्रकारी पूजा	२१८	,, ,,	५०
नागकुमार चरित्र	१३०	,,व्याहलो	७०, २४१
नाग दमण	२६७	,, के पंचकल्याणक	६८

नाम	पृष्ठ संख्या
,, राजिमती बारमास	२२१
,, ,, संवाद नायोक	३०
नेमिराजुल शलोको	६१, १२
नेमि राजिमती स्नेह बेलि	४२
,, ,, ,,	३८
पंचकल्याण	२३८
,, महोत्सव	२३८
पंचकल्याणक पाठ	५३, २३७
,, पूजा	७६, १५०
	१९५, १०६
पंचकल्याणक महोत्सव स्तव	१४०
,, स्तव ।	१४२
पंचकल्याणक मासादि सिद्धचलाद्यनेक	
-तीर्थ स्तव संग्रह	१४२
पंचपरमेष्ठी पूजा	१०६
,, पूजा स्तुति	७५
पंचभेद पूजा	१०६
पंचाख्यान	१३३
पंदरतिथि	१३५
पउमचरिउ	२८३
पक्खीसूत्र बाला०	२७८
पडिमा छत्तीसी या चर्चा	५२
पत्र परीक्षा (न्याय)	८०
पदमण रासो	६८
पद समवाय अधिकार	१०३
पद्मविजय निर्वाण रास	१९५
पद्मनंदि पचीसी वचनिका	२१०
पद्मपुराण भाषा	१२७
पद्मिनी पंचढालिया	२०९
पर्युसण पर्व स्वाध्याय	१६६
,, व्याख्यान सस्तवक	४६
परदेशी चौ०	८२
,, राजानो ढाल	
अथवा संधि	९३

नाम	पृष्ठ संख्या
परमानंद विलास	१२६
परमार्थ प्रकाश	१२७
परीक्षामुख (नाट्य शास्त्र)	८०
पाँच कर्म ग्रंथ बाला०	२७८
पाटण गजल	१२३
पारसविलास	१४३
पार्श्वजिन पंचकल्याणक	
-(गर्भित अष्ट) पूजा	२१९
पार्श्वजिन स्तवन	१७३
पार्श्वदास पदावली	१४३
पार्श्वपुराण	१५६
पार्श्वनाथ ना पाँच बधावा	११७
पार्श्वनाथ स्तवन	८७,१२०
,, वृद्धस्तवन	८६
,, विवाहलो	१७६
,, शलोको	९६
,, चरित्र	३८
,, स्तुति	३८
पिंगल छंदशास्त्र या	
माखन छंद विलास	१६७
पिस्तालीस आगम नी पूजा	४०
,, ,, गर्भित अष्टप्रकारी पूजा	२१८
पिस्तालीस आगम पूजा	१९५
पुण्यवाणी ऊपर ढाल	३६
पुण्यसार रास	३१
पुण्यास्रव कथाकोश	१०६,१२७
पुरन्दर चौ०	१८०
पुरूषार्थ सिद्धयुपाय वचनिका	१०७
,, ,, भाषा टीका	१५६
पुष्पावती सात ढाल	२०९
पूज्य श्री रायचंदजी महाराज-	
-के गुणों की ढाल	३६
पूर्व देश छंद	९८
प्रकरण रतनाकर	१०३

नाम	पृष्ठ संख्या
प्रज्ञापनासूत्र बाला०	२७८
प्रतिमा पूजा विचार रास	६६
प्रतिमा स्थापन गर्भित पार्श्व-जिन स्तव	१७९
प्रतिष्ठासार भाषा	२२२
प्रतिमा रास	८०
प्रदेशी चौ०	२९
प्रद्युम्न कुमार रास	१६२
प्रद्युम्न चरित	१५१
प्रमेय रत्नमाला वचनिका	८१
प्रवचनसार टीका	२१४
प्रश्नोत्तर सार्धशतक भाषा	६३
,, ग्रंथ	२७८
,, चिंतामणि	२२१
,, तत्वबोध	९२
प्रशस्ति वचनिका	१४९
प्रस्ताविक अष्टोत्तरी	१०२
प्राचीन काव्य माला	२७२
प्राचीन तीर्थमाला संग्रह	१५९
प्राचीन मध्यकालीन बारहमासा	२१६
प्रीतिधर नृप चौ०	१४७
प्रेमचंद संध वर्णन दास	५१
फलवर्धी पार्श्वनाथ नो छंद	५६
फलोधी पार्श्व स्तवन	१८७
बंकचूल ढ़ाल	१७७
बंधउदय सत्ता चौ०	२२३
बटपद्र नी गजल	११६
बारव्रत ना छप्पा	१४४
बारव्रत की पूंजा	२१९
बारह भावना पूजन	१५०
बारह भावना	१७८
बाराखड़ी	२३२
बारमास	११२,१५७, १७८
बावनी	१३०
बिहारी सतसई की टीका	२३७
बीतराग वंदना	४४
बीज नुंस्तव	७२
बीसी	९८,१०२,२११,२२५
बीस बिहरमान स्तवन	८२
बीस स्थानक पूजा	१९५
बीस बिहरमान पूजा	२८
,, स्थनाक पूजा	२२१
बुधप्रकाश छहढ़ाला	१०६
बुधजन सतसई	१४९
बुधजन विलास	१४९
बुधविलास	२३३
बुद्धिविलास	१४८
बूढ़ा चरित्र रास	७३
बूढ़ा रास	१४६
ब्रजविलास	२८५
ब्रह्मचर्य	१५७
ब्रह्म बावनी	१३४
ब्रह्म विनोद	४४
ब्रह्म विलास	४४,५२
भंगी पुराण	२३९,२६८
भक्तामर टव्वा	१८७
,, स्तोत्रोत्पत्ति कथा	१५०
,, स्तोत्र भाषा	१३०
भक्तामर चरित्र	८०
भगवत गीता भाषा टीका	२७८
भगवती संज्झाय	२०८
,, सूत्र ढालबंध	९२
भरत चक्रवर्ती रास	१४४
भतृहरि शतक भय बाला०	१८७
भवभावना बाला०	२८७
भववैराग्य शतक बाला०	२७५
भविष्य दत्त चरित्र	२३५
भायखला ऋषभ चैत्यस्तवन	२१९

नाम	पृष्ठ संख्या	नाम	पृष्ठ संख्या
भारीमल का बखाण	२४१	माधव सिंह वर्णन	९९
भाव छत्तीसी	१०१	मानतुंग मानवती संबंध चौ०	२८
भिक्षु ग्रंथ रत्नाकर	१५४	,, ,, रास	१६९, २०९
भिक्षु जस रसायन	९२	मानतुंगी स्तव	११४, २०८
भीमकुमार चौ०	१३०	माला पिंगला	९८, १०१
भीमसेन चौ०	३२	मिथ्यात् खण्डन	२३३
भुवनभानु केवली चरित्र बाला०	११०	,, ,, वचनिका	१४८
भोगल पुराण	२६५	मिश्र पंथि चर्चा	७८
भोजन विधि	१७६	मिश्रबन्धु विनोद	२६८
भोजा भक्त नो काव्य संग्रह	२७२	मुनि सुव्रत पुराण	३७
मंगलकलश चौ०	१८०	मूलाचार की वचनिका	१३०
मंडुक चौ०	२०९	,, पर भाषा वचनिका	४८
मणिभद्र छंद	११८	मूलीबाई नर बारमास	२२४
मतखंडन विवाद	२२२	मेधविनोद	१७२
मत समुच्चय (न्याय)	८०	मैत्राणा मंडन ऋषभदेव	
मदन धनदेव रास	१४१	जिन (उत्पत्तिनुं) स्तव	७२
मदनसेन चित्रसेन चौढ़ालिया	२२६	मोक्ष प्रकाश	१०७-१०८
,, चौ०	२२६	मोटु संज्झाय माला संग्रह	६३
मधुकर कलानिधि	२२६	मौन अकादशी स्तव	२११
मनरंग चौबीसी	१६२	,, ,, कथा बाला०	२७५
मयणारेहा रास	९२, २०८, २४०	,, ,, चौ०	३४
,, छढ़ालियो	२०९	मृग पुरोहित छहढ़ालिया	८२
मल्लिनाथ चरित्र भाषा	२३४	,, प्रोहित चौ०	८३
मल्ली स्तव	७९	मृग लोढ़ा अधिकार	८२
महादंडक	२०५	मृग सुंदरी माहात्म्य गर्भित छंद	६०
महाभारत ढ़ालसागर	७८	मृग सुंदरी महात्म्य	११९
महावीर चौढ़ालियु	१८९	मृगांक लेखा चरित्र	१८८
,, नुं पारणुं	३२	मृत्यु महोत्सव छहढाला	१५०
(षट्पर्वी महिमाधिकार गर्भित)		यशोधर चरित्र	१९६
महावीर स्तव	१४०	,, ,, बाला०	६३
महावीरना २७ भवनुं स्तवन	२२०	योगसार भाषा	१५०
,, हुंडी स्तव बाला०	१४२	रक्षाबंधन पूजा	१६२
महासती अमरू जी का चरित्र	२३६	रत्नकरण्ड श्रावकाचार	१११
महिपाल चौ०	२०९	,, ,, (हिन्दी पद्यानुवाद)	१३८

नाम	पृष्ठ संख्या	नाम	पृष्ठ संख्या
रत्नज्योति (दो खंड)	१७८	लोभनालिका द्वात्रिंशिका बाला०	१७४
रत्नपरीक्षा	११०	लोभ पचीसी	१८८
रत्नसार्धशतक	७६	लोद्रवा स्तव	१५५
रसनिवास	४४	वत्सराज रास	४९
रहनेमि राजिमती चोक	४०	वर्द्धमान पुराण (भाषा)	२०६
,, ,, ढाल	७८	,, ,,	६१, १३२
राजमती संज्झाय	३८, १७०	,, ,, सूचनिका	१५०
राजसिंह कुमार चौ०	१२४	वरांगी चरित्र	५३
राजस्थान का इतिहास	९८	वरांग चरित्र भाषा	२००
राजिमती बारहमासा	५०	वल्लभचन्द्र चौ०	२२५
राजिमती नेमिनाथ बारमास	२१५	वसुदेवहिण्डी	२२०
राजुल बारमास	५९	विक्रमराय चरित्र	२६८
रात्रिभोजन	१५४	विक्रमादित्य पंचदंड चरित्र	१५२
राधाजी नो शलोको	२६९	विज्ञ विनोद	४४
राम सीता ना ढालिया	५०	विश्व विलास	४४
रामरास अथवा ढालसागर	२२८	विवेक पचीसी	४४
राधाकृष्ण नो रास	२२९	विचार सिद्धांत	४४
रामायण	७८	विज्ञान चंद्रिका	६२
रूक्मिणी मंगल चौ०	१३०	विनयचर रास	५१
रूक्मिणी हरण	२६७	विनय स्वाध्याय	१६६
रूपसेन की कथा	२६५	विमलनाथ पुराण	२०१
,, ,, बाला०	२७८	,, का स्तवन	२२५
रूपसेन चौ०	१९२	विमल मंत्री रास	१९५
,, रास	१६३	विमलाचल अथवा शत्रुंजय-तीर्थमाला	३१
रोहिणी चौ०	२०९	विवाह पडल (बाला०)	२७८
,, तप संज्झाय	१५२	,, ,, अर्थ	२०८
रोहिणी संज्झाय	२०८	विविध पुष्प बाटिका	९२
रोहिणी स्तवन	११६	विविध पूजा संग्रह	६०
लघुक्षेत्र समास बाला०	४५	,, ,, ,, और	
लघु चाणक्य भाषा	४४	स्नात्र पूजा संग्रह	१९५
लघुजातक बाला०	१६०	विबुध विमल सूरिरास	२०४
लघु ब्रह्मबावनी	१९१	विवेवमंजरी वृत्ति बाला०	२७८
लब्धिपूजा	१९१	विवेक विलास	१२७
लब्धि प्रकाश चौ०	१३०	,, नो शलोका	१२०

नाम	पृष्ठ संख्या
विषापहार स्तोत्र भाषा	२३१
विंशति स्थानक पूजा	८८
विशेष शतक भाषा गद्य	३३
विसह थी माता जी नो छंद	२६७
वीतराग वंदना	४४
वीनती	४४
वीर निर्वाण रास	१७६
वीर स्तवन	८७
वीर स्वामी रास	११४
वेताल पचीसी	१८४,१२५
वैदर्भी चौ०	१४६
वैद्यहुलास	१६३
व्रह्मसेन चौ०	११२
वृंदाबन विलास	२१५
वृद्ध चाणक्य नीति बाला०	२७८
शंख पोरवली को चरित्र	२२५
शंखेसर स्तव	६३
शंखेश्वर पार्श्वनाथ पंचकल्याण	
गर्भित प्रतिष्ठा कल्प स्तवन	१७५
शत्रुंजय उद्धार रास	१५५
शत्रुघ्न चौ०	१३०
शब्दार्थ चन्द्रिका	४४
शब्दाल पुत्र चौ०	८२
शांतिजिन स्तुति	२८
शांतिदास अने बरवतचंद शेठ रास अथवा	
पुण्यप्रकाश रास	६५
शांतिनाथ पुराण	२३४
,, स्तवन	२००
शालहोत्र अथवा अश्वचिकित्सा	२६५
शालिभद्र संज्झाय	२६४
शिखर विलास	६९,२०१
शिखर सम्मेदाचल महात्म्य	१६१
शियल नी नववाड़	१५७
शियल संज्झाय	१६५, २२७

नाम	पृष्ठ संख्या
शील संज्झाय	२२५
शुकराज चौ०	१७८, २२३
शुद्वात्मसार	१६२
शुभबेली	२१७
षट् अष्टाह्निक स्तवन	२०७
षट् कर्मोपदेश रत्नमाला	२०१
षट्पंचाशिका सस्तवक	२७८
षट्पाहुड वचनिका	१०६
षट् बांधव नो रास	१७१
षट्दर्शन समुच्चय बाला०	५७
श्री अठारह नाता चौढ़ालिया	३६
श्राद्ध कृत्य बाला०	३३
श्राद्ध विधि वृत्ति बाला०	४०
श्रावक प्रतिकमण विधि	६४
श्रावक विधि संग्रह प्रकाश	६३
श्रावकाचार	२७८
श्रावकाराधना	९२
शृंगार कवित्त	४४
श्री जिनमहेन्द्र सूरिभास	१८२
श्री तेरा काठिया का ढ़ाल	३६
श्री धन्नाजी की सातढ़ालिया	३६
श्रीपाल चरित्र	७४, ७८, १२७
,, ,,	१४३
,, चौ०	११०, १७७,
	१९२, १९३
श्री पालरास	६५, १३७,
	१९८, ४६, ७७
श्रीपाल रास टब्बार्थ	६८
श्री पाल रास बाला०	२७८
श्री मद् ज्ञानसार अवदात दोहा	१०३
श्रीमद् यशो विजयादि संज्झाय	
पद स्तवन संग्रह	१०५
श्रीमती चौ०	१७७
श्रीमल की संज्झाय	२२६

नाम	पृष्ठ संख्या
श्रुतपंचमी रास	१२९
श्रेणिक चरित्र	१२७
,, ,, भाषा	२०५
,, चौ०	१०९
संघयणी रयण टव्वा	२७५
संघवण हरकुँवर सिद्धक्षेत्र स्तवन	२२१
संप्रति चौ०	७६
संबोध अठत्तरी	९८
संबोध अक्षर बावनी	१५०
संयम श्रेणी समिति महावीर	
स्तव स्वोपज्ञ टव्वा	३९
संभव जिन स्तव	७९
संयम श्रेणी बाला०	१४२
संवेगी मुखपटा चर्चा	८०
संसार वैराग्य	१७८
सकलार्हत बाला०	२७८
सज्जन सन्मित्र	२०७
सती विवरण चौ०	२२६
सती स्तवन	१७८
सत्यपुर महावीर स्तवन	६४
सदयवच्छ सावलिंगा की वार्त्ता	२६६
,, ,, नो रास	१७६
सनत्कुमार चौढ़ालिया	७८
,, प्रबंध चतुष्पदी	१८१
,, रास	१६४
सन्निपात कलिका टव्वा	१८७
सप्रव्यसन कथा समुच्चय टव्वो	२७५
सप्रर्षि पूजा	१६१
सभासार शिखनख	४४
सप्रव्यसन चरित्र	१६१
,, ,, अथवा	
,, समुच्चय चौ०	१५४
समकित पचीसी स्तवन	१४२
समर चरित्र	१७८
समय तरंग	१०५
समवसरण मंगल	१६३
समालोचना सिंगार	९८
समुद्रवद्ध काव्य वचनिका	२२२
,, चित्र कवित्त	१००,१०३
,,वचनिका	१०३
समेतशिखर गिरि रास	६९
समेतगिरि स्तवन	२३१
समेतशिखर जी स्तोत्र की भाषा	२३१
समेतशिखर यात्रा वर्णन	६८
समेतशिखर पूजा	१८६
समेतशिखर पूजा या माहात्मय	१९९
समेतशिखर रास	२२४
समेतशिखर स्तव	८८
सम्यकृत्व चौ०	१९२
,, कौमदी चौ०	३४, ३५, २०९, २०१
,, ,, ,, अथवा	
अर्हद्दास चरित्र	६६-६७
सम्यग्यान चन्द्रिका	१०९
सम्यक्त्व परीक्षा बाला०	२७५
,, कौमुदी कथा बाला०	२७७
,, भेद	६४
,, अथवा मूल बारव्रत विवरण	
बारव्रत टीप	४७, ९७
,, स्तव बाला०	१०४
समराइच्चकहा	२८३
समरादित्य केवली नो रास	१४०
सर्वार्थसिद्धि	८०
,, भाषा	८१
सवा सो सीख संज्झाय या	
बुद्धि रास	१५९-१६०
सहस्रनाम पाठ	५३
सांब प्रद्युम्न रास	२४०
साधु कर्तव्य की ढाल	२२५

नाम	पृष्ठ संख्या
साधु गुणमाला	३६, २३८
साधु प्रतिक्रमण विधि	६४
साधु वंदना	८२, ९२
,, संज्झाय अथवा	
सत्पुरूष छंद	१५१
साधु संज्झाय बाला०	१०३
सामायिक पाठ भाषा	११०
,, ,, टीका	१११
,, ,,वचनिका	८०
,, ३२ दोष संज्झाय	११९
सामुद्रिक भाषा	२७१
,, संज्झाय	२६५
सार चौबीसी	१२७
सार समुच्चय	१२७
सिंदुर प्रकर भाषा बाला०	१८३
सिद्ध दण्डिका स्तवन	१४२
सिद्धप्रिय स्तोत्र नवीन भाषा	२३१
सिद्धांतसार	५२
सिद्धाचल गजल	५५
,, गिरनार संघ स्तवन	२२१
,, जिन स्त०	१०१
,, तीर्थ यात्रा	१५८
,, नवाणु यात्रा पूजा अथवा	
नवाणु प्रकारी पूजा	१४१
सिद्धाचल सिद्धवेलि	४२
,, स्तवन	१५८
सिद्धगिरि स्तुति	५५
सिद्धाचल स्तवनावली	१४२
सिद्धचक्र स्तवन अथवा	
नवपद स्तवन	१७९
सिद्धांतसार संग्रह वचनिका	१२६
सिद्ध पूजाष्टक	१२७
सीता चरित्र	१९७
सीता चौ०	७७
सीता बनवास	२२३
सीमंधर गाथा स्तवन बाला०	१४२
,, चौढ़ालिया	२८
,, स्तवन	४५
,, स्तव बाला०	१३०
,, स्वामी स्तवन	२८
सुख विलास	९५
सुखानंद मनोरमा चरित्र	१७८
सुगुरू शतक	८६,९६
सुदर्शन शेठ रास	११४
सुदामा जी की बारखड़ी	२७०
सुदृष्टि तरंगिणी	१०६
सुबाहु कुमार रास	८
सुबुद्धि प्रकाश या थानविलास	१११
सुभद्रा चौ०	२०९
,, ,, अथवा संज्झाय	५८
सुमति कुमति चौढ़ालिया	८०
सुरसुंदरी अमर कुमार रास	६५
सुलसा चरित्र बाला०	१९६
सूक्तावली स्तवक	२७८
सूरत की गजल	११६
सूरत सहस्रफणा पार्श्वस्तव	६३
सूसढ़ चरित्र बाला०	२७८
सेठ की ढाल	७८
सेठ सुदर्शन चौ०	७८
सैतालिस बोलगर्भित चौबीसी	९८
सोनागिरि पच्चीसी	१५३
,, पूजा	१६२
सोलह स्वप्न चौढ़ालिया	२९
सोलह कुल पट्टावली रास	११६
सौभग्यलक्ष्मी स्तोत्र	४४
सौभाग्यसूरि भास	१८३
सृष्टि शतक ना दोहा	१७४
स्तवन मंजूषा	१५३

नाम	पृष्ठ संख्या
स्नात्र पंचाशिका	४६
स्नात्र पूजा स्तवन संग्रह	१७९
स्वप्नविचार स्तवक	२७८
स्वरोदय	४४, ५४
स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षा	८०
स्तुति चतुष्टय	६३
स्थूलिभद्र कोशा संबंध रस बेलि	१६८
,, चरित्र बाला०	२०३
,, चौ० ।	७६
,, नवरस दूहा	११५
,, शियल बेल	२१६
,, संज्झाय	९४, ५०, ५१
हठी सिंहजी अंजन शलाका ढ़ालिया	२२०
हिंडोलना	६१
हनुमच्चरित्र छंदोबद्ध	२३५
हरिवंश पुराण	१९६
,, भाषा	१२७
हरिबल लच्छी रास	१९७
हरिश्चन्द्र राजा चौ०	१४५
हित सिखामण स्वाध्याय	२२०
हित शिक्षा छत्तीसी	२२१
हिन्दी गद्य का विकास	१०८
हेमदंडक	१०१
हेम नवरसा	९२
हेम व्याकरण भाषा टीका	१८७
होलिका चौढ़ालिया	२०९

सहायक संदर्भ ग्रंथ

(१)	श्री गोविन्द सखाराम देसाई	- मराठों का नवीन इतिहास
(२)	,, सत्यकेतु विद्यालंकार	- भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास
(३)	,, अगरचंद नाहटा	- जिनहर्ष ग्रंथावली (सार्दूल रिसर्च इन्सटीट्यूट, बीकानेर)
(४)	,, कामता प्रसाद जैन	- हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास
(५)	डॉ० प्रेमसागर जैन	- हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि
(६)	(संपा०) अगरचंद नाहटा	- राजस्थान का जैन साहित्य
(७)	डॉ० लालचंद जैन	- जैन कवियों के ब्रज भाषा-प्रबन्ध काव्यों का अध्ययन
(८)	(संपा०) डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल एवं श्री अनुपचन्द	- राजस्थान के जैनशास्त्र भाण्डारों की ग्रंथसूची भाग ३और ४
(९)	श्री मोहनलाल दलीचंद देसाई	- जैन गुर्जर कवियों, भाग २, ३ (प्र०सं०) ,, ,, ४,५ (न०सं०)
(१०)	श्री अगरचंद नाहटा	- परंपरा
(११)	श्री उत्तमचंद कोठारी	- ग्रंथसूची (अप्रकाशित)
(१२)	डॉ० हरिप्रसाद गजानन शुक्ल	- गुर्जर जैन कवियों की हिन्दी कविता को देन
(१३)	कुँवर चन्द्र प्रकाश सिंह	- भुजकच्छ व्रजभाषा पाठशाला
(१४)	(संपा०) श्री अगरचंद नाहटा	- ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह
(१५)	(संपा०) श्री विजय धर्मसूरि	- ऐतिहासिक जैन रास संग्रह
(१६)	(सपा०) डॉ० अम्बादास नागर	- गुजरात के हिन्दी गौरव ग्रंथ
(१७)	श्री नाथूराम प्रेमी	- हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास
(१८)	मिश्रबन्धु	- मिश्रबन्धु विनोद (प्र०सं०)
(१९)	श्री नेमिनाथ शास्त्री	- हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन
(२०)	डॉ० शितिकंठ मिश्र	- हिन्दी जैन साहित्य का बृहत् इतिहास खण्ड-१
(२१)	(संपा०) मुनि जिनविजय	- जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय
(२२)	डॉ० प्रेम प्रकाश गौतम	- हिन्दी गद्य का विकास
(२४)	श्रीमती विद्यावती जैन	- हिन्दी जैन साहित्य का एक विस्मृत बुन्देली कवि-देवीदास (अप्र०लेख,

साभार)

(२५) आचार्य रामचंद्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास

(२६) डॉ० वासुदेव सिंह - अपभ्रंश और हिन्दी में जैन रहस्यवाद

(२७) डॉ० भगवानदास तिवारी - हिन्दी जैन साहित्य

(२९) डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल - राजस्थान के जैन संत

(२९) (संपा) मोहनलाल दलीचंद देसाई - जैन ऐतिहासिक रासमाला

(३०) (संपा०) मोहनलाल दलीचंद देसाई - जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास

(३१) विद्याधर जोहरापुरकर - भट्टारक सम्प्रदाय

(३२) पं० परमानन्द शास्त्री - जैन ग्रंथ प्रशस्ति संग्रह

ENGLIGH BOOK-

(A) Shri Ram Sharma - The Religious Policy of the Moghal Emperors.

(B) Mandslo - Travelles in Western India.

पत्रिकाएँ-

(अ) नागरी प्रचारणी पत्रिका, सन् १९०० (ना०प्र०सभा, काशी)

(ब) (संपा०) पीतांबर दत्त बडथ्वाल- त्रैवार्षिक-खोडाविवरण, भाग ८, १२, १४, १५, हस्तलिखित पुस्तकों का १४वाँ और १५वाँ

पार्श्वनाथ विद्यापीठ के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

1.	Studies in Jaina Philosophy	Dr.Nathamal Tatia	100.00
2.	Jaina Temples of Western India	Dr.Harihar Singh	200.00
3.	Jaina Epistemology	I.C. Shastri	150.00
4.	Concept of Pañcaśila in Indian Thought	Dr. Kamla Jain	50.00
5.	Concept of Matter in Jaina Philosophy	Dr. J.C. Sikdar	150.00
6.	Jaina Theory of Reality	Dr.J.C. Sikdar	150.00
7.	Jaina Perspective in Philosophy & Religion	Dr. Ramji Singh	100.00
8.	Aspects of Jainology (Complete Set: Vols. 1 to 7)		2200.00
9.	An Introduction to Jaina Sādhanā	Dr. Sagarmal Jain	40.00
10.	Pearls of Jaina Wisdom	Dulichand Jain	120.00
11.	Scientific Contents in Prakrit Canons	N.L. Jain	300.00
12.	The Path of Arhat	T.U. Mehta	100.00
13.	Jainism in a Global PerspectiveEd. Prof. S.M. Jain & Dr.S. P. Pandey		400.00
14.	Jaina Karmology	Dr. N.L. Jain	150.00
15.	Aparigraha- The Humane Solution	Dr. Kamla Jain	120.00
16.	Studies in Jaina Art	Dr. U.P. Shah	300.00
१७.	जैन साहित्य का बृहद् इतिहास	(सम्पूर्ण सेट सात खण्ड)	६३०.००
१८.	हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास	(सम्पूर्ण सेट: चार खण्ड)	७६०.००
१९.	जैन प्रतिमा विज्ञान	डॉ० मारुतिनन्दन तिवारी	१५०.००
२०.	वज्जालग्ग (हिन्दी अनुवाद सहित)	पं० विश्वनाथ पाठक	८०.००
२१.	प्राकृत हिन्दी कोश	सम्पादक- डॉ० के०आर०चन्द्र	२००.००
२२.	जैन धर्म और तान्त्रिक साधना	प्रो० सागरमल जैन	३५०.००
२३.	गाथा सप्तशती (हिन्दी अनुवाद सहित)	पं० विश्वनाथ पाठक	६०.००
२४.	सागर जैन-विद्या भारती (तीन खण्ड)	प्रो० सागरमल जैन	३००.००
२५.	गुणस्थान सिद्धान्त: एक विश्लेषण	प्रो० सागरमल जैन	६०.००
२६.	भारतीय जीवन मूल्य	डॉ० सुरेन्द्र वर्मा	७५.००
२७.	नलविलासनाटकम्	सम्पादक- डॉ० सुरेशचन्द्र पाण्डे	६०.००
२८.	अनेकान्तवाद और पाश्चात्य व्यावहारिकतावाद	डॉ० राजेन्द्र कुमार सिंह	१५०.००
२९.	दशाश्रुतस्कंध निर्युक्ति: एक अध्ययन	डॉ० अशोक कुमार सिंह	१२५.००
३०.	पञ्चाशक-प्रकरणम् (हिन्दी अनु० सहित)	अनु०- डॉ० दीनानाथ शर्मा	२५०.००
३१.	सिद्धसेन दिवाकर: व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय	१००.००
३२.	मध्यकालीन राजस्थान में जैन धर्म	डॉ० श्रीमती राजेश जैन	१६.००
३३.	भारत की जैन गुफाएँ	डॉ० हरिहर सिंह	१५०.००
३४.	महावीर निर्वाणभूमि पावा: एक विमर्श	भागवतीप्रसाद खेतान	६०.००
३५.	जैन तीर्थों का ऐतिहासिक अध्ययन	डॉ० शिवप्रसाद	२००.००
३६.	बौद्ध प्रमाण-मीमांसा की जैन दृष्टि से समीक्षा	डॉ० धर्मचन्द्र जैन	२००.०
३७.	जीवसमास	अनु०- साध्वी विद्युत्प्रभाश्री जी	१६०.००

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी-५